राजेन्द्र यादव के दो लघु उपन्यास

कुलटा; अनदेखे अनजान पुल

राजेन्द्र यादव की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

सारा आकाश; उखड़े हुए लोग; शहर और मात एकइंच मुस्कान (मन्नू भण्डारी के साथ); मंत्र-विद्ध।

देवताओं की मूर्तियाँ, खेल-खिलौने, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की आत्म-हत्या, छोटे-छोटे ताज-महल, किनारे से किनारे तक, प्रतीक्षा, टूटना, अपने पार।

कहानी-संकलन

एक दुनिया : समानान्तर; कथा-यात्रा; नये कहानी-कार सीरीज की पांच पुस्तकें।

कविता-संग्रह

आवाज तेरी है

समीक्षा

कहानी : स्वरूप और सवेदना

'ढोल' और अन्य कहानियाँ (प्रकाश्य)

कुलटा

अनदेखे, अनजान पुल

अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड

राजेन्द्र यादव

दो लघु उपन्यास

कुलटा (पृष्ठ १०८ तक)

अनदेखे अनजान पुल (पृष्ठ १०९)

कुलटा

.........ो,

विश्वास करो, आत्मीयता के एकान्त क्षणों को कभी मैंने धोखा नहीं दिया।

.... मजबूरी के लिए थोड़ी भी ढिलाई क्या तुम्हारे मन में नहीं है ?

....

रा० या०

७-३-५८

नरेन्द्र सहगल को

स्वर्गीय श्री आर० सहगल की पुण्य-स्मृति में

मिसेज तेजपाल कुलटा थीं।
बीनू के मुंह से जब मैंने यह सुना कि मिसेज तेजपाल कुलटा हैं तो सचमुच दिल को बड़ा धक्का लगा। मैं तो सपने में भी नहीं सोच सकता था कि ऐसी सुन्दर, हंसमुख और सौम्य-शिष्ट महिला भी 'कुलटा' हो सकती हैं। कैसी मस्त थी, कैसी अच्छी तरह मिलती, कितनी आत्मीयता से गप्पें लड़ाती थीं वे ! मुझे क्या पता था कि वे वास्तव में हैं क्या ? दांतों में अगर मिस्सी लगी होती, काजल की लम्बी-लम्बी लकीरें आंखों से बाहर खिची होतीं, पाउडर पुते गालों पर रूज लगा होता, पान से होंठ और खासतौर से मुह के कोने रंगे होते, पत्तीदार बालों के नीचे ईयरिंग झूल रहे होते और भौहें मटका-मटका कर बातें करतीं—तब तो कोई बात ही नहीं थी। पहली मुलाक़ात में ही मैं भांप जाता कि वे कुलटा हैं। लेकिन अब बीनू की बात से मुझे दुःख कम, आश्चर्य ही अधिक था। मानना पड़ता है कि मिसेज तेजपाल ग़जब की अभिनेत्री रही होंगी (कॉलेज के नाटकों मे वे सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री मानी जाती थीं, यह उन्होंने खुद बताया था) तभी तो उन्होंने मुझे क़तई ऐसा सन्देह नहीं होने दिया। उन दिनों उन्हें लेकर जो-जो बातें मेरे दिमाग में आया करती थीं, वे बिलकुल ही दूसरी तरह की थीं।

फ़िर भी बीनू ने मुझे जो कुछ बताया उसे मान लेने के सिवा कोई चारा नही है······वह अलसेशियन कुतिया, वह गोलियों का फूल, वह गाने की आवाज़······वे सब झूठ थे; असली बात का पता तो अब चला है······

कुछ साल बाद ही जब कम्पनी ने दुबारा स्पेशल ट्रेनिंग के लिए कलकत्ता भेज दिया तो कदम खुद-बखुद कॉफ़ी-हाउस की तरफ़ उठ गये। पिछले दिनों कलकत्ते के अलग-अलग हिस्सों में चार साल रहा था। उन दिनों कोई भी दिन नहीं गया जब कॉफ़ी-हाउस जाना न हुआ हो। अभ्यास ही कुछ ऐसा हो गया था कि शहर के चाहे जिस हिस्से में रहूँ, रोम की तरह सारे रास्ते मुझे कॉफी-हाउस ही ले जाते। यह 'मिलन-मन्दिर' था।

घुसते ही निगाह मेजर तेजपाल पर गई। हाँ, वे ही तो थे। आइनों-जड़े खम्भे की तरफ मुंह और दरवाजे की तरफ पीठ किये वे ही बैठे थे। लेकिन कपड़े साधारण नागरिकों के थे। दोनों हाथ पंजों तक अपनी पैण्ट की जेबों में अटकाये, कुहनियाँ इधर-उधर निकाले, वे शीशे में देख-देखकर इस तरह हँस रहे थे जैसे कोई उनकी बगल में गुदगुदी कर रहा हो। एक क्षण को मैं झिझका—शायद वे न हों; लेकिन सामने शीशे में मुझे अपनी परछाईं के साथ-साथ उनकी परछाईं भी दिखाई दे रही थी। हां, तेजपाल ही तो हैं। मगर वे और कॉफ़ी-हाउस में? सो भी ऐसे ढीले-ढाले बैठकर यों हंसते हुए! जैसे श   से यही बात हटाने के लिए मैंने गर्दन ऊंची करके सारी मेज़-कु   निगाह डाली। इसे तो वे दुनिया भर के आवारा और लफंगों   कहा करते थे।

मैं पास जाकर खड़ा हो गया औ   ी तरह शीशे में अपने आपको देख-देखकर हंसते रहे। सामने मज की काली-सतह पर आधा कप कॉफी और खाली प्लेट रखी थी। पास से देखा—हां, वही जहां-गीरी ढंग की कुछ-कुछ सफ़ेदी लिए नीची-नीची क़लमें और टेलीफ़ोन के चोंगे जैसी भारी-भारी मूंछें। और इस सब काले रंग के बीच से झकझकाता लाल-सुर्ख रंग। मेरा खयाल था कि वे उछलकर खड़े हो जायेंगे और अपनी उसी भव्य अदा से हाथ मिलायेंगे, और हाल-चाल पूछेंगे। लेकिन जब वे यों ही बैठे रहे तो मैंने पूछा: "मैं यहां बैठ जाऊं?"

वे उसी अलमस्त भाव से हँसते रहे। दूर औंधी थाली को छाती से चिपकाए अंगुलियों से उनपर बहुत हल्के-हल्के ताल देता, लाल पेटी वाला बैरा उन्हें देख-देखकर मुसकरा रहा था। हो सकता है यह तेजपाल की शक्ल से मिलती-जुलती शक्ल के और कोई साहब हों। मैंने फिर पूछा : "यह कुर्सी क्या खाली है ?"

उन्होंने बिना सिर घुमाये ही, मानो मुझे शीशे में देखकर कहा : "बैठो !" उनकी आवाज ऐसी थी जैसे वे बैरे से कह रहे हों—पानी लाओ। मुझे बुरा लगा। मन हुआ कहीं और बैठ जाऊं। लेकिन हॉल भरा था। मेज पर किताब रखते हुए मैंने फिर उन्हें गौर से देखा कि शायद वे अभी भी पहचान लें। वे यों ही बेख़बर शीशे में कुछ देख-देखकर मुसकराते रहे। नहीं, ये मेजर तेजपाल नही है। मैंने कॉफ़ी मँगाई। शक्ल की समानता पर ऐसे भ्रम कई बार हो जाते हैं। अचानक उन्होंने मेरी किताब उठा ली और उसे आंखों के बिलकुल पास ले जाकर उलट-पलटकर इस तरह देखने लगे जैसे सूंघकर किताब की क़िस्म का पता लगा रहे हों। मुझे हँसी आ गई। जाने कैसे उन्होंने जान लिया कि मैं हँस रहा हूँ। झटके से मेरी ओर देखा और आंखें मिलते ही हम दोनों मुसकराये। बीयर के अन्दाज से गिलास के पानी को पीते हुए मैंने पूछा : "आप क्या इस शहर में नये आये हैं ?"

उन्होंने किताब जहां से उठाई थी वहीं रख दी और फिर ठोड़ी उठा-उठाकर शीशे में इस तरह देखने लगे मानो सोच रहे हों कि शेव करा डाली जाये या नहीं। मेरी बात से बिना चौंके बोले : "यह खयाल आपको कैसे हुआ ?"

"यों ही, मुझे ऐसा लगा।" इस प्रश्न का जवाब और क्या हो सकता था।

"आखिर लगने की वजह ?" इस बार जब उन्होने सख्ती से पूछा तो मैंने चौंककर उनकी ओर देखा। आँखें मुझपर टिकी थीं। उनकी आँखों के डोरों में एक ऐसी अजब क़िस्म की चमक कौंधी कि मेरी नस-

नस सिहर उठी। घबराकर मैंने सहायता के लिए इधर-उधर देखा।

"कोई खास वजह तो नहीं।" मुश्किल से हकलाकर मैं बोला।

"आपको मुझमे ऐसी क्या खास बात लगी कि मैं नया हूँ ?" इस बार उनकी आंखो का व्यास फैल गया था और आवाज में एक ऐसी कड़क थी कि अगर मैंने जवाब नहीं दिया तो वे उछलकर मेरा टेंटुआ पकड़ लेगे। मैंने चुपचाप किताब उठाई और एक नई खाली हुई कुर्सी पर चला गया। जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसी तटस्थता से वे बड़े अर्थ-भरे ढंग से मुसकराते रहे—मानो कह रहे हों : 'हुंह, कैसे-कैसे बेवकूफ़ आ टकराते है।'

······हुगली के किनारे दौड़ती सरदारजी की बस से भागती रेलिंग के पार जहाज़ों को देखता हुआ मैं अपने-आप से बोला : "थे तो ये मेजर तेजपाल ही, लेकिन इन्होने मुझे पहचाना क्यों नहीं ? इन सालों में मैं आखिर कितना बदल गया होऊँगा ?" इस प्रश्न के साथ ही मन मे ऐसी बेचैनी हुई कि वहीं मैंने उन्हें अपना नाम क्यों नहीं बता दिया। कम से कम मुझे अपना चेहरा तो शीशे में देख ही लेना चाहिए था। शीशे की खोज में इधर-उधर आँखे घुमाई, और उतरते समय उस तस्वीर—जिसमें गुरु गोविन्दसिंह हाथ पर बाज बैठाये थे—के नीचे लगे शीशे में अपनी शक्ल पर निगाह पड़ी तो मैं ठिठक गया। नहीं, बदला तो शायद नहीं हूं! मैंने बालों पर हाथ फेरा और मुसकराया, फिर अपने पीछे एक और चेहरा देखकर याद आया कि मेरी यह हरकत भी तो मेजर तेजपाल जैसी ही है।

बात मन मे कोंचती रही। घर आया तो बीनू देखते ही बोली : "मैं जाने कब से बैठी राह देख रही हूं। अपना पुलोवर जरा पहनकर देख ले। पता चले, कितना घटाना-बढ़ाना है।" बिना मुझे सांस लेने का अवसर दिये उसने झट मेज के नीचे रखी प्लास्टिक की डोलची से

पुलोवर निकालकर मुझे पहनाना शुरू कर दिया। बोली : "हाथ ऊपर कर……"

हैण्ड्स-अप किये मैं सोचता खड़ा रहा और वीनू सलाई के साथ ही कभी मेरी पीठ और कभी छाती पर पुलोवर नापते हुए खींच-खींचकर मुग्ध आँखों से उसकी डिजाइन देखती रही। पूछा : "बड़ा खुश है। कोई मिल गया था क्या ? किस-किससे मिल आया ?"

मैंने एकदम उमंगकर कहा : "वीनू, आज कॉफी-हाउस में मेजर तेजपाल मिल गये थे।"

"है, मेजर तेजपाल ?" वीनू अपना पुलोवर भूल गई : "ये तो कहते थे कि वे राँची में है।"

"रांची ! रांची में क्यों ?"

"मुझे नहीं मालूम ? अरे, उनका तो दिमाग खराब हो गया था न !"

"दिमाग !" मुझे फिर कॉफी-हाउस की बात याद हो आई। ऐसे में भी वीनू से चुहल किये बिना मुझसे नहीं रहा गया : "मिलिटरी वालों का भी दिमाग होता है क्या ? अच्छा, क्यों ··कैसे हो गया ?"

वीनू ने मजाक पर ध्यान न देकर कमरे से बाहर बरामदे में देखते हुए कहा : "लोग कहते हैं भई, हमे तो ठीक-ठीक पता नहीं। मिसेज तेजपाल की वजह से ही उनका दिमाग बड़ा डिस्टर्ब्ड[1] रहता था।" फिर चौंककर उसने पूछा : "अच्छा, क्या कह रहे थे ? ठहरे कहाँ है ? मैं इनसे कहूँगी, वो हमसे मिलने नहीं आये तो क्या है, हम ही देख आये। कैसे हो गऐ हैं।"

अब मैंने बताया कि उन्होंने तो मुझे पहचाना भी नहीं; लेकिन जब मैंने पूछा कि मिसेज तेजपाल ने ऐसा क्या कर डाला था कि उनका दिमाग खराब हो गया, तो वीनू उदास हो गई। घुटने पर बुनाई को रखकर उसे एक जगह दबा-दबाकर कुछ सोचती रही, फिर बड़े बेमालूम ढंग से गहरी साँस लेकर जरा होंठ सिकोड़ती हुई, उपेक्षा से बोली :

---

१. परेशान

"अरे, ऐसी ही थीं वो भी।"

'तू तो उनकी भक्त थी पहले, और अब कहती है कि ऐसी ही थीं!" मेरे आगे वह कंधों से कटे बालों-वाला गोरा-गोरा गोल चेहरा घूम गया। वीनू के नाराज़ होने की बात मैं भांप गया, लगा तभी यह कतरा रही है। मन और भी बेचैन हो उठा।

जैसे मैंने उसकी कोई कमज़ोर नस पकड़ ली हो, कुछ इस तरह तड़पकर वह बोली : "अब मुझे क्या पता था कि भीतर से वो कैसी हैं? कुलटा कहीं की!"

अत्यन्त नये फ़ैशन के ड्राइंगरूम में नाईलोन की फ़ालसई साड़ी पहने कर्नल की पत्नी वीनू के मुह से यह ठेठ निम्न-मध्यवर्गीय शब्द सुनकर मुझसे मुसकराये बिना नहीं रहा गया।

बैरे ने पूछा : "साहब, चाय यहीं लगेगा?"

उसे टाला : "हाँ, यहीं ले आओ।" फिर वीनू से बोला : "तुम भी जब कोर्ट-मार्शल करती हो तो सीधी गोली ही मारती हो। बीच का कोई रास्ता ही नहीं छोड़ती? हमें तो उनमें कुछ कुलटापन दीखा नहीं।"

वीनू नाराज़ हो गई। ऊन के गोले के चारों ओर सलाई समेत पुलोवर लपेटकर थैले में ठूंसती बोली : "तुझे क्यों दीखता? तुझसे घुल-घुलकर बातें जो करती थी, हुगली पर जाकर।"

"तुम औरतें बस, एक जैसी ही होती हो।" मैंने अंग्रेज़ी में कहा। 'महिलाएं' शब्द कठिन हो जाता और 'औरतें' बाज़ारू। "तुम्हारी राय क्या ठीक है?"

"अच्छा, नहीं ठीक है बस।" उसने सिर झटककर गाल फुला लिये।

यह वीनू की पुरानी आदत है। विरोध की कोई भी बात सुनकर इसी तरह कहकर सिर मोड़कर बैठ जाती है, कोने में देखती रहती है, देखती रहती है। तभी अचानक उसे कोई ऐसी बात याद आ जाती है कि उसे कहने के लिए झटककर घूम पड़ती है। उसे ध्यान ही नहीं रहता कि वह अभी-अभी गुस्सा थी। मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि अभी घूमकर

वह फिर मेजर तेजपाल की बात पूछेगी, यह बात अभी पूरी कहाँ हुई। तभी बरामदे में घण्टी बजी—घनन्-घनन्।

और मुझे सहसा ऐसा लगा जैसे अभी गोमेज़ के दरवाजा खोलते ही मिसेज तेजपाल खिलखिलाती हुई, अपने बाल झटकतीं इस तरह झपटती चली आयेंगी जैसे उन्हे किसी ने धकेल दिया हो। वही से कहती आएंगी : 'आज तो मजा आ गया मिसेज धीर!' और फिर सारा फ़्लैट एक अजब चहचहाहट से भर उठेगा। वे झूम-झूमकर आज मिलने-वाले दिलफेंकों की हरकतें बयान करेंगी।

लेकिन वह नीचे के फ़्लैट का बैरा था। "मेम सा'ब को कर्नल सा'ब, नीचू में बुलाता है। बोला है, छोटा सा'ब होगा तो उसकू बी लाएगा। सब लोग नीचू है।"

आज नीचे बिलियर्ड्स का प्रोग्राम था और रणधीर वहीं था।

मैंने बीनू से मना कर दिया : "आज बहुत थक गया हूं, सफर की थकान है। तू जा।"

असल में मेरा दिमाग बुरी तरह बौखला उठा था। मुझे रह-रहकर मिसेज़ तेजपाल की याद आ रही थी। सचमुच, उन्हे मैं कैसे यों एकदम भूल गया? मैं चुपचाप चाय पीता रहा। पता नहीं क्या कहकर बीनू नीचे चली गई थी। विश्वास नही होता कि मैं कहीं कुछ साल बाहर रहा हूँ। आज भी मिसेज़ तेजपाल का चेहरा उभर-उभरकर सामने आ रहा है। उनके नाम के साथ ही मुझे याद आता है—लाल नम्दे के चौकोर टुकड़े पर बना 'गोलियों का फूल' और कलाई में चमड़े का फीता लपेटे अपनी कमर से ऊँची अलसेशियन कुतिया के पीछे कमान बनी खिचती-सी भागती जाती मिसेज़ तेजपाल की गुनगुनाती मूर्ति···वह रह-रहकर अपने बालों को पीछे झटकना···बीनू की बात मानने को भी मन नहीं करता और दिल के भीतर यह भी मैं जानता हूँ कि कहीं उसकी बात में वजन है···मुझे लगा जैसे वही फ़्लैट है, वही लोग हैं

और वही दिन है...इस कम्बख्त बीनू ने यह फ्लैट भी तो उसी तरह का लिया है, सब कुछ उसी तरह सजा रखा है।

यों तो सारे ब्लॉकों के फ्लैटों की डिजाइनें एक जैसी हैं; लेकिन पहली बार जब मैं मेजर तेजपाल के फ्लैट में गया था तो कितना फ़र्क लगा था कि दीवारें, बरामदा, कमरे, एक डिजाइन के होकर भी, सब कुछ वे ही नहीं हैं जो नीचे वाले हमारे फ्लैट के।

...उनके यहाँ हमारा खाना था।

हमने घण्टी बजाई। मैं, बीनू और रणधीर—तीनों सीढ़ियों पर खड़े थे। इंतज़ार था कि दरवाजे के धुंधले बूंदोंवाले काँच के पीछे छाया दिखाई दे और किवाड़ खुलें। कोई नहीं आया। बैरा व्यस्त होगा। वैसे भी यहाँ का यह क़ायदा है। नीचे दूर से देख लेने पर भी दो-तीन बार घण्टी बजानी पड सकती है। क्योंकि किवाड़ बैरा ही खोलता है। दूसरी घण्टी बजाई तो बैरे ने झपटते हुए किवाड़ खोले। मैं नवीं बार नेम-प्लेट को पढ़ रहा था। पूछा : "हैं ?"

"हाँ सा'ब !" रणधीर के लिए उसने एड़ियाँ ठोककर सैल्यूट झाड़ा और अदब से एक ओर हट गया। हम लोग बरामदे मे आ गये। ड्राइंग-रूम में घुसते हुए जिस चीज़ पर मेरी निगाह सबसे पहले पड़ी थी, वह थी दो दरवाजों के बीच की जगह मे ऊपर लगा हुआ फूल। दोनों दरवाज़ो के ठीक ऊपर बारहसिंघों के दो बड़े सिर लगे थे। बीच के फूल को देखते ही जैसे बिजली का धक्का लगा और मन एक अजीब दहशत से भर उठा। फिर भी मै उसे कुछ क्षण देखता रहा। छह इंच से लेकर आधे इंच लम्बी, बन्दूकों और पिस्तौलों की गोलियों को नम्दे के सुर्ख टुकड़े पर जमाकर यह डिजाइन बनाई गई थी। पीले-पीले पीतल के शरीर और सिलेटी जस्ते की चोंचें। गोलियों पर पॉलिश भी होती

होगी, तभी तो चमक रही थीं···गोलियों का फूल···एकदम कौंधा, कहीं कोई इनमें पलीता न लगा दे···अंधेरे में आतिशबाजी के अनार की तरह यह फूल मेरे सामने फूटता हुआ नाचने लगा···फ्लॉवर आफ़ बुलैट्स···

मेजर तेजपाल लपककर कमरे से निकल आये थे। वही लहीम-शहीम शरीर और कुछ-कुछ सफ़ेदी लिये जहांगीरी क़लमे, टेलीफ़ोन के चोगे जैसी मूंछें। खिलकर बोले: "हल्लो, मैं सोच ही रहा था कि बैरे को भेजूं। रुद्रा नहीं आया अभी ?"

"हमें देर तो नहीं हुई ?" बीनू ने घड़ी देखी। यों हम लोग ठीक टाइम देखकर ही चले थे।

"नहीं, नहीं।" फिर बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सियों की ओर इशारा करके कहा : "यहाँ बैठेंगे या भीतर···? अच्छा चलिए भीतर ही बैठें···"

बीनू ने भीतर झाँकते हुए कहा : "जहां चाहें, मिसेज तेजपाल किधर गईं ?"

"जी, वो किचिन में हैं, अभी आती हैं।" पर्दा एक ओर हटाकर वे खड़े हो गये। मैंने ध्यान दिया, दोनों हथेलियों को मिलाकर हाथ जकड़े खड़े रहना उनकी आदत थी, मानो ठण्ड लग रही हो, या हथेलियों के बीच में दबाकर कुछ तोड़ रहे हों। मुझे ऐसा लगा जैसे यह आदत मैंने किसी और की भी देखी है। दिमाग़ टटोलता रहा, लेकिन वहाँ तो 'गोलियों का फूल' घूम रहा था।

भीतर क़दम रखते ही किसी चीज से मेरा पाँव टकराया। देखा तो चिहुँककर सकपका उठा। घड़े के बराबर के आकार का शेर का सिर मुह फाड़े, आंखें चमकाता रखा था, और उसकी गहरी कत्थई धारियों वाली सुनहरी खाल ग़लीचे पर बिछी थी—मानों हाथ-पाँव फैलाये लेटी हो। उसके चारों ओर लाल-ग़लीचे पर चाकलेटी सोफ़ासेट रखा था। कोने मे मेज पर निकिल के चमचमाते फ़ोल्डिंग-फ्रेम में एक ओर कैंडेट तेजपाल और दूसरी ओर डिग्री हाथ में लेकर गाउन ओढ़े मिसेज तेजपाल

की फ़ोटो थी। तेजपाल की मूंछें ऐसी तनी थीं जैसे किसी ने नाक के नीचे सीधी पेंसिल रख दी हो। रेडियोग्राम हल्के-हल्के कोई साज बजा रहा था।

ड्राइंग-रूम में बैठे-बैठे बड़ी बेचैनी हो रही थी। यहां कुछ ऐसा तनाव था कि इच्छा होती थी, उठकर बाहर बरामदे में जाकर खुली सांस लूं, लेकिन वहां वह 'गोलियों का फूल' था, जिसे देखने की व्यग्रता भी होती थी और देखकर डर भी लगता था। मेजर तेजपाल ने एक टांग सीधी तानकर मानो बड़े परिश्रम से, सख्त फ़ौजी पतलून की जेब से सिगरेट-केस निकाला और हमें बारी-बारी से ऑफ़र करते हुए शिष्टता-पूर्वक वीनू से कहा : "विद् योर परमीशन[1] !"

"जी हां, जी हां !" वीनू बोली। कन्धे और कुहनी पर साड़ी का पल्ला लेती वह उठ खड़ी हुई : "मैं अभी आ रही हूँ। ज़रा मिसेज तेजपाल की मदद करूँ।"

"नहीं जी, बैठिए। काम तो खत्म हो गया सब।" तेजपाल बोले। उनके हाथों और अंगुलियों पर मोटे-मोटे बाल थे। कलाई में बंधी, चौड़े काले-काले डायल वाली घड़ी रह-रहकर रोशनी में झिलमिला उठती थी। अंकों की जगह उसमें सुनहरी लम्बी-लम्बी बूंदें रखी थीं और लाल रंग की सांप की जीभ जैसी सेण्टर-सैकिण्ड चारों ओर घूम रही थी। उसे देखकर भी ज़रा झटका-सा लगा जैसे कोई परिचित चीज़ याद आ गई हो।

लेकिन वीनू चली गई। रह-रहकर मन में सवाल उठता रहा : नीचे से हम जो गाने निरन्तर सुनते रहते हैं वे क्या सचमुच इसी फ़्लैट में रहनेवाला कोई गाता है ? कौन गा सकता है ऐसे में···? यह शेर, यह गोलियों का फूल···

"कैसा लग रहा है कलकत्ता आपको ?" तेजपाल ने एक ओर होंठ सिकोड़े और धुएं की धारी छोड़ी। मैंने देखा, उनका चेहरा सचमुच ऐसा

---

१. आपकी आज्ञा से !

है जिसे 'रौबीला चेहरा' कहते है।

"ठीक ही है जी। मुझे तो यहां अभी कोई ऐसा खास काम है नहीं। रिपोर्ट बनानी होती है, सो यहां बैठकर टाइप कर लो या वहाँ।"

"और शायरी ?" इस बार तेजपाल मुसकराए।

"वह भी कभी-कभी चल जाती है। फ़ुरसत की चीज है वह तो।" मैं उनके पूछने के ढंग पर मन-ही-मन हंसा, मानो पूछ रहे हों, वह जो कभी-कभी तुम्हारे सिर में दर्द हो जाता है उसका क्या हाल है ?

"अरे हाँ, मेजर तेजपाल, क्या हो गया था दोपहर को ? बड़ा शोर था !" रणधीर ने सहसा पूछा।

"ओ:···वह ! कुछ नहीं यार···" इस बार उनकी आँखें चमक उठीं। वे सीधे बैठ गए। घुटनों पर कुहनियाँ रखकर बोले : "हमारे यहां फर्श-वर्श पोंछने के लिए जो नौकरानी आती है न, उन मेम-साहिबा का इश्क हो गया हमारे खानसामे से। साला अपने हिस्से का सारा खाना उसे खिला देता था। उनमें कुछ है, यह मार्क तो मैं बहुत दिनों से कर रहा था। वह साहब उसके जाने से पहले किसी न किसी बहाने आगे निकल जाते और सड़क पर बाहर उसकी राह देखा करते। आते हुए मैंने एकाध बार देखा; लेकिन गाड़ी खड़ी करके रुकना ठीक नहीं समझा। बरामदे के सामने कोने वाला जो कमरा है न, बाई द वे, मैंने आते हुए उधर जो सिर उठाया तो देखा आप उसे किस[1] कर रहे हैं···"

"तो क्या हो गया ?" मैंने ज़रा दिलचस्पी से पूछा : "इन लोगों की ज़िन्दगी में भी तो कहीं रोमांस होना चाहिए न।" तभी दिल में जैसे कुछ खटक गया और जबान रुक गई। अभी-अभी जबकि मैं कुछ 'भयानक' और 'रहस्यमय' देख आया हूँ तो किस तरह ये परिहास की बातें कर पा रहा हूँ।

"अरे राजेन साहब, आप समझते नहीं हैं। फ़ील्ड पर तो हम खुद इस तरह की छूट देते हैं, लेकिन यह तो फ़ील्ड नहीं है। और फिर···"

---

१. चुम्बन लेना

अफ़सोस से तेजपाल बोले : "दिस वेंच···यह ख़ानसामा मेरे पास बड़ा पुराना है। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के यहां नौकरी करके इसका बाप हमारे फ़ादर के पास आया, और वहां कुछ ऐसा जम गया कि कहीं आने-जाने का उसने नाम ही नहीं लिया। मुझे जब कमीशन मिला तो फ़ादर ने इसे मेरे साथ कर दिया। घर का आदमी था, इसलिए मेरी ज़रूरत समझता था। दस-बारह साल से मेरे यहां है यह···आख़िर कुछ तो लिहाज़ करना चाहिए इसे···"

रणधीर कुछ बोलने को था कि मैं बीच में ही बोल उठा : "मेजर साहब, उसकी भी तो अपनी ज़रूरतें हैं, दिल है, जवानी है।"

"ओ! मैं ये सब बरदाश्त नहीं कर सकता।" सिर झटककर तेजपाल झिड़कने के ढंग पर बोले : "उसे ज़रूरत हो तो मुझसे आकर कहे। मैं कराता हूँ शादी। ये सारी बदतमीज़ी मेरे यहां नहीं चलेगी। वह तो मैंने उसे कान पकड़कर ही निकाल दिया; आई सैड, गेट्आउट[1]! वर्ना मैं तो उसे शूट कर देता···यह रोमांस करने की जगह नहीं, रहने की है।" फिर एकदम आवाज़ नीची करके मुसकराये : "देख लीजिए, कल-परसों आकर माफ़ी-वाफ़ी मांगेगा और फिर काम करने लगेगा। जायेगा कहाँ साला!"

"अरे यार, कभी-कभी तो इन बेचारों की ज़िन्दगी में भी कोई रस आ जाने दिया करो।" रणधीर टालता-सा बोला।

"तुम भी औरतों जैसी बातें करते हो बीर। ये भी कहती थी कि क्या बुरा किया? मान लो वह इसी से शादी कर ले? आई सैड, शटाप[2]! तुम समझते नहीं हो दोस्त, इन सस्ती पिक्चरों ने इनके दिमाग़ ख़राब कर दिये हैं।"

"ओः तभी आज मिसेज़ तेजपाल किचिन में हैं।" रणधीर ने रेडियोग्राम पर रखी ऐश-ट्रे में सिगरेट ठूँसकर कहा।

"नहीं जी, अभी आई।" भीतर से आवाज़ आई—वही कुहकता-

१. मैंने कहा-बाहर निकल जाओ   २. मैंने कहा—चुप रहो

सा स्वर। तभी मुझे याद आ गया घड़ी के अंकों की सूरत उस बाहर वाले फूल से मिलती है। लेकिन सैकिण्ड की सुई इस तरह घूमती लगती थी जैसे कोई एक-एक गोली के मुह से जलती मशाल छुआता चला जा रहा हो।

भीतर बीनू के बोलने का स्वर आ रहा था। 'कुहकता स्वर और गोलियों का फूल···मैंने मन-ही-मन दुहराया। वे लोग शायद मेज पर नौकर की मदद से प्लेटें लगा रही थीं।

"हां, मैं क्या कहती थी?" सीधे आकर उन्होंने तेजपाल की ओर देखते हुए अपनी झुंझलाहट को मुसकराहट में छिपाकर कहा। फिर रणधीर से बोलीं: "मेजर धीर, इनकी बात सच मत मानिए। खुद ही तो निकाल दिया। मान लो, वह उससे शादी ही कर ले?"

एक क्षण को लगा, तेजपाल सकपका उठे। शायद इस तरह उनके आ-पूछने की उन्हें आशा नहीं थी। संभलकर बोले: "तो हमसे कहे!"

मुंह बिगाड़कर अंगुलियां नचाती-सी वे बोलीं: "हमसे कहे! जी, वह आपसे कहे कि मुझे शादी करनी है?"

"अच्छा, मारो गोली।" यह बात तेजपाल ने जिस ढंग से कही उससे लगा कि अगर हम न होते तो वे दहाड़कर कहते: "चुप हो जाओ।"

बात एकदम समाप्त हो गई। मुझे देखकर शिष्टता से हाथ जोड़कर वे बोलीं: "मैंने देर कर दी, माफ़ कीजिए।"

उनके आने पर हम लोग उठ खड़े हुए थे: "हमारी वजह से आपको बड़ी तकलीफ···"

"खाना तो शायद हम लोग भी खाते ही है।" वे हँसकर बोलीं, और एक ओर अपने कटे बाल झटककर भरपूर मुझे देखती रहीं। वे निगाहें जैसे मुझसे सही नहीं जा रही थी। मन बेचैन था और समझ में नही आ रहा था कि क्या करूँ। उनकी बात पर हम सब खिलखिला-कर हँस पड़े।

"बैठिए न।" मिसेज तेजपाल बोलीं : "अभी कैप्टेन रुद्रा को आ लेने दें।"

"बड़ी देर कर दी, यह हमेशा देर से पहुंचता है, आई सैड, फौज में भी जब तुम ऐसे हो तो टाइम की कीमत कहां सीखोगे।"

हम लोग बैठ गये। मैंने देखा मिसेज तेजपाल के चेहरे पर एक अजब तरह की चमक है। इस चमक का सम्बन्ध मैं हमेशा अभिनेत्रियों से जोड़ता रहा हूं, क्योंकि बहुत अधिक मेक-अप करने से उनकी खाल अस्वाभाविक रूप से चमचने लगती है। मुझे यह चमक कभी अच्छी नहीं लगी। लगता है जैसे खाल के ऊपर प्लास्टिक का पारदर्शी खोल चढ़ा दिया हो। वे शायद चौके से आई थीं, और वहां गर्मी थी। फिर भी बाल-बाल जिस सफ़ाई से बने थे और होठों पर जैसी सावधानी से लिप्स्टिक का स्पर्श दिया गया था, उससे लगता नहीं था कि वे चौके से आ रही हैं। वे आसमानी शलवार और कुर्ते में थीं। पैरों में सफ़ेद कामदार हल्की जूतियां, और गले में सफ़ेद मलमल का दूधिया दुपट्टा।

तेजपाल ने मिसेज की ओर देखकर कहा : "तब तक एक रबर हो जाये?"

"नहीं।" वे सख़्ती से बोलीं : "वक्त हो, न हो आपको अपनी ब्रिज की धुन। मेज पर खाना लगा है और ब्रिज लेकर बैठेंगे..."

ऐसे रोबीले आदमी का विरोध कर सकना भी सचमुच एक साहस का काम है। उनकी फुफकारती-सी निगाहों और फुंकारती-सी सांसों से मुझे हमेशा ऐसा लगता था जैसे अभी वे उठकर किसी को गोली मार देंगे। मैं सोच ही रहा था कि फिर घण्टी बजी, और बगल के कमरे से नौकर पीछे, दूसरी ओर का चक्कर लगाता हुआ दौड़ा। इस बार कैप्टेन रुद्रा और मिसेज रुद्रा थे। हम लोग फिर उठ खड़े हुए। देर से आने पर क्षमा का आदान-प्रदान हुआ।

"गुड्डी को नहीं लाईं आप?" ललककर मिसेज तेजपाल ने पूछा।

"वो सो गई थी जी।" मिसेज रुद्रा बोलीं। दो चोटियां और

बंगलौरी सिल्क की धूप-छाहीं साड़ी। शरीर भरा था और दो ठोड़ियां बनती थीं। चेहरे पर उदारतापूर्वक पाउडर लगाया गया था। तीनों महिलाएँ सोफे पर बैठ गईं।

"अरे, बड़ी जल्दी सुला दिया आपने।" मिसेज तेजपाल एकदम सुस्त पड़ गईं: "मुझे तो ऐसा लगा, जैसे वह अभी-अभी नीचे रो रही हों..."

डिनर-सूट में कपड़ों के प्रति अत्यधिक सजग (कांशस) कैप्टेन रुद्रा पतलून की क्रीज घुटनों से उठाकर सोफे के सिरे पर बैठ गये थे। टाई की गांठ को गर्दन हिलाकर ठीक करते हुए बोले: "नहीं जी, सोई-वोई नहीं है। नीचे तक तो आई थी। शाम से ही जिद कर रही थी, हम आण्टी के यहां चलेंगे, हम आण्टी के यहां चलेंगे। गाना सुनेंगे, डान्स सीखेंगे।"

"तब फिर क्यों छोड़ आये?" भोलेपन से मुंह खुला रखकर वे बोलीं।

"हम तो लाये थे जी। साथ रूमाल में बांधकर वह खुद अपने घुंघरू लाई थी। फिर नीचे पहली सीढ़ी पर ही रोने लगी।" मिसेज रुद्रा ने कहा: "हम नहीं आयेंगे" बहुत मचल गई तो फिर लौट के जाना पड़ा। इसीलिए जरा देर हो गई। बच्चों की जिद का कोई टाइम थोड़े ही होता है।"

"लौटकर क्यों जाना पड़ा? मैं ही छोड़कर आया। ये तो बोलीं, ज्यादा चढ़ने-उतरने से हमारी साड़ी में सलवटें पड़ जाती हैं। मैं इन्हें समझाता हूं कि इन बंगालिनों से सीखो न, सपाट-सीधी सड़क पर चलते वक्त भी साड़ी की पटली पकड़कर उठाये रहती हैं।" और वे झेंपती मिसेज को चिढ़ाने से खुद ही हंसने लगे। मैंने देखा, उनकी छोटी-छोटी घनी भौंहें बटरफ्लाई मूंछों के ऊपर इस तरह थिरकती थीं जैसे वे अभी-अभी कोई गहरा मजाक करने वाले हों। उनकी चिकनी कनपटी की हड्डी इस तरह खाल के भीतर चलती थी जैसे वहां लहरें उठ रही हों।

मुसकराकर बोले : "हमारी इनके साथ शादी थोड़े ही हुई है ! हमें तो इनके फ़ादर ने इनका नौकर बनाकर भेजा है कि बेटे, कमाओ और मालकिन की सेवा करो !"

वातावरण कुछ हल्का हुआ। सब लोग मिसेज रुद्रा की ओर देखकर हंस पड़े। वे लाल पड़ गई थीं। लगता था जैसे अपने पति के हँसमुख स्वभाव और उनके प्रभाव पर उन्हें गर्व जरूर था; लेकिन शिकायत भी थी कि वे अक्सर बहुत हल्के और बेलगाम हो जाते हैं। शायद मेजर तेजपाल की उपस्थिति में यह हल्कापन उन्हें पसन्द नहीं आ रहा था। उनकी भौंहें खिच गईं। "करते होंगे सेवा···अपनी बेटी की करते होंगे, हमारा क्या है? हम नहीं रखते उसे दिन भर? और वह तो सच्ची, ऐसी शैतान है कि सारे दिन···एक तो जब देखो तब आण्टी की धुन···"

"देखिए जी।" रुद्रा मिसेज तेजपाल की ओर देखकर कहा : "यह बात निहायत गलत है। आपने हमारी लड़की को बहका लिया है। एक वह मेजर धीर का लड़का है, आते ही साहब बहादुर उसके गले में बाँह डालकर इधर-से-उधर घुमाते फिरेंगे। दुनिया भर का रोब छांटेंगे। अभी से बाप के कदमों पर चल रहा है।" और वे मुड़कर बीनू से पूछने लगे कि किशोर अगली बार कब आ रहा है, छुट्टियों में।

तरस खाकर ललकते-से स्वर में मिसेज तेजपाल ने कहा : "हाय, ले आतीं न। नीचे से ले गईं, आप भी मिसेज रुद्रा गजब करती हैं। मैं उसे बहलाकर जरा देर में चुप करा लेती।"

"आपके पास तो वह आ ही रही थी जी।" मिसेज रुद्रा ने अपनी पुत्री के प्रति उनके स्नेह से गदगद होकर कहा : "पर यहाँ आते डरती है जी।" उन्होंने एक बार मेजर तेजपाल को देखा। फिर कुछ डरते-डरते बोलीं : "कहती थी, ऊपर छेल होगा।"

"छेल क्या?" मैंने पूछा।

"शेर, भाई।" बीनू ने समझाया : "लेकिन किटी से बिलकुल नहीं डरती। उसके तो गले से लिपट जाती है।" किटी तेजपाल की अल-

सेशियन कुतिया थी।

"ओह !" और फिर सब लोग ड्राइंग-रूम में हाथ-पांव फैलाकर लेटे शेर को देखकर हँस पड़े। मैंने देखा मिसेज तेजपाल की सहमी-सहमी-सी निगाहें मेजर तेजपाल पर जा पड़ीं, जैसे प्रतिक्रिया भांप रही हों। धीरे-से बोली : "अच्छा, मैं ही जाऊंगी कल उसे मनाने।"

"उफ़, बड़ा खूंखार जानवर था यह भी।" मेजर तेजपाल ने गहरी सांस लेकर कहा। जाने क्यों उन्हें ऐसा लगा जैसे अनजाने ही सारा मजाक उनपर आकर टिक गया है। एक बार तो वे हतप्रभ हो उठे। फिर बोले : "बड़ा तूफ़ान मचा रखा था कम्बख्त ने। आज इसकी भैंस को मार गया, कल उसकी गाय का पता नहीं है। फिर दिन-दहाड़े एक आदमी को उठा ले गया। मैं फ़र्लो पर था। हांका किया गया'' साले ने सात दिन परेशान किया। आई सैड, कुछ हो जाए इसे तो मारना ही है'''" उन्होंने बात संभाल ली थी।

मैंने देखा कि बात करते समय मेजर तेजपाल का शरीर ऐसा रहता था जैसे हर जोड़ के पेंच ढीले हो गए हों—यों फ़ौजी स्वभाव के अनुसार रीढ़ की हड्डी तो तनी ही रहती थी, लेकिन इस बार उनमें जान आ गई। वे हांके का सविस्तार वर्णन करते रहे। कैसी चालाकी से शेर बकरी को उठा ले गया था। मचान पर जब दांव नहीं लग पाया तो मेजर तेजपाल नीचे उतर आए थे'''मना करने पर भी घिसटने के निशानों का पीछा करते चले गये, फिर कैसे अचानक शेर ने नाले से उछलकर उनपर हमला किया। वे भी तैयार थे। आठ-दस गज के फ़ासले से ही गोली चलाई—एक के बाद एक, तीन गोलियां। एक हांकेवाले को एक ही पंजे में खत्म करता हुआ शेर भागा। उन्होंने फिर दो गोलियां चलाईं। इसके बाद तेजपाल ने उठकर अपने मगर की खाल के जूते की टो से वे जगहें दिखाईं जहां गोलियां लगी थीं। वे भीतर डाइनिंग-रूम से एक फ़ोटो उतार लाये, जिसमें सामने शेर लेटा था और कैप्टन तेजपाल उसपर राइफ़ल टिकाए निहायत निश्चित शान से एक

पांव रक्खे खड़े थे। किस्सा ठीक वैसा ही था जैसा हर शेर के शिकार का होता है, लेकिन वह सब इस तरह सुन रहे थे जैसे पहली बार ऐसी अघटनीय घटना का आँखों देखा हाल सुन रहे हों। महिलाओं के चेहरे पर ऐसी तन्मयता और आतंक था मानो उनके सामने अभी-अभी शेर का शिकार हो रहा है। बीनू की तो आंखें निकली आ रही थीं और मिसेज रत्रा के माथे पर भाँप-सी जम गई थी। बस, मिसेज तेजपाल तटस्थ भाव से अपनी कलाई की घड़ी की चाबी को व्यर्थ घुमाती रहीं। इसके बाद सब लोग उस शेर का सिर इस खूबी और सफ़ाई से तैयार करने वाले की तारीफें करते रहे। आंखें, दांत, मूंछें—सभी कुछ असली शेर जैसा था। तेजपाल ने बताया कि कभी-कभी उसे देखकर किटी कितनी जोर से भूंकने लगती है। अपने एक मित्र के शिकार का किस्सा मुझे भी याद आ रहा था और इच्छा हो रही थी कि सुना दूं। फिर सभी के चेहरों से ऐसा लगा जैसे हरेक के पास ऐसा ही एक-एक किस्सा कुलबुला रहा है…मुझे रह-रहकर लगता जैसे हर बेकार की बात के प्रति आवश्यकता से अधिक दिलचस्पी दिखाकर वे लोग अपना समय काट रहे हैं। ज़रा-ज़रा-सी बातों को ये लोग कितनी देर तक करते रह सकते हैं।

तभी बैरे ने खाना तैयार होने की सूचना दी। बात बीच में ही छूट गई।

"देखिए, खाना अच्छा न बना हो तो शिकायत न कीजिए।" मिसेज तेजपाल ने सजी हुई मेज के एक ओर खड़े होकर आतिथेय की औपचारिकता के साथ कहा : "आज तो उलटा-सीधा बना लिया है। फिर किसी दिन बाक़ायदा आपको खिलाया जायेगा।" उन्होंने तेजपाल की ओर बिना देखे कहा।

कुर्सियां खिसकी, साड़ियाँ सरसराईं, कलफ़ लगे तह किये हुए नैपकिन फड़के और चम्मच, कांटे-छुरी बज उठे। 'आपको यह अच्छा नहीं लगा' 'यह थोड़ा और लीजिए।' के विराम, अर्ध-विरामों के साथ-साथ महिलाओं ने अपने पास-पड़ोस, और खाने-बनाने के बारे में बातें करना

शुरू कर दिया और पुरुष लोग अपनी डिवीज़न का कोई किस्सा ले बैठे। किसी जे० सी० ओ० की बदतमीजियों का वर्णन करते हुए मेजर तेजपाल का स्वर कुछ ऊँचा उठ गया और नथुने फूल उठे। इसी गुस्से में एक बोटी को उन्होंने इतनी जोर से चबा डाला कि उसकी हड्डिया कड़कड़ा उठीं। मिसेज तेजपाल रोशनदान की ओर देखने लगीं। हम सभी का ध्यान इस ओर जाये बिना नहीं रहा। अभी-अभी मिसेज तेजपाल ने जब कोई चीज काटी थी तो छुरी प्लेट से लगकर खट् से बज उठी थी। उस समय उनकी अँगुलियों को तेजपाल ने जिन आँखों से घूरा था वे अब भी मुझे याद थी।

मैंने इधर-उधर सिर घुमाकर देखा, दीवारें पीली पुती थीं और चमड़े के खोल और पेटियों में बन्दूक-पिस्तौलें टँगी थीं। जब-जब मेरी निगाह उधर गई, मुझे गोलियों के फूल का ध्यान हो आया। बैरा जल्दी-जल्दी रोटियां ला रहा था, लेकिन अकेला होने की वजह से पहले खुद ही सेंकता और फिर खुद ही लाता। सब्जियों के डोंगे लगातार इधर से उधर घूम रहे थे। कभी-कभी मिसेज तेजपाल का प्लेट पर झुका मोती जैसे दाँतों से रोटी कुतरता चेहरा मुझसे आँखें मिलते ही इस तरह मुसकरा उठता जैसे मुझे सान्त्वना दे रहा हो। वे रह-रहकर बाल झटकने के बहाने मुझे देखतीं। उनके कान में जड़ा आसमानी शेड का नग बड़ा खूबसूरत लगता था। वे महसूस कर रही थीं कि मैं अकेला पड़ गया हूँ। और जैसे इसी बेचैन अनुभूति से वे रह-रहकर मुझसे कुछ न कुछ लेने का आग्रह करतीं। उनकी इस मन.स्थिति को मैं समझता था और उनके देखते ही मुसकरा उठता, जैसे कहता, 'चलाइए, चलाइए, मैं ठीक हूँ।' लेकिन जब-जब ऐसा हुआ, मेरी निगाहें हर बार तेजपाल की ओर उठ गईं।

यों ऊपर से देखने में कहीं कुछ नहीं था और सब बड़ी स्वाभाविकता से चल रहा था। खाने की बड़ी तारीफें हुईं, किसी ने किसी डिश की तारीफ की, किसी ने किसी की। एक दूसरे को निमंत्रण दिये गए और

फिर वाहर ड्राइंग-रूम मे वैठकर अंग्रेजी-अमेरिकन पत्रिकाओं के घिसे-पिटे मजाक दुहराए गए। सुनानेवाले के सम्मान की खातिर शेष लोगों को हँसना पड़ता था। वैरा कॉफी ले आया, तो एक ही मेज पर सारे प्याले तैयार करके मिसेज तेजपाल ने सबको एक-एक कप दिया। सिगरेटों और कॉफ़ी के वीच मैं वैठा एक अलबम के पन्ने पलटता रहा। मुझे हर क्षण आशका होती कि अभी किसी ओर से व्रिज का प्रस्ताव उठेगा और मेरी रिपोर्ट कल भी तैयार नही हो पायेगी। हुआ भी यही। मैं उठ खड़ा हुआ। सबकी गर्दनें मेरी ओर उठ गईं। 'कल रिपोर्ट तैयार करनी है' के आधार पर मैं माफ़ी मांगकर चला आया। रुद्रा ने तो कहा भी : "अमाँ रिपोर्ट कही भागी जाती है। तैयार कर लेना।" वाकी लोगों ने केवल खडे होकर विदा दी। वीनू और मिसेज तेजपाल सीढ़ी तक छोड़ने आईं।

"तू तो वहुत वोर हुआ न!" वीनू ने पूछा।

"हाँ सच, आप तो विलकुल ही अकेले पड़ गए।" क्षमा याचना के स्वर में मिसेज तेजपाल वड़े आत्मीय आग्रह से वोली। "फिर किसी दिन आइए न।" उन्होने इस ढंग से भरपूर मुझे देखकर सिर झटका कि उनके कानों के दोनों आसमानी नग दिल के किसी कुहरिल अंधेरे के पार तारों की तरह टिमटिमाते रह गये। वे दरवाजे को एक हाथ से पकड़े खड़ी थीं। निगाह उनके सिर के ऊपर से पीछे दीवार पर टगे वारहसिंघों के सिर और गोलियों के फूल पर चली गई तो जैसे मुंह का स्वाद खराव हो गया। मैं कोई वात पूछना चाहता था, वह एकदम इस तरह उड़ गई कि फिर याद ही नहीं आई।

मन-ही-मन मैंने निश्चय कर लिया था कि इस फ़्लैट में नहीं आना है। उनके आग्रह के सामने जैसे यह निश्चय एकदम घुल गया। मैंने आने का आश्वासन दिया। गोलियों के फूल जैसी महत्त्वपूर्ण चीज को मैं भूल कैसे गया था। सिर झुकाकर सीढियाँ गिनता नीचे उतर रहा था कि मिसेज तेजपाल ने कहा : "हमारे लिए शेर आपने अभी तक नही

लिखे न। इस बार जरूर लिख रखिए।" उनका स्वर सुनकर मुझे फिर याद आया कि मैं दरवाज़े पर कहनेवाला था : "मिसेज तेजपाल, आप दिनभर गाती रहती है, लेकिन यहाँ आपने गाना ही नहीं सुनाया !" किसी और ने भी उनसे गाने के लिए नहीं कहा था।

अपने फ्लैट मे आकर मैंने मुक्ति की गहरी साँस ली। जैसे कोई बहुत थकान का काम करके आया होऊँ, जिसने मेरे तन और मन को एक अस्वाभाविक तनाव की स्थिति में रखा हो। ड्राइंग-रूम मे सोफ़े पर लेटे-लेटे पंखे को लगातार घूरते हुए मैं सुन्न-सा सोचता रहा। यह कमरा भी तो ऊपर के कमरे जैसा ही है, जैसे दो अलग दुनियां हों। ऊपर से कैप्टेन रुद्रा के कहकहों की आवाज आ रही थी, नीचे मेजर टर्नर के यहाँ पियानो की धुन के साथ-साथ कैप्टेन दिलजीत के फ्लैट में रेडियो, 'तेरी दुनिया में सभी कुछ है मगर प्यार नहीं।' गा रहा था···बाहर पर्दे की फाँक से सड़क की गैस बत्तियाँ पेड़ों के घूँघट से झाँकती दिखाई दे रही थी। रह-रहकर के जूं-जूं करती कारें और सामान लादे ट्रक घों-घों करते गुजर जाते थे···मन में किसी ने कहा—"आज दाना बड़ा सुस्त था।" यह रणधीर की भावनाओं को मैं अपने शब्द दे रहा था। उसका 'दाना' शब्द जैसे ही याद आया तो खुद अपना मुसकराता चेहरा आँखों में नाच गया···

आज उन बातों को एक अरसा हो गया। बीनू शायद बिलियर्डस् का खेल देखने गई थी। मुझे ऐसा कुछ आभास था। चाय पीते हुए मुझे याद आया, सचमुच उस फ्लैट मे कुछ अजब बात जरूर थी—वहाँ के रहनेवालों में कुछ विलक्षण निश्चितरूप से था। आज की कही बीनू की बात को पृष्ठभूमि के रूप में देखता हूँ तो लगता है कि मिसेज और

मेजर तेजपाल के बीच उन दिनों जो कुछ देखा था, वह सिर्फ़ तनाव ही नही, वल्कि रस्साकशी जैसी कोई चीज थी। बीनू से मैं अक्सर सुना करता था कि मिसेज तेजपाल बड़ी मस्त हैं, बड़ी लापरवाह हैं। हमेशा जरूरत-गैर जरूरत हँसती रहती हैं और दिनभर गाती रहती हैं। लेकिन मैंने ध्यान दिया कि मेजर तेजपाल की उपस्थिति उन्हें जैसे ढके रही। रणधीर और तेजपाल का रैंक (ओहदा) एक था। मगर रणधीर के बारे में मुझे आज, जब वह ले० कर्नल है, हम उसे कर्नल ही कहते थे। कभी यह भी खयाल तक नही हुआ कि यह क्या है, जबकि इस बात को मैं स्वीकार करता हूँ कि तेजपाल की हर बात बोल-बोल कर कहती थी कि वह मिलिटरी के एक उँचे अफसर हैं: एक आतंक, एक रोब या एक अदृश्य दबाव था जो सारे वातावरण पर छा जाता था और रणधीर तक से उनका व्यवहार ऐसा लगता था जैसे किसी खास ऊँचाई से झुककर मिल रहे हैं। मुझे वह ऊँचाई सह्य नही थी, इसलिए मैंने कभी उन्हें दिल से पसन्द नही किया। यों एक शिष्टाचार तो चलता ही रहा। मिसेज तेजपाल पर भी इस आतंक का जादू है, यह मैंने लक्ष्य किया; लेकिन साथ ही ऐसा भी लगा जैसे उनकी इच्छा-शक्ति इस जादू के विरुद्ध विद्रोह करती है। उनकी उपस्थिति मे वे चाहे जितनी बुझी रहती हों; मगर जब भी तेजपाल कुछ कहते, वे कुछ ऐसी उपेक्षा से देखती रहती मानो कोई नितान्त अपरिचित, निहायत ही बेकार बाते कर रहा हो··· इस बात की पहली झलक मुझे उसी समय मिली जब मैने पहली बार उस 'दाने' अर्थात् मिसेज तेजपाल को देखा था···

हम लोग अभी-अभी सिनेमा देखकर आये थे। हाथ-पांव फैलाये थके-से बैठे ड्राइंग-रूम में इन्तजार कर रहे थे कि गोमेज जल्दी खाने को बुलाये। सोफ़े पर पाँव फैलाकर रणधीर अपनी त्रिकुटी को चुटकी में पकड़े आँख बन्द किए पड़ा था। अर्दली नीचे बैठा जल्दी-जल्दी उसके

जूतों के फ़ीते खोल रहा था, बीनू कपड़े बदलने गई थी। सहसा घण्टी बजी और साथ ही तेजपाल और मिसेज़ तेजपाल धड़धड़ाते भीतर दाखिल हुए। किवाड़ शायद खुले रह गए थे। तेजपाल सफेद पतलून, खुले कॉलर की कमीज़ और सफ़ेद स्वेड के नागरा पहने थे। उन्होंने बैठते ही अपने आने की सफाई दी : "आज तो चैंप, स्कॉश कुछ जमा नहीं। एक तो तुम नहीं थे, दूसरे अइयर ने बड़ा बोर किया। आई सैड, जब लोगों मे स्पोर्ट्समैन स्प्रिट नहीं है तो खेलते ही क्यों हैं ? डाक्टर ने तो बताया नही है कि स्कॉश ही खेलो। कौन-सा सिनेमा था ?" दोनों रैकेट उन्होंने लापरवाही से फ़र्श पर डाल दिये।

रणधीर पांव समेटकर सीधा बैठ गया। आज या तो तेजपाल बहुत खुश थे या बहुत झुँझलाए हुए, क्योंकि उसने ही बताया कि इस प्रकार वे कभी नही आये, न सँभलने का अवसर दिये बिना। रणधीर ने मेरा परिचय कराया : "आप मेजर तेजपाल। हमारे ठीक ऊपर के फ़्लैट मे रहते है। और आप रिश्ते में बीनू के भाई अर्थात् सालारजंग।"

वे कुर्सी से उठ आए, 'वैरी ग्लैड टु सी यू'[1] का विनिमय हुआ।

मिसेज़ तेजपाल की ओर मेरा ध्यान विशेषरूप से इसलिए आकर्षित हुआ कि उनके बाल बॉन्ड थे और इन्हे वे हर दूसरे मिनट कानों पर हाथ लगाकर इस तरह संवारतीं थीं मानो किसी छूटी लट को संवार रही हों ! जब मैंने उन्हें नमस्कार किया तो नजर भरकर देख लेने की इच्छा को बड़ी मुश्किल से अंकुश लगाकर रोके रखा। हल्के क्रीम कलर की क्रेप की साड़ी, उसी रंग का शार्ट-ब्लाउज़ और कंधों पर हल्का काम किया हुआ ढीला-ढाला पश्मीने का केप और कानों के ऊपर खुँसा हुआ नरगिस का एक छोटा-सा सफ़ेद फूल। नाखूनों पर पॉलिश। दोनों हाथ मोटी-मोटी बँटी हुई रेशमी डोरियों के फुदनों से खेल रहे थे और छोटा-सा पीले चमकदार मख़मल का पर्स घुटनों के बीच में पीले सैंडिलों तक लटका था। पहली निगाह में तो ऐसा लगा जैसे वे उन लोगों मे हैं जो

---

१. आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

के लिए इन गॉडों का एक-एक वाक्य आयते-हदीस से कम इम्पार्टेण्ट[1] नहीं है।"

'डी० जी०' कहकर सभी मेरी ओर देखते और हँसी का फ़ौवारा बेतहाशा छूट पड़ता। उन्मुक्त पहाड़ी झरने की तरह मिसेज़ तेजपाल खिलखिलाये जा रही थीं। अब उनके पेट में शायद दर्द होने लगा था, वे एक हाथ पेट पर रखकर बुरी तरह हाँफ़ रही थीं। और उस दिन के बाद अक्सर मजाक में मुझे लोग डी० जी० कहने लगे थे।

लम्बी-लम्बी बरौनियां, सुती हुई नुकीली नाक और चाकू से तराशे हुए से पतले-पतले कसे होंठ और उभरे हुए गाल—जिन्होंने उनके चेहरे को ऐसी अभिव्यंजना दे दी थी मानो वे मुसकरा रही हों, माथे पर छोटी-सी बिन्दी और कटे हुए बाल। इस मज़ाक से वीनू को लगा कि मैं कहीं बुरा न मान जाऊँ, इसलिए हँसते हुए भी उसने आंखें तरेर कर रणधीर की ओर देखा। हँसी रुक जाने के बाद जैसी एक स्थिर जड़ता आ जाती है, वैसी ही इस समय छा गई। मिसेज़ तेजपाल ने एक पाव दूसरे घुटने पर रख लिया था। इस पाँव के घुटने पर हाथ के पंजों को आपस में फँसाये, कुहनियों को गोद में रखे वे धीरे-धीरे चप्पल में अंगूठों को उठा गिरा रही थीं। हाथों को इस तरह रखने में कलाइयाँ सामने आ गई थीं। उन्होंने घड़ी पर जब-जब भी बड़े बेमालूम तरीके से निगाह डाली, मुझसे छिपा नहीं रहा। मैं उनकी पतली-पतली सुन्दर अंगुलियों, रँगे हुए नाखूनों और अंगूठी पर निगाह जमाये रहा।

"हमारे डी० जी० साहब कभी शेर कहा करते थे।" रणधीर बोला। फिर मुझसे मुड़कर सहसा पूछा : "हाँ भई, तुम्हारी उस शेर और शायरी का क्या हुआ ?"

"कहाँ शेर और शायरी ! स्टुडेण्ट-लाईफ़ की चीजें थीं, सब खत्म हो गयीं।" मैंने टालने के ढंग से कहा : "अब तो रिपोर्टें टाइप करते हैं कम्पनी की।"

---

१. महत्वपूर्ण।

चेहरा सहसा तमतमा आया और भीतर की घुटन जैसे आँसुओं के रूप में उमड़ पड़ने को मचलने लगीं। लगा यह उन लोगों के बीच का काफी नाजुक विन्दु है। वे जल्दी-जल्दी पलक झपकती हुई, निचले होंठ को दाँतों से दवाए एरियल के जालीदार फ़ीते को देखती रहीं।

"अच्छा डार्लिंग, इन्हें कोई एक अच्छी-सी चीज सुना दो तो चलें।" जैसे इस सारी वात को मजाक मे लेते, परिस्थिति सँभालते हुए तेजपाल ने एड़ी पर घूमकर प्यार से कहा।

हम सवने साग्रह कहा : "हाँ, मिसेज तेजपाल।"

कॉफ़ी आ गई थी। वीनू ने एक वार उनका चेहरा देखा और चुपचाप प्यालों में कॉफ़ी तैयार करती रही।

"नही जी, मेरी तवियत अच्छी नही है।" वे घुटे गले और कातर भाव से वोलीं। मान से उनकी आँखें नम हो आई थीं और सामने की ओर निकले पाँव का छोटा-सा खूवसूरत अँगूठा जल्दी-जल्दी उठ-गिर रहा था।

मुझे लगा एकदम परिस्थिति वड़ी विकट हो गई है। उनका कहना क्यों नहीं माना जा रहा, इस भाव से तेजपाल के चेहरे पर सख़्ती आ रही थी और मिसेज तेजपाल को देखकर लगता था जैसे किसी ने एक वार भी अगर अनुरोध कर दिया तो वे रो पड़ेंगी। वीनू ने सवसे पहले प्याला उन्हीं की ओर वढ़ाकर कहा : "लीजिए, आप पहले कॉफ़ी पीजिए।" खड़े-खड़े तेजपाल पीछे से उनके सिर की मांग को वड़ी अजव निगाहों से घूर रहे थे···वीनू ने उन्हें प्याला ऑफ़र किया तो हठात् चौंक पड़े। 'थैंक्स' कहकर वे आराम की मुद्रा में खड़े-खड़े ही कॉफ़ी पीते रहे।

सहसा वड़े नाटकीय अन्दाज से कप को साइड-टेविल पर रखकर रणधीर वोला : "कम से कम डिप्टी-गॉड का तो अनुरोध रख लेतीं।"

हम सब लोग फिर वड़े जोर से हँसे। "अच्छा छोड़िए, फिर कभी सही।" कहकर वात टाल दी गई। और फिर सव लोग अपने आसामिया

"लो सुन लो।" रणधीर बीनू को चिढ़ाता-सा बोला : "मैं तो खुद ही कहता था कि उसने लिखना-लिखाना जाने कब का बन्द कर दिया, लेकिन नहीं साहब, दुनिया की कोई खसूसियत क्यों हो जो हमारे डी० जी० में न हो। दिन-रात बस यही, यह गजल हमारे भाई ने लिखी थी, फ़लाने सिनेमा में है, फ़ॉल ने इसे गाया है।"

इससे पहले कि बीनू मेरे नाराज हो जाने के डर से चिनचिनाकर कोई बात कहे, मिसेज तेजपाल बड़ी ललककर बोल उठीं : "आपके पास कुछ अच्छे शेर हों तो हमें दीजिए।"

"क्यों, सिनेमा के गीतों का स्टॉक खत्म ?" तेजपाल ने मुंह खोलकर एक खास अन्दाज से धुआं निकालते हुए कहा। उनकी निगाहें व्यंग्य से हँस रही थीं। कुर्सी के हत्थे पर रखे हाथ में सिगरेट थी और उसपर आँखें टिकाए वे उसे तर्जनी और अंगूठे के बीच में घुमा रहे थे। फिर खुद ही हँस कर बोले : "उफ़, इनके पास सिनेमा के गीतों का बेइन्तिहा जखीरा है। कौन-सा वक्त है जब ये गीत न गाती हों ! आई सैड, आई, म सिक आफ देम।"[१]

"क्या है मेजर तेजपाल, आप हमेशा बेचारी के गीतों को ही टोकते रहते हैं।" मेरे प्रति बीनू की जो सहानुभूति अप्रकट रह गई थी वह मानो मिसेज तेजपाल के लिए उफ़न पड़ी। "आप ही देखिए, यहाँ की महसूसी में यही तो एक ले-देकर ऐसी हैं जो सबको खुश रखती हैं, वर्ना यहाँ तो सभी अपने-अपने दर्बों में बन्द रहते हैं। पहले जरूर जरा ऑड (अजब) लगा था, लेकिन अब तो ऊपर से आवाज न सुनाई दे तो बड़ी बेचैनी रहती है।"

तेजपाल जाने क्यों उठ खड़े हुए और एक तस्वीर के बिलकुल नीचे खड़े होकर उसे देखते हुए बोले : "आप ही तो शायद बता रही थीं कि नीचे वालों ने इनका नाम रेडियोग्राम रख रखा है। ऑटोचेन्जर।"

इस बार मिसेज तेजपाल पर हँसने का नम्बर था। लेकिन उनका

---

१. मैं तो गीतों से परेशान हूँ।

चेहरा सहसा तमतमा आया और भीतर की घुटन जैसे आँसुओं के रूप में उमड़ पड़ने को मचलने लगी। लगा यह उन लोगो के बीच का काफ़ी नाजुक बिन्दु है। वे जल्दी-जल्दी पलक झपकती हुई, निचले होंठ को दाँतों से दबाए एरियल के जालीदार फ़ीते को देखती रही।

"अच्छा डार्लिग, इन्हें कोई एक अच्छी-सी चीज सुना दो तो चलें।" जैसे इस सारी बात को मजाक मे लेते, परिस्थिति सँभालते हुए तेजपाल ने एड़ी पर घूमकर प्यार से कहा।

हम सबने साग्रह कहा : "हाँ, मिसेज तेजपाल।"

कॉफ़ी आ गई थी। बीनू ने एक बार उनका चेहरा देखा और चुपचाप प्यालों में कॉफ़ी तैयार करती रही।

"नही जी, मेरी तबियत अच्छी नही है।" वे घुटे गले और कातर भाव से बोलीं। मान से उनकी आँखें नम हो आई थीं और सामने की ओर निकले पाँव का छोटा-सा खूबसूरत अँगूठा जल्दी-जल्दी उठ-गिर रहा था।

मुझे लगा एकदम परिस्थिति बड़ी विकट हो गई है। उनका कहना क्यों नहीं माना जा रहा, इस भाव से तेजपाल के चेहरे पर सख्ती आ रही थी और मिसेज तेजपाल को देखकर लगता था जैसे किसी ने एक बार भी अगर अनुरोध कर दिया तो वे रो पड़ेंगी। बीनू ने सबसे पहले प्याला उन्हीं की ओर बढ़ाकर कहा : "लीजिए, आप पहले कॉफी पीजिए।" खड़े-खड़े तेजपाल पीछे से उनके सिर की मांग को बड़ी अजब निगाहों से घूर रहे थे···बीनू ने उन्हें प्याला ऑफ़र किया तो हठात् चौक पड़े। 'थैंक्स' कहकर वे आराम की मुद्रा मे खड़े-खड़े ही कॉफ़ी पीते रहे।

सहसा बड़े नाटकीय अन्दाज़ से कप को साइड-टेबिल पर रखकर रणधीर बोला : "कम से कम डिप्टी-गॉड का तो अनुरोध रख लेतीं।"

हम सब लोग फिर बड़े जोर से हँसे। "अच्छा छोड़िए, फिर कभी सही।" कहकर बात टाल दी गई। और फिर सब लोग अपने आसामिया

वैरा गोमेज की बात करते रहे। वह हिन्दी नही जानता था। एक बार जब घड़ी बन्द हो गई तो उसे बीनू के पास लाकर बोला : "मेम साहब, यह घड़ी तो मर गिया।" चाबी-वाबी दूर, बीनू बुरी तरह हँसती रही। वातावरण का तनाव हटाने के लिए बीनू उसी की बातें बता-बताकर हँसती रही। तेजपाल ने भी हँसी मे योग दिया। वे सब बैठ गये थे।

फिर एक घूंट मे सारा कप खत्म करके मेजर तेजपाल उठ खड़े हुए: "अच्छा मिसेज धीर, अब हम चलेगे। आप भी खाना-वाना खाइए। घूम-फिरकर आये हैं।" उन्होने अपना विशाल पंजा मेरी ओर बढ़ाकर कहा : "आप तो अभी यहीं है न ? फिर मुलाक़ात होगी। एक ही तो सीढ़ी है। कभी ऊपर आइये न।" उनकी अंगुलियों के पोरो के ऊपर भी बालों के गुच्छे थे।

उनके इस प्रकार उठ खड़े होने से सभी चौंक पड़े। मिसेज़ तेजपाल ने अभी एक घूंट से ज्यादा नहीं लिया था। उन्होने एक बार उठते तेजपाल और एक बार प्याले को देखा। मैं उस समय तेजपाल को जवाब दे रहा था : "आऊगा ज़रूर, लेकिन आपके बराबर ऊंचा उठते डर लगता है।"

"मान गए भाई, आपके डी० जी० शब्दों के खिलाड़ी हैं। ज़रूर शायरी कर लेते होगे।" तेजपाल खुश हो गए। पता नहीं क्यों उनका चेहरा देखकर मुझे अलैक्जैण्डर ड्यूमा का चेहरा याद आ गया। उनकी तुलना के लिए फिर मिसेज़ तेजपाल की ओर देखा और जाने क्यों मुझे ऐसा लगा जैसे एक बार उनके मन में यह आया हो कि तेजपाल को खड़ा रहने दें और खूब आराम से कप खाली करके ही उठें। उनकी भौंहे खिच गई थी. लेकिन बड़ी मुश्किल से कप के हैण्डिल से उलझी अँगुली निकालकर वे उठ खड़ी हुई, सख्ती से गर्दन को झटका देकर उन्होंने बालों को एक झोंका दिया और दोनों हाथ उठाकर कानों के ऊपर उन्हें पीछे करने लगीं। उनकी खुली कमर और सुडौल शरीर ने सभी की निगाहें खींची। इसे उन्होंने भी भांप लिया और यह प्रशंस

शायद उनके आहत अहं को थोड़ा सहला सकी···

कमरे से बाहर निकलते समय तक उनके चेहरे की सारी दीनता और निरीहता के पार कोई उद्धत क़िस्म की चीज उभरती चली आ रही थी; शायद लापरवाही, शायद मस्ती···शायद चुनौती। उन्होंने कमर पर दोनों हाथ इस तरह रख लिए कि कुहनियां पीछे की ओर निकल आई और उनपर केप छाते की तरह तन गया। ऐसा लगा जैसे उन्होंने जान-बूझकर अपने शरीर को ऐसा लचीला, गदरीला और त्वचा को ऐसा स्निग्ध-पारदर्शी बना लिया है कि खामख्वाह उसे छूकर देखने की इच्छा मन में जागती थी···शायद तेजपाल के उस हिस्से को चिढ़ाने के लिए उन्होंने सीधे मेरी ओर देखते हुए इस बार साधिकार कहा : "मिसेज धीर, आप लेकर आइए न !" और मुझे लगा, उनकी निगाहों का जादू नस-नस में तैरता चला गया।

"आपके कैम्प जाने का क्या हुआ मेजर तेजपाल ?" बाहर की ओर चलते हुए रणधीर ने पूछा।

तेजपाल ने ठोड़ी सहलाते हुए कहा : "इसी परेशानी में तो हूं यार ! अगले महीने ही शायद तीन महीने को जाना पड़े।"

"जगह का पता चल गया ?"

"अभी कोच्छ पता नहीं।" तेजपाल दोनों कन्धे 'क्या पता' के सिनेमाई ढंग से झटककर होंठ सिकोड़ते बोले : "पांच-छह दिनों में तो एन० सी० सी० के लड़कों को लेकर जाना है, यहां कहीं पास के गांव में सोशल-सर्विस के लिए। यह एक साली और मुसीबत लगी है जान को। फावड़े लेकर सड़कें बनाओ। शायद एक हफ्ते का कैम्प रहे।"

"हमारा अभी कुछ पता ही नहीं···" पतलून की जेब में हाथ डाल-कर रणधीर चिन्तित हो आया। "शायद आप ही के साथ पड़े।"

"आइये, जरूर आइये।" कहकर बड़ी अपनत्वभरी मुस्कान के साथ मिसेज तेजपाल ने अपनी सफ़ेद हथेली उठाकर 'बाई' के ढंग पर नमस्कार किया। तेजपाल के हाथ में रैकेट थे। हम लोग उन्हें सीढ़ियों पर चढ़ता

देखते रहे : स्लिम शरीर, भरी देह, सीढ़ियों पर उठते कदम, लहराते केप के फूल और ऊपर झूमते बाल···सीढ़ियों के मोड़ पर एक बार फिर बाई-बाई हुआ।

"सरकार अब चलिये।" बीनू ने याद दिलाया तो रणधीर झेंप कर मुस्कराया और बीनू के कन्धे पर हाथ रखकर लौट पड़ा : "मेजर तेजपाल की फ़ैमिली बड़ी ऊँची है। देहरादून के प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज में देखे थे मैंने इसके ठाठ। बाप शायद एच० एच० का कज़िन है। खुद छोटा-मोटा राजा है। हजारों एकड़ की जमींदारी है। देखा नहीं, हर बात में एक अजब शान है—चेहरे-मोहरे सभी से राजसी रौब टपकता है।" फिर मानो मेरी आदतों को लक्ष्य करके कहा : "कभी आपको ढीला-ढाला नही दीखेगा। बड़ा स्मार्ट (चुस्त) चैप है।"

मैंने लापरवाही से कहा : "यार, हमें तो तुम्हारी मिसेज तेजपाल बड़ी अच्छी लगीं।"

रणधीर का हाथ धीरे से हटाकर बीनू ने रेडियो ऑन कर दिया था और उसके ऊपर झुकी, बिलकुल उससे मुंह सटाये स्टेशन मिला रही थी। एकदम खिलकर हमारी ओर देखती बोली : "अच्छी हैं न ! सचमुच कितनी स्वीट हैं···दिल की बड़ी अच्छी है बिचारी। कोई भी बात बतानी-कहनी होगी, खुद बीस बार चली आयेंगी। और ऑफ़ीसर्स की बीवियों की तरह घमण्ड नहीं है कि वह तो हमारे यहाँ एक ही बार आई हैं, हम दूसरी बार कैसे जाएं। आलस्य तो छू नहीं गया। उनका बस चले तो दिन भर गाती हुई किटी को सीढ़ियों पर ही चढ़ाती उतारती रहें···" सहसा खट् से स्विच बन्द करके कुछ सुनती हुई वह बोली : 'लो, ऊपर पहुंचते ही गाने लगीं। दिन भर गाती हैं···दिन भर। बरामदे में स्वेटर बुनेंगी तो गाएंगी, किचिन में होंगी तो गायेंगी।"

"शी'ज़ फुल ऑफ़ म्यूज़िक।"[1] रणधीर ने कहा।

---

१. वह संगीत से भरी हुई हैं।

सचमुच मैं आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। इतनी स्नायविक घुटन के वातावरण के बाद ही सहसा कोई यों गा भी सकता है यह मेरी कल्पना में भी नहीं था···पहले तो मुझे ऊपर बजते रेडियो का भ्रम हुआ, लेकिन स्वर के साथ न कोई साज-संगीत या न रेडियो की खर्राहट·· आवाज बस एक मधुर गुनगुनाहट-सी थी।

"लेकिन इन लोगों मे···"

"है अपनी कोई पर्सनल चीज।" रणधीर टाल गया : "दूसरो के व्यक्तिगत मामलों से हमें क्या मतलब ? वट यू सी हर···क्या ब्यूटी[1] है, क्या शरीर है। बिलकुल जैसे मक्खन का बनाकर खड़ा कर दिया हो। एकदम निन्नानवे नम्बर का दाना है।" वह पुलककर बोला।

"दाना क्या ?" मैंने जिज्ञासा से पूछा।

बीनू नाराज हो गई। भौहें तरेरकर बोली : "शर्म नहीं आती दूसरों की बीवियों की बातें करते ? कोई आपकी बीवी को लेकर यों उल्टी-सीधी बातें करे तो ?"

रणधीर ने टाई खोलकर बीनू के कन्धे पर रख दी और लापरवाही से बोला : "करे तो करे। हमारी बीवी क्या किसी से कम दाना है !"

बीनू लाल हो उठी : "हिश्ट।" रणधीर की पीठ पर प्यार से टाई फटकारकर बोली : "इसका तो ध्यान करो।"

"यही कौन हमारा खयाल कर रहा था ? देखा नहीं, कैसा आंखें फाड़े दाने को खाये जा रहा था।" रणधीर अपनी लड़कपन की मस्ती पर उतर आया।

मेरे कान सन्ना उठे। पूछा : "दाना क्या ?"

झेंपकर जैसे बड़ी मुश्किल से बीनू ने बताया : "अरे भाई, हर खूबसूरत लड़की को ये लोग दाना कहते हैं। मतलब आंखों का भोजन। बड़े खराब हैं ये। इस बार विण्टर वैकेशन्स[2] में किशोर आया था सो उसे भी सिखा दिया। सम्स या टेब्लिस याद करते-करते अचानक बोल

---

१. सौन्दर्य २. शरद् अवकाश

उठता था—मम्मी, मम्मी ! पापा का दाना गा रहा है । इसे उतरते-चढ़ते या किसी भी लड़की को आते-जाते देखता तो कहता – पापा का दाना जा रहा है । बोलो, वहाँ वापस स्कूल में जाकर क्या नाम रखायेगा ? क्या कहेंगी सिस्टर्स भी कि अच्छे मैनर्स[1] सिखाये हैं तेरे पेरेण्ट्स[2] ने ।"

दाना शब्द पर मुझे हँसी आये बिना न रही । बात चूँकि उसके बेटे पर आ गई थी इसलिए वीनू एकदम भूल गई कि किस चीज के बारे में बता रही थी । उसने अपने बेटे के मैनर्स और आदतों पर बोलना शुरू कर दिया था । इसलिए मैं बीच में बोला : "है तो सचमुच दाना ही ! बेशक निन्नानवे नम्बर का ! उसे देखते तो तुझे पच्चीस भी मुश्किल से मिलेंगे ।"

"ए, माइण्ड इट," बनावटी क्रोध से रणधीर बोला : "यों हमारे शब्दों को मत खराब करो । गुड सैकिण्ड क्लास से कम नम्बर की चीज दाना नहीं कहलाती । भूसा हो जाती है ।"

"सॉरी !" हमने फिर एक साथ परिहास से वीनू को देखा । ऊपर से गुनगुनाहट अब भी आ रही थी । मैं बोला : "यों साड़ी के साथ बॉब्ड हेयर बहुत देखे हैं लेकिन किसी पर इतने अच्छे भी खिल सकते हैं, इससे पहले इसका अन्दाजा नहीं था !" सचमुच मुझे अब याद आया कि कटे बाल, लिप्स्टिक-पाउडर और पेट दिखाता ब्लाउज, यह सब मुझे बड़ी ओछी मनोवृत्ति की चीजें लगती रही हैं । फिर भी मुझे उनसे घृणा नहीं हो पाई ।

"च्च्...अए हए ।" वीनू मेरा मजाक बनाती बोली : "बहुत भा गई क्या ? कहो सन्देशा पहुँचवा दें ? लेकिन याद रखना, मेजर-तेजपाल गोली मार देंगे, मुझे तो देखते ही डर लगता है । राक्षस जैसी तो आँखें हैं ।" आँखें बन्द करके वीनू ने भय की एक फुरहरी ली । फिर करुणा से बोली : "बाल इसके अब नहीं, दो महीने पहले देखते । रेशम जैसे बाल और ऐसे घने और लम्बे कि पिंडलियों पर लहराया करते थे । शोर हो

---

१. आचार-व्यवहार २. माता-पिता

गया था सारी जुबली-लाइन्स में। इसी डर के मारे बेचारी जूड़ा बांधती थी। राह चलते रुक जाते थे। सिर के बराबर का जूड़ा होता था। कम्बख्त चुपचाप गई और कटा आई। लेकिन जिन्दगी भर की आदत अभी गई थोड़े ही है। देखा नहीं तूने, हाथ बार-बार बाल संवारने को उठ जाता है।"

"क्यों, कटवा क्यों आई ?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"अरे, ऐसी कोई बात भी नहीं थी। हमारे सामने ही की तो बात थी। यों ही सब लोग बैठे थे। ये गा रही थी ! गला तो अच्छा है ही, लोगों ने जी खोलकर तारीफ की। तेजपाल बोले : 'इसका गाना सुनते-सुनते तो मैं आजिज आ गया हूँ, लेकिन मुझे इसके बाल बड़े खूबसूरत लगते हैं। इन्हीं पर मरता हूँ।' उस वक्त तो कुछ नही बोली। दूसरे दिन ही जाकर सारे बाल कटवा आई और खुद उनकी याद करके रोती रही। है बड़ी सनकी।"

मैं जैसे धक् से रह गया···गुनगुनाहट अब भी सुनाई दे रही थी। आज जब सोचता हूँ तो फिर ध्यान आता है 'गोलियों का फूल और कुहकता स्वर।' उस क्षण पहली बार मेरी इच्छा हुई कि घुंघराले बालों के ज्योतिर्मण्डल से घिरे उस मुख-मण्डल को पास से देखूं, दोनों कन-पटियों को हथेलियों में दबाकर देखूं·· देखूं उन आंखों मे कौन-सी गह-राइयों की तरल कालिमा मचल रही है···

बरामदे में बेंत की कुर्सियों से बचकर इस सिरे से उस सिरे तक टहलते हुए बाहर देखा; हवा सील गई थी और हल्की-हल्की बूंदें गिर रही थीं। आकाश गुम था। यहाँ-वहाँ लगे बल्बों की रोशनियों में गिरती बूंदे साफ दिखाई दे रही थीं। लॉन सोए पड़े थे और बच्चों के खेलने-फिसलने के लिये बने हुए लोहे के झूले जन्तर-मन्तर से दिखाई देते थे। आइसक्रीम और बिस्कुट के कागज़ इधर-उधर बिखरे थे। लॉन के

किनारों पर क्यारियों में लगे सुर्ख और पीले डलिया के फूल धुंधले-धुंधले दीखते थे; दूर किले के मैदान की ढालू सड़क से आती किसी मोटर की हैडलाइटों की हल्की परछाईं आँखों पर कौंध जाती और बरामदा हल्की रोशनी से भासमान हो उठता। सामने के ब्लॉक में हमारे फ़्लैट के साथ जो फ़्लैट पड़ता था, उसके पीछे की ओर वाला बरामदा इधर ही था। भीतर कमरे की हल्की-सी रोशनी में बनियान और खाकी नेकर पहने एक अर्दली दौड़-दौड़कर मसहरी लगा रहा था। सामने ही वह कोना दिखाई दे रहा था, जिसमें बैठकर मैं अक्सर टाइप किया करता था और ऊपर वाले बरामदे में कभी-कभी किटी इतने जोर से भौंकती थी कि सारा ब्लॉक गूंज उठता था। गाने का स्वर और किटी का भौंकना, कितनी विरोधी चीजें थीं, लेकिन लगता है जैसे इनमें कहीं गहरा साम्य है। हाँ, टाइप करते हुए, बरामदे में ही तो शायद पहली बार मैंने मिसेज तेजपाल के एक दूसरे रूप को निकटता से देखा था···

मेज पर चारों ओर कागज बिखरे थे और मैं टाइप कर रहा था। फलवाला आया था सो किवाड़ खुले ही थे ··तभी डुबकी लगानेवाले हवाई जहाज की तरह गीत की गुनगुनाहट ऊपर से उतरती चली आई और भड़ से किवाड़ खुल गये···

'ओ सॉरी, मैंने सोचा मिसेज धीर बैठी-बैठी बिन रही होंगी, किवाड़ खुले होंगे तो अचानक जाकर उन्हें चौंका दूँगी।" दोनों हाथों से किवाड़ पकड़े वे खड़ी रहीं। आँखों पर काला चश्मा, हल्की गुलाबी क्रेप की साड़ी, वैसा ही ब्लॉउज, नाखूनों पर हल्के गुलाबी शेड की नेल-पालिश, हाथ में बेंत की चपटी डोल्ची, जिसके दोनों ओर प्लास्टिक के फूलकढ़े पर्दे लगे थे। कन्धे पर सुनहरी काम का बिलकुल सफ़ेद पर्स। मैं सचमुच चौंक पड़ा। हड़बड़ाकर उठा : "आइए, आइए।"

वे दरवाजे को हल्का-सा भेड़कर उसी निश्चिन्त लापरवाही से एक-एक क़दम पर जोर देती वडी भीनी-भीनी खुशबू के झोंके के साथ भीतर चली आई।

"वीनू बाथरूम में है। अभी आती है। बैठिये आप तब तक।" मैं अपने टाइप किये पृष्ठों पर निगाह डालता बोला। रणधीर का शब्द दिमाग में टकराया : 'निन्नानवे नम्बर का दाना है।' जब मुसकराहट किसी तरह नहीं रुकी तो सिर मोड़कर कागज समेटने लगा।

"अरे, मुझसे तो बोली थी कि दो बजे तैयार मिलूंगी। ये कोई नहाने का टाइम है? मरेगी।" वे बेंत की कुर्सी पर एक घुटने पर दूसरा चढ़ाकर बैठ गई थीं और सैण्डल पर अपलक निगाहें टिकाये धीरे-धीरे पाँव हिला रही थीं।

"कहीं बाहर जाना है क्या?" मैंने देखा, आज वे काफ़ी हल्के मूड में थीं। वे मिसेज धीर की जगह वीनू कह रही थीं।

"न्यू मार्केट की बात थी, शायद कुछ खरीदना था। कहती थी चार बजे से पहले आ जाना है न, वर्ना मेजर धीर वेट करेंगे। शायद कुछ पर्दे-वर्दे लेने हैं।" फिर झटके से मुड़कर बरामदे में लटके छोटे-छोटे हरे गमलों की तरफ निगाह डालकर बोली : "मुझे तो ये गमले और फूल बड़े अच्छे लगते है। वीनू बोली, मैं दिला लाऊँगी। मैं अपने कमरे के साइडवाले बराण्डे में लटकाऊँगी। रात मे कभी आँख खुल जाये, बराण्डे में चाँदनी के टुकड़े बिखरे हों···गमलों मे लटके फूल कुनमुना रहे हों, बाहर ओस पड़ रही हो तब धीरे-धीरे टहलने में कैसा अच्छा लगता है। है न?"

अरे, ये तो बाक़ायदा कविता करने लगीं। मैंने चौंककर उनकी ओर देखा! काला चश्मा उन्होंने उतार लिया था और दोनों कमानियों को धीरे-धीरे दाँतों पर ठोकती वे बाहर की ओर निगाहें टिकाये कह रही थीं। उन्हें निर्भय होकर देख लेने का अवसर था। मैं उनकी कनपटी और कन्धों को छूते रेशमी बाल देख रहा था। शायद अभी-अभी उन्होंने

सिर धोया था, शैम्पू की हल्की-हल्की गंध आ रही थी। गाल का सिरा टूटे चाँद-सा लटका था⋯कुहनी तक गुलाबी चुस्त ब्लाउज में बँधा हाथ कुर्सी की बाँह पर टिका था⋯घड़ी की काली डोरी कलाई पर बड़ी खूबसूरत लग रही थी। और ताल देती अँगुलियों पर ताजा लगी नेल-पॉलिश गँधा रही थी।

तभी झटके से घूमकर वे बोली : "अरे लो, मैंने तो आपको डिस्टर्ब कर दिया। बैठकर गप्पें लड़ाने लगी। यह मेरी बड़ी बुरी आदत है, जहाँ भी बैठ गई कि गप्पें। अच्छा, ऐसा है कि मैं ऊपर चली जाती हूँ, अपनी किटी से दो-एक बातें करूँगी, या नीचे गुड्डी से गाना सुनूँगी। जब मिसेज घी⋯वीनू नहा ले तो मुझे कहलवा दीजिये। आप काम करें⋯"

"नहीं, नहीं⋯मैं तो यहाँ खुद ही नींद से लड़ रहा था।" मैंने जान-बूझकर हाथ मुँह के सामने लगाकर जँभाई ली। वैसे उनके रंग-ढंग से भी उठने की कोई बात नहीं लगती थी। जैसे यह बात कहनी थी, इसलिये कह दी। धीरे-से हँसकर कहा : "यहाँ आकर तो खाने से मैं परेशान हूँ। एक तो यह सीली-सीली हवा, दूसरे हर अगले घंटे बाद ब्रेकफास्ट, लंच, टी या डिनर में से किसी न किसी का वक्त हो जाता है। बीच-बीच में फल-बिस्कुट तो चलते ही रहते हैं।⋯पहले खाने की खुमारी उतरी नहीं कि दूसरे का वक्त आ गया। सबके ऊपर यह जहाजों का सूट (कालिख)⋯आप क्या कर आईं ?"

वे फिर बाहर देख रही थीं; झटके से मेरी ओर सिर घुमाया तो बालों ने झकोला लिया। "मैं !" फिर जैसे दर्द से हँसी, "मुझे क्या करना है ? वही सुबह उठो, ब्रेकफास्ट तैयार कराके दो, ये परेड से आयें तो साथ बैठकर खाओ और दोपहर भर बैठे-बैठे मक्खियाँ मारो। शाम को कहीं सिनेमा या वही आर्डिनेन्स-क्लब, या इस-उस के यहाँ रिटर्न-विजिट।⋯मन नहीं लगता तो वीनू के साथ शापिंग कोविंग पर चले गये, नहीं तो गुड्डी से गप्पें लड़ाते रहे⋯अपनी किटी के साथ थोड़ा-बहुत घूम आये, स्वेटर बुनते रहे। वही बँधी-बँधाई जिन्दगी⋯वही बँधे-

बँधाये लोग···बस अपनी तो यहाँ वीनू से पटती है।" वे गोदी में रखे चश्मे की कमानियाँ उठाती-गिराती रहीं।

"और वीनू आपके गुण गाते नहीं थकती।" मैं देख रहा था, इस समय उनके ऊपर उस छाया का कोई नामोनिशान नहीं था जो मेजर तेजपाल की उपस्थिति में उनकी आँखों में मँडराया करती थी। वे ऐसी खुलकर बैठी थीं जैसे न जाने कब की परिचिता हों। पता नहीं यह काल्पनिक इच्छा-पूर्ति होती है या कुछ और कि कुछ चीजें हमें इतनी अच्छी लग जाती हैं, और हम उनमें अपनापन झलकता देखने लगते हैं।

वे कह रही थी: "वीनू से ही क्या होता है, यहाँ तो सभी लोग नाराज है।" सहसा चुप होकर वे कुछ सोचने लगीं। मैंने सोचा, शास्त्रानुसार आकर्षक न होते हुये भी ये आँखें कम सुन्दर नहीं है। 'सभी लोग' में कहीं न कहीं निश्चय ही तेजपाल होंगे, लेकिन यह विषय इतना कोमल था कि छूने की हिम्मत न होती थी। उत्सुकता के मारे मेरा मन बेचैन हो उठा। मैंने बड़े आग्रह से कहा: "आपने हमें गाना नहीं सुनाया मिसेज तेजपाल!"

मेरी बात पर गौर से उन्होंने मुझे देखा और सहसा खिलखिलाकर हँस पड़ीं: "गाना!" उनके गालो के भँवर और गहरे हो आये। हँसते-हँसते वे दो-तीन बार आगे-पीछे झुकी और दाँतों की बिजली से चौंधियाकर मैंने आँखें दूसरी ओर घुमा ली। "दिन भर तो गाती रहती हूँ। अब अलग से ही गाने मे क्या रखा है?"

मुझे उनके हँसने का कारण समझ में नहीं आया। लगा यह हँसी बड़ी नपी-तुली और सब मिलाकर नक़ली है। फिर जैसे मुझे बड़े कान्फ़िडैन्स[1] में लेकर बोली: "कभी खूब जी भरकर सुना दूँगी, इतना कि आप खुद मना करने लगें।"

"अब सुनाइये न।" मैंने फिर उसी आग्रह से कहा। सोचा शायद

१. विश्वास

और गाने वालों की तरह दो एक बार कहे बिना वे न गाती हों।
"अपने मन से जब गायेंगी, तब तो गायेंगी ही।"

हठात् वे उठ खड़ी हुई। चश्मे की कमानी पकड़कर घुमाती हुई बोलीं : "तो जिन्दगी भर दूसरों के मन से ही गाती रहूँ? नो, आई सिम्प्ली कान्ट।[1] अकबर का वो कौन सा शेर है? – भरते हैं मेरी आह को वे ग्रामोफोन में, कहते हैं दाम लीजिये और आह कीजिये।" फिर सहसा बात तोड़कर कहा : "अरे बड़ी देर लगा दी बीनू ने।" वे एक-एक कदम रखती; चश्मे को कमानी से घुमाती बरामदे के दूसरे सिरे अर्थात् बाहर के दरवाजे के पास तक गई और बुन्दकियों-दार धुंधले कांच के पार देखने की कोशिश करती रहीं।

मेरा मुंह तमतमा आया। स्तब्ध बैठा देखता रहा। वे मुझसे अचानक इतनी सख्त बात कह बैठेंगी, इसके लिए मैं तैयार नहीं था। मैंने क्यों कहा उनसे गाने को? रेडियो-सिनेमा मे मैंने उनसे अच्छे गाने सुने हैं। ऐसी कोई खास जन्नत की हूर भी नही हैं। हम लोगों ने अपने को गिरा-गिराकर इन औरतों के दिमाग सचमुच बहुत बढ़ा दिये हैं। बैठी रहतीं चुपचाप। वह तो मैं शिष्टाचार के नाते बोलने लगा था। उनके चेहरे की मुसकराती छवि देखकर जाने कैसे मुझे ऐसा विश्वास हो गया था कि मैं उनसे चाहे जैसी बात कहूँ, वे बुरा नही मानेंगी और मेरी बात रखेंगी। और झूठ नहीं बोलूंगा, अपने को मैं विशिष्ट-व्यक्ति भी समझता था, इसलिये चाहता भी था—उन्हें मेरी बात रखनी ही चाहिये। शायद इस वक्त उनका रंग ढंग भी इतना कुछ उन्मुक्त था। मैं उन्हें पीछे गौर से देखता रहा—सुडौल तो उनका शरीर है ही। गुलाबी साड़ी का फ़ॉल और पटलियाँ। झीनी साड़ी से झांकती बालिश्त भर चौड़ी कमर की पट्टी। जाने क्यों मुझे उनपर क्रोध ही नहीं करते बन रहा था, लगता था कही वे बहुत निरीह हैं। वे अब लौटेंगी, सोचकर मैं अपने कागज़-पत्तर घूरने लगा।

---

१. नहीं, मैं ऐसा नही कर सकती।

"और बताइए, आपकी शायरी कैसी है ?" मुड़ते ही उन्होंने ऐसी स्निग्धता और अपनत्व से पूछा जैसे कोई बात ही नहीं हुई हो। दोनों पँजे फैलाये मुझे टाइप करने को तैयार देखकर वे सहसा खिलखिलाकर हँस पड़ीं : "एक ही बात से सारी सुस्ती दूर हो गई न ? सचमुच, आप आदमी लोग भी बड़े अजब होते हैं। आप चाहते हैं इसीलिये फूल खिलें, इसीलिए कोयल बोले, इसीलिये झरने बहें, बादल भटकें ! मैं देखती हूँ कि रूप-रंग चाहे जितने अलग हों, मिट्टी सब एक है।"

नहीं, मैंने सोच लिया था कि मैं इनकी किसी बात पर आश्चर्य नही करूँगा। ऐसा नही लगता कि वे अपनी स्वाभाविक स्थिति से गुजर रही हों। मैं चुपचाप व्यर्थ ही टाइप करता रहा। एक बार मन में आया कि कोई सख्त बात कह दूं, फिर चुप रह गया। फिर वे एकदम स्वाभाविक स्वर में बड़े अनुरोध से बोलीं : "हमारा एक काम कर दीजिये न ! कुछ अपने और दूसरों के अच्छे अच्छे शेर लिख दीजिये।"

मैंने सिर हिलाया और व्यस्तता से अनमने भाव से कहा : "जी।"

उन्होंने सहसा बाल झटकते हुए मुझे देखा और दो चक्कर लगाये, हुंः, आप से तो ज़रा-सा गाने को कहा सो नही हुआ और दूसरे से आप उम्मीद करेंगी कि दुनिया भर की बेगार करेगा। वे मुसकराकर बोलीं : "आपको अभी कहीं फाँसी-वाँसी नहीं मिली।"

मैंने सिर उठाकर प्रश्नवाचक मुद्रा से देखा, अर्थात् क्या मतलब ?

"नहीं समझे ?" वे इस तरह हँसी जैसे बहुत बड़ा मजाक करने जा रही हों। "कही कोई फ्यांसी-व्यांसी (वाग्दत्ता प्रेमिका) नही है ?" —मानो गाने का अनुरोध करने का मेरी प्रेमिका से कोई सम्बन्ध हो। "अच्छा आप तो बताएँगे नही, बीनू से पूछती हूँ।" फिर सुना, वे गुसलखाने के पास जाकर बीनू से बातें कर रही हैं। उनकी डोलची अभी तक कुर्सी के पास रखी थी। मन हुआ कि उठाकर नीचे फेंक दूं, फिर अपने बचपन पर खुद ही हँसी आई। कार्बन को मुट्ठी में गोल-मोल करके फेंकने से पहले एक बार फिर इच्छा हुई कि उसे उनकी डोलची

में रख दूं। तभी दूसरी ओर के बरामदे से सुनाई दिया।

"जवाँ है मुहब्बत हसीं है जमाना।
लुटाया है दिल ने खुशी का खजाना···"

अरे, वे तो गाने लगीं। मैं मुसकरा उठा। नीचे का पेड़ हमारे फ़्लैट के बराबर उठा था। इस कुहुक को सुनकर पेड़ पर बोलती कोयल सहसा चुप हो गई···

लेकिन आखिर मिसेज तेजपाल ने ऐसा क्या कर डाला कि तेजपाल पागल हो गये, यह बात अभी तक मेरी समझ मे नही आ रही थी। और जब किसी तरह मन नही लगा तो मैं चुपचाप नीचे उतर आया। मेजर अइयर के फ़्लैट मे रणधीर के खिलखिलाने की आवाज आ रही थी। किन्ही के यहाँ टेलीफोन घनघना रहा था। उतरते हुए मुझे बेचैनी-सी हुई कि कोई इसे उठा क्यों नही लेता। ग्राउण्ड फ़्लोर के बरामदों या भीतर के कमरों की रोशनियाँ बाहर सड़क तक फैली थीं। पर्दे के लिये नीचेवालों ने रेलवे-क्रीपर और बेगम-बेलिया की घनी बेलें सामने की तरफ़ लगा ली थीं। बेगम-बेलिया के सुर्ख रेशमी कतरनों जैसे फूलों के बीच-बीच से ग्रामोफ़ोन के भोंपू-से झाँकते रेलवे-क्रीपर के बैंगनी फूल बड़े अजब और प्यारे लगते थे। बिलियर्ड्स जोरों से जम रहा होगा। गेंदों, क्युओं और मार्कर की खटर-पटर के साथ बीच बीच मे एक साँस-रोक सन्नाटा छा जाता होगा। मेरा मन किसी तरह वहाँ नहीं लगेगा, मैं जानता था। यों ही हुगली के किनारे तक घूमने के इरादे से मैं सड़क पर निकल आया। पानी बरस चुका था। आती-जाती मोटरें अपने पहियों से सड़क के पानी को चर्रर करके रगड़ती हुई चली जाती थीं और हैडलाइटों से सड़कों की भीगी हुई काली सतह चकाचौंध हो उठती थी। किले के मैदान की हरी घास सीलन सोख रही थी। सड़क की नियोन-बत्तियाँ चिड़ियों की तरह पेड़ो के गीले पत्तों के पीछे छिपी झाँक रही थीं। सड़क के एक ओर जुबली-लाइन्स के ये ब्लॉक अँधेरे और उजाले के चार-खानों से बने हुये लगते थे। अब तो किले की बगल में

भी रहने के लिये क्वार्टर बन गये थे। पहले मुझे अच्छी तरह याद है, उधर क्वार्टर बनने की कोई बात ही नहीं थी। इसी सड़क पर तो मैंने अक्सर मिसेज तेजपाल को किटी की जंजीर पकड़कर धीरे-धीरे गुनगुनाते हुये उसे घुमाकर लाते देखा था। उनके एक हाथ में एक पतली-सी बेंत रहती थी और दूसरे में कलाई पर चमड़े का फ़ीता लिपटा रहता था। वह अलसेशियन कुतिया किटी आगे-आगे और वे कमान की तरह झुकी पीछे-पीछे...उनकी जो तस्वीर नाम के साथ ही मेरे सामने कौंध जाती है वह यही कि लगड़ी, ताकतवर कुतिया जैसे उन्हें खींचे लिये जा रही है और वे पीछे-पीछे मजबूर-सी खिचती चली जा रही है..डर होता है कि जरा-सी ठोकर लगी या सन्तुलन बिगड़ा और वे लुढ़कीं... वे हैं कि गुनगुनाती खिची चली जा रही हैं। शायद मन पर पड़ी इस छाप का कारण यह हो कि मैंने पहले-पहल उन्हें इसी रूप में देखा था...

मैं बस से उतरकर हाथ में किताब लिये क्वार्टर की तरफ़ चला आ रहा था कि देखा—सामने किटी मिसेज तेजपाल को खींचती हुई फाटक से निकल रही है। किटी के साथ-साथ उन्हें भागते हुए चलना पड़ता था। एक बार तो मेरे मन मे आया कि अनदेखा कर जाऊँ। लेकिन उन्होंने भी देख लिया था। साथ ही मुझे उनकी कुहनी में बँधी सफेद पट्टी दिखाई दी। अब उनसे उस पट्टी के बारे में न पूछना मुझे अशिष्टता लग रही थी। उस दिन की बात अभी भूला नही था। फाँसी—मैंने शब्द मन-ही-मन दुहराया और मनाने के जिस अन्दाज में वह मुझसे कहा गया था, उसका ध्यान आते ही हँसी आई। निगाहें मिलते ही दोनों मुसकराये।

"अपनी किटी को घुमाने ले जा रही है!" दोनों कान जोड़े खड़ी अपनी ओर ताकती उनकी कमर से ऊँची उस कुतिया को सहमी नजरों से देखते हुए मैंने हँसकर पूछा। चमड़े की पेटी से उसका पेट भी बँधा था।

"हाँ जी, इस वक्त इसका मन ही नही लगता। मार परेशान कर रखा था जब से। मैंने कहा, चल पहले तुझे ही घुमा लाऊँ। उनके बाल अस्त-व्यस्त हो गये थे। बड़े बेमालूम तरीके से हाँफते हुये उन्होंने छड़ी वाले हाथ से कानों के ऊपर के बाल हटाये। पूछा : "आज टाइप नहीं करेंगे ?"

"अब ?" मैंने घिरते अँधेरे और छिपते दिन की ओर इशारा करके कहा : "ये भी कोई वक्त है टाइप करने का ? मुझे तो आज तक याद नहीं कि मैं कभी इस वक्त कमरे मे बंद होकर बैठा होऊँ। कहीं इधर-उधर टहलूंगा, इसके बाद टाइप करने बैठूंगा। आज तो काफ़ी काम करना है।" तब मुझे फिर परसों की बात याद हो आई। कुछ ठण्डे ढंग से पूछा : "आज क्लब वगैरा नहीं गईं ?"

"मेजर तेजपाल एन० सी० सी० कैम्प में गये है न ?" कुतिया उन्हें एक तरफ़ खीच रही थी। भूरा मटमैला रंग और जगह-जगह काले रोएँ। छाती पर पीले-पीले से मुलायम बाल और अजब खूँखार ढंग की बादामी आँखे। उस कुतिया की आँखों मे देखने मे मुझे डर लगता था। उसकी आँखों में देखते ही उसकी पुतलियों के सुनहले तिल एक अजब वहशियाना भूख के साथ सिकुड़ने-फैलने लगते थे। कुतिया उनकी कमर से ऊँची थी। अगर यह चाहे तो उन्हें तिनके की तरह खींचकर ले जा सकती है। न यह फ़ैशनेबुल ढंग की बेंत मदद करेगी और न यह संगीतमय गला उन्हें रोक पायेगा। मैंने ऊपर से कहना चाहा, 'अच्छा यह बात है। तभी आजकल गाने-बाने की आवाज़ें कम आ रही हैं।' लेकिन हिम्मत नही पड़ी। जाने क्या जवाब दे दें।

कुतिया से खींचातानी की व्यस्तता में उन्हें मेरी बात सुनने की फ़ुर्सत नही मिली। एकदम बोली : 'चलेंगे, ज़रा हुगली तक इसको घुमा लाएँ···काम तो नहीं है कुछ ?"

"चलिये।" मैंने किताब गेट पर खड़े दरबान को दी और हम दोनों हुगली की तरफ चल दिये। आज मुझे मिसेज तेजपाल में कुछ अजब-

अजब बात लग रही थी, लग रहा था जैसे मुझे उनसे कोई बात कहनी थी जो याद नही आ रही है। कनखियों से देखा तो सहसा चौंक उठा : "अरे ये आपके हाथ मे क्या हो गया ?" मुझे याद आया कि यही बात तो मैं पहले पूछना चाहता था।

लापरवाही से ठोड़ी झटककर वे बोलीं : "यों ही ज़रा बाथरूम में फिसल गई थी। ध्यान रहा नहीं, तो मैट से पाँव फिसल गया।"

"ज़्यादा चोट तो नहीं आई ?" मैंने चिन्ताकुल स्वर में पूछा। उनकी ओर देखा तो मन हुआ पूछूँ कि आपने मुझे खुद क्यों नहीं बताया। लेकिन यह निहायत अनधिकार बात थी।

"नहीं।" उन्होंने ऐसे टालने के ढंग से कहा कि मुझे चुप हो जाना पड़ा। मुझे ऐसा लगा जैसे यह बाथरूम में फिसलने की बात सही नहीं है और इसे मैं पहले भी कही, किसी और मुंह से सुन चुका हूँ—शायद एकाधिक बार।

हम लोग चुपचाप चलते रहे। अँधेरा घना हो गया था और गैस की बत्तियाँ जलाने वाला दौड़-दौड़कर बत्तियाँ जलाता चला जा रहा था। सेण्ट ज्यार्जेज़ गेट के सामने वाली सड़क के बीच बने हरी घास के लॉन वाले द्वीपों को पार करके अब हम लोग चुपचाप हुगली के किनारे जाती पटरी की रेलिंग के सहारे-सहारे चलने लगे थे। मिसेज़ तेजपाल के साथ चलने में बड़ी झिझक लग रही थी : कोई परिचित देख ले तो क्या सोचे ? कल ही कोई कहेगा—'आप उस वक्त ज़रा 'ऊँचाई' पर थे इसलिये टोका नहीं।' लेकिन उनके साथ चलने में ऐसा कुछ आकर्षण था कि मन-ही-मन बड़ा गर्वमय सन्तोष हो रहा था। भीतर भय था कि कहीं सामने से रणधीर या मेजर तेजपाल ही न आ जायें। तेजपाल के चेहरे की कल्पना करके मानो मेरा दिल आतंक से भर उठता। रह-रहकर मैं सिर मोड़कर उनकी ओर देख लेता और पकड़ा न जाऊँ इसलिए दूर बादलों, गुज़रते कार्गो (लद्दू) जहाज़ों और स्टीमरों पर निगाहें टिकाये रखता। वे धीरे-धीरे गुनगुनाती हुई व्यर्थ ही हाथ की बेंत

को ऊपर-नीचे झटकार रही थीं। कुतिया चुपचाप चल रही थी। एक खुली जगह से रेल की पटरियाँ पार करते हुये हम लोग जब नदी के ठीक किनारे वाली सड़क पर आये तो वे धीरे-से हँसी।

मैंने इधर-उधर देखकर कि शायद कहीं कोई मजाक की चीज हो, पूछा : "क्यों, क्या हो गया ?" लेकिन कहीं कोई ऐसी चीज नहीं दिखाई दी।

"मुझे इन हुगली के किनारे घूमने वालों पर हँसी आती है।" उन्होंने सडक के किनारे खड़ी कारों की लाइन की ओर इशारा करके कहा : "मछलियों की बदबू और जहाजों के मथे गन्दे पानी वाली इस नदी के किनारे आकर ये लोग शायद अपने को चौपाटी, जुहू या ट्रिप्लिकेन-बीच पर खड़ा समझते होंगे।"

"इसमें हँसने की क्या बात है ?" मैंने व्यर्थ ही झुककर एक कंकड़ उठा लिया और उसे दो-एक बार झुलाकर पटरी पर फेंकता बोला : "यह तो मजबूरी है। यहाँ कहाँ से ये लोग ट्रिप्लिकेन-बीच या जूहू-चौपाटी लाएँ !"

"आपको हँसने की बात ही नहीं लगती ? देखिये न, यहाँ आकर भी ये लोग भीतर कारों में बन्द बैठे-बैठे रेडियो सुनते रहते हैं। तो फिर घर ही क्या बुरे थे ? बहुत हुआ तो मडगार्ड से टिककर मूड़ी या आइस-क्रीम खा ली—मानो हुगली पर कोई अहसान कर रहे हों।" हमारी पगडण्डी पर भी घूमने वाले आ-जा रहे थे।

"आप यह क्यों नहीं सोचतीं कि बन्द कारों में सही, लेकिन स्त्रियों को अपने साथ ले आना इनके लिए बड़ी भारी क्रान्ति है। वर्ना इन्हें निकलना कहाँ नसीब होता है ? वहीं अपने बन्द और घुटे वातावरण में रहती हैं, अपने को सबसे अनोखा समझती हैं। चूँकि जिन लोगों से मिलना-जुलना होता है वे या तो रिश्तेदार होते हैं या नौकर-चाकर और सेठजी के कृपा-पात्र लोग, इसलिए लामुहाला अपने को सबसे महान् और ऊँचा समझने का कम्प्लैक्स[1] इनमें पैदा हो जाता है। गाड़ी से

बाहर निकलकर घूमने लगें तो लोग साधारण आदमी न समझने लगें ? हर वक्त यह जताने की कॉशसनैस[2] न समाप्त हो जाये कि हम बड़े आदमी हैं।"

"हुँह", उन्होंने जिस तरह कहा, उससे उनका विचकता मुँह मेरी आँखों के आगे नाच गया। वे जरा जोर से बोलीं : "दे शुड बी शॉट एण्ड चार्ज्ड फ़ॉर द बुलेट्स ! इनसे गोली के पैसे रखवाकर इन्हें गोली मार देनी चाहिए।"

बात सुनकर एक साहब चलते-चलते सिगरेट जलाना भूलकर देखने लगे। यों हर पास से गुज़रती निगाह एक बार उन्हें न देख ले, यह सम्भव नहीं था। अपने उस वाक्य पर वे खिलखिलाकर हँस पड़ीं। दो बार उन्होंने बाल झटके, हालांकि आज उन्होंने सारे बाल पीछे की ओर किये हुए थे और दो बड़ी-बड़ी चम्पाकलियों की तरह उनके कान ऊपर दिखाई देते थे। मुझे उनका यह वाक्य बड़ा अप्रत्याशित और असाधारण लगा। हम लोग अब मैन-ऑफ़-वार-जेटी के सामने से गुजर रहे थे। सफ़ेद दूधिया रंग का एक खूबसूरत चुस्त जहाज बल्वों की आड़ी-तिरछी मालाएँ डाले खड़ा था। ढालू पुल से प्लेटफार्म पर लोग आ-जा रहे थे। मछली खरीदने और बेचनेवालों के अपनी ओर मुड़े, मुग्ध चेहरों के बीच बेंत से साड़ी बचातीं मिसेज़ तेजपाल झुके सिर पर जिस लापरवाही से गालों को लटकने दे रही थीं उससे यह बात मेरे दिमाग में आए बिना न रही कि वे अपने प्रति ही नहीं, लोगों की निगाहों और निगाहों में तैरती प्रशंसा के प्रति सचेत (कॉशस) और लापरवाह, दोनों हैं। बात मुँह पर आते-आते रह गई कि जिन्हें आप गोली मार देना चाहती हैं वे भी तो आपके बार-बार हाथों पर खिसक आते पल्ले और बजह-बेवजह मुसकराने पर कुछ कह रही होंगी। लेकिन कहा : "आप शायद उनकी तरफ से नहीं सोचना चाहतीं ?"

"देखिए, नदी के किनारे आये हैं तो इस तरह बैठकर खुली हवा

---

१. भावना २. चेतना

खानी चाहिये ।" कहकर वे किनारे की घास पर बिना किसी पूर्व-सूचना के धम् से बैठ गई। कुतिया उनके पीछे आ खड़ी हुई। अब मैंने देखा; कितनी बड़ी कुतिया थी। उसकी पीठ इनके सिर से ऊँची निकली हुई थी।

मन में आया बड़ी अजब औरत है···

एक क्षण इधर-उधर देखकर मैं भी बैठ गया। भीतर एक अनजान भय था और एक अनाम पुलक थी। पास के पेड़ के नीचे हमारी ओर पीठ किये, कन्धे सटाये एक और बंगाली जोड़ा बैठा था। मुझे बार-बार लगता था जैसे अभी कोई भारी-सा पंजा पीछे से आकर गर्दन पर पड़ेगा : 'क्यों बच्चू, यहाँ बैठे हो ?' और मैं मुड़कर देखूंगा कि अरे, ये तो मेजर तेजपाल हैं। शायद यह बीनू का वह वाक्य था जो भय बनकर समा गया था। और इसलिए मैं उनके सान्निध्य को कभी सम्पूर्णता से ग्रहण नहीं कर पाया था। लेकिन मिसेज तेजपाल की निश्चिन्तता देखकर बड़ी सांत्वना मिल रही थी।

वे अपलक आँखों से जहाज को देखती रहीं—छोटे-छोटे केबिन; रेलिंग, गैलरियाँ, बारजे और चिमनियाँ और भोंपे। किनारे पर दो सुन्दर-सी नावें खिलौनों की तरह लटकी थीं। दोनों पंजे छाती पर रखे खलासी लोग इधर से उधर दौड़ रहे थे। ऊपर कप्तान के केबिन के सामने मेज और कुर्सियाँ डाले दो अफसर कपों में कुछ पी रहे थे। एक कुर्सी खाली पड़ी थी। जहाज की बत्तियाँ मिसेज तेजपाल की आँखों में झलमला रही थीं। पीछे किले की ओर वाली पटरी पर खड़ी कनवर्टिबिल से हल्की-हल्की रेडियो की आवाज में कोई सिनेमा का गाना आ रहा था। थोड़ी देर उसे वे यों ही अपनी गुनगुनाहट में उतारती रहीं। फिर सहसा सिर झटका।

"जाने क्यों, इन जहाजों को देख-देखकर बड़ी अजीब-अजीब बातें मेरे दिमाग़ में आती हैं।" वे अस्फुट-से स्वर में बोलीं : "जाने कहाँ-कहाँ घूमते होंगे ये। इसपर रहनेवालों को कैसा लगता होगा जाने···वैसे भी

नदी के किनारे घास पर बैठने का मुझे नशा है। बचपन से बहते पानी को देखकर अजब-सा मन हो जाता है। मुझे याद है जब हम छोटे थे, हमारे घर के पीछे ही एक खूब चौड़ी नहर थी। मुझे जब भी मौका मिल जाता, वहीं भाग जाती। बैठी-बैठी घण्टों पानी को देखा करती। पानी में बादल तैरते रहते···मेरा मन होता मैं भी इन बादलों में से एक पर बैठकर तैरती हुई समुद्र में चली जाऊँ – खूब दूर चली जाऊँ···उधर कहीं से कोई तूफ़ान में भटका, दिशा भूला जहाज जा रहा हो···मैं दोनों हाथों को भोंपू-सा बनाकर खूब जोर-जोर से जहाज वालों को आवाज़ दूँ···मेरे गले की नसें उभर आयें···लेकिन जहाज चला ही जावे···सूनी-सूनी आँखों से उसे क्षितिज से खोता हुआ देखती रहूँ और फिर फूट-फूट कर रो पड़ूँ···"

मैंने देखा, वे सहसा फिर भावुक हो उठी हैं। कितनी जल्दी वे अपने बाल झटकने के साथ ही मूड बदल लेती हैं—मैं तो इतनी जल्दी अपने को नहीं बदल पाता। पीछे खड़ी मोटरों की कतारें, आइसक्रीम, मूँगफली और मूड़ी, चना जोर गरम या चीना-बदाम बेचने वालों, सन्नाटे में गुजरती बसों, हमें रहस्यमय कुतूहल से देखते ठीक पास से गुजरते सैलानियों की रेंगती निगाहों और सामने नावों, स्टीमरों और कार्गोलौंचों की छायाएँ मेरी चेतना में कुछ इस तरह कुलबुला रही थीं कि सहसा बादलों और चीलों के साथ तैरने की बात मैं नहीं सोच सकता था। लेकिन इन सबकी शायद उन्हें चिन्ता भी नहीं थी। आज सोचता हूँ तो लगता है कि वे शायद ये सारी बातें मुझे सुना भी रहीं थीं, इसमें शक़ है। वे तो अपनी मुखर मानसिक-स्थिति का एक गवाह चाहती थीं और संयोगवश वह मैं था।

"अब देखिये, इस किनारे पर देखिये।" वे अपनी कुतिया की गर्दन पर हाथ रखकर कह रही थीं : "पानी कैसा लहरें मार रहा है। शायद ज्वार का समय है। अच्छा, आप ही बताइये, रोशनी की परछाइयाँ ऐसी नहीं लगतीं जैसे चमकदार सुनहले-सुनहले साँप पानी में तड़प रहे हों और

फिसलन भरे किनारे पर चढ़ने की कोशिश कर-कर के रह जाते हों··· नावों के भीतर मसाला पीसते, खाना बनाते लोग···वह देखिये, हाय वह माउथ-ऑर्गन पर कैसी अच्छी धुन निकाल रहा है—"हमें तो शामे ग़म में काटनी है जिन्दगी अपनी···" और वे धीरे-धीरे माउथ-ऑर्गन के साथ स्वर मिलाकर गाती रहीं। फिर सहसा आनन्द की एक फुरहरी लेकर उन्होंने साड़ी को कमर के पास बगल में खींच लिया। उनकी चुस्त-ब्लाउज में कसी पीठ और सुडौल कन्धे—दोनों तो पूरे खुल ही गये, कमर का भी काफ़ी हिस्सा दिखाई देने लगा। इस ओर से बेखबर वे बोलीं: "उफ़, मेरा तो मन कर रहा है, उछलकर खड़ी हो जाऊँ और कुलाचें भरती हुई इधर से उधर भागूँ।" उन्होंने आवेश में आकर बैठी हुई कुतिया के दोनों कान अपनी अंगुलियों से इस तरह प्यार में झटक दिए मानो किसी बच्चे के बाल बिखरा दिये हों। "आज जाने क्यों मेरा मन बड़ा खुश है। बड़ा फ्री है। अच्छा एक गाना गाऊँ?"

"नहीं भैया, कुछ तो ध्यान कीजिए आस-पास का।" मैंने सहसा चौंककर कहा और कनखियों से इधर-उधर देखकर धीरे-से हँस पड़ा। इतनी बड़ी होकर भी मानो हर लड़की कहीं न कहीं छोटी बच्ची है जो अभी ठुमक कर कह उठेगी: "उहूँ, हम तो सुनायेंगे।"

"नहीं, बस एक। भई, आप तो गुस्सा बहुत जल्दी हो जाते हैं। मेरी बात को याद मत रखा कीजिये। मैं तो यों ही, जो मन में आता, है वह कह देती हूँ। बहुत धीरे-धीरे गाऊँगी। आप भी कहेंगे, कैसी बदतमीज़ है, लेकिन गाऊँगी ज़रूर।"

उनके स्वर में एक ऐसी अजब और अप्रत्याशित आत्मीयता थी कि मैं चौंक पड़ा, जैसे वह एक ऐसा धक्का था जिसे एकदम सँभाल पाना मेरे लिए संभव नहीं था। पिछली धारणा उनके बारे में कुछ इस तरह की बन गई थी कि यह सब विरोधाभास-सा लगा।

और वे अपने उठे हुए घुटनों के निकट ठोड़ी लाकर धीरे-धीरे गाने भी लगी थीं। माउथ-ऑर्गन के साथ अभी तक वे गुनगुना रही थीं, और

वह भी बड़ा अस्पष्ट और अस्फुट। स्वर चूँकि काफी धीमा था इसलिए मैं सिर पास लाकर सामने देखते हुए सुनने लगा·· वे मजाज की नज्म पढ़ रही थी —"ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ···"

जरा-सा ग़ला साफ़ करके स्वभाव के अनुसार उन्होंने बाल झटके तो एक गुच्छा मेरे कानों में आ टकराया···तब पहली बार मेरा सारा शरीर ऊपर से नीचे तक झनझना उठा। मुझे जैसे नये सिरे से अपनी उपस्थिति का बोध हुआ। मैंने हथेली कान पर फेरकर उस चुनचुनाहट को झाड़ने की कोशिश की · लेकिन एक अजब-मादक, स्वप्निल मीठी-मीठी गंध का कुहासा मुझे अपने चारों ओर गाढ़ा-गाढ़ा उभरता-सा लगने लगा···जैसे विस्मृति के सागर की लहरें संगमरमर की चट्टानों पर पछाड़ खाती हों और उनकी फ़ुहारों से मेरा तन-मन भीगा जा रहा हो···

"मुन्तजिर है एक तूफ़ाने-बला मेरे लिये,
अब भी जाने कितने दरवाजे है वा मेरे लिये,
पर मुसीबत है, मेरा अहदे-वफ़ा मेरे लिये,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?···
दिल में इक शोला भड़क उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
जख्म सीने का महक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?··"

जिस समय मिसेज तेजपाल विभोर होकर ये लाइनें गा रही थीं, मैं जैसे अपने पास से उठकर कहीं और चला गया था। जैसे उनके, आसपास के वातावरण से कहीं दूर···किन्हीं अनजान बर्फ़ानी चोटियों के पार···मुझे लगा जैसे मैं सितम्बर या मार्च की चाँदनी के सन्नाटे में किसी सूने-सूने लॉन पर सिर के नीचे हथेलियाँ रखे चित् लेटा कुहरिल आसमान को देख रहा हूँ और आसपास की क्यारियों के बेले और चमेली की लहरों के बीच गुलाब भँवर की तरह खिलखिला उठे हैं···

जैसे कभी-कभी आधी रात तक ताजमहल के लॉन में लेटा रहा करता था और किसी उदास बुजुर्ग की तरह घुटनों मे सिर दिये ताजमहल चुपचाप बैठा चांदनी में भीगता, किन्ही अतीत की दूरियों में खोया रहता था। एक क्षण को मुझे लगा जैसे सचमुच मैं उसी क्षण में लौट गया हूँ और अधमुंदी आंखों से आसमान को थाहे जा रहा हूँ और ताज की सीढ़ियों पर, हथेली पर ठोड़ी रखे कोई उदास बैठा जाने क्या सोच रहा है, इस बात की छाया का अहसास मेरी पलकों में रह-रहकर मंडरा जाता है···तभी किसी स्टीमर ने 'भों' की लम्बी कराह के साथ सामने की जगह पार की तो मैं फिर साश्चर्य अपने मे लौट आया। कहाँ चला गया था मैं अभी-अभी ?···

"जी में आता है ये मुर्दा चांद तारे नोच लूं,
इस किनारे नोच लूं, और उस किनारे नोच लूं,
एक दो का जिक्र क्या, सारे के सारे नोच लूं,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?···"

उनके गाते-गाते मुझे लगा जैसे बीच में उनके गाने का प्रवाह कही रुका और उन्होंने कुछ सटककर जोर से दांत पीसे···मानो सचमुच चांद-तारों को नोचने का जोश उनके भीतर उफन रहा है···मुझे लगा जैसे जादू का ज्वार धीरे-धीरे उतरने लगा हो···उनका यह मूड, उनकी पुरानी तस्वीर और यह अवसाद···जैसे कहीं दोनों में कोई साम्य या संगति न हो···और इस चेतना ने मुझे फिर से हुगली के किनारे पर पहुंचा दिया···

वे सामने बैठी खोई-खोई गाती रहीं और रह-रहकर मुझे उनकी अपनी ओर वाली मखमली बाँह, रेशमी बाल, और कनपटी पर चांद, किटी का चौकन्ना चेहरा—सभी कुछ एक कुहासे के पार खोता हुआ लगने लगता और फिर मैं होश में आकर देखता कि वे अपने हाथों की पतली-सी बेंत को धीरे-धीरे अपने उठे हुए पंजों पर मार रही थी। जैसे उनकी यह हरक़त, हिलते हुये होंठ और कुहनी पर बंधी सफेद पट्टी मुझे

खींचकर फिर धरती पर ले आती और कॉस्मेटिक्स की भीनी-भीनी महक फिर ऊपर हवाओं पर उछाल देती, फूल-सा हल्का बना देती। अपने सिर के पास ही उनके सिर का होना मुझे बड़ा अच्छा लग रहा था और मन कहता था—कोई हम दोनों को इस प्रकार देखकर क्या कहता होगा! मैं उस समय उनके स्वर में, उनकी उपस्थिति के जादू और उल्लसितमूड के प्रवाह में बेबस होकर वह जरूर जाता था; लेकिन एक हल्की-सी टीस भी उठती थी कि शायद मैं किसी के बदले यहाँ बैठा हूँ···पता नहीं वह कौन है! अकेले पहाड़ी झरने के एकान्त किनारों और घाटियों की हरियल सलवटों की अँगड़ाई लेती भूल-भुलैयों से लौटकर ही मुझे यह भी लगता कि ये अपना सिर मेरे सिर के इतने पास क्यों ले आती है? बग़ल में बैठे ये लोग कहीं इस गीत को सुनकर यह न सोच लें कि जाने कौन बाजारू औरत साथ है···

और यह मैं भी जानता था कि वे हल्की चाहे जितनी हों, चाहे जितनी उन्मुक्त और स्वच्छंद होकर व्यवहार करें या गाएँ, लेकिन उनकी हर बात में एक ऐसी संयत ऊँचाई का भाव है, ऐसा कुछ ग्रेस[1] है कि सहसा उनके बारे में कोई ऐसी-वैसी बात नहीं सोच सकता। मुझे याद है—उस समय एक बार जाने कैसे मुझे लगा कि जैसे मिसेज़ तेजपाल के बाल बहुत लम्बे-लम्बे हैं और उन्होंने खूब गोल-सा जूड़ा बाँध रखा है। इच्छा हुई कहीं से रजनीगंधा की कलियों का एक अर्धचन्द्राकार जूड़ा लेकर उनके केशों में लगा दूँ और जाने किस आवेशवश मेरे हाथ उनकी पीठ सहलाने के लिये तड़प उठे। एक बार तो शायद उठ भी गये, लेकिन मैंने सिर्फ अँगड़ाई लेकर उस इच्छा को दबा लिया···शायद बीनू की बात मन में तस्वीर बन गई थी···सारी रोमाण्टिक भावनाओं के बावजूद मुझे गर्व था कि वे मुझे अपने इन एकान्त क्षणों का यों गवाह बना रही हैं···यों निकट आने दे रही हैं···मैं जताना चाहता था कि ऐसी अप-टु-डेट अभिजात सौन्दर्यशालिनी नारी मुझे यह गौरव दे रही है और मैं यों

---

१. शान

उनके मूड मे हिस्सा ले रहा हूँ...

गाना खत्म करते ही बिना मुझे कुछ कहने का अवसर दिये वे बोलीं : "कितनी दुखभरी गजल है ! है न ? जाने क्यों, जब मेरा दिल खूब-खूब खुश होता है तो यों ही कोई बड़ी दुखभरी चीज गाने को मन करता है । गाते-गाते इच्छा होती है, एक-एक लाइन को कई-कई बार गाऊँ और खूब खूब रोऊँ । अच्छा, एक बात आपको पता है ? मुझसे दुःखान्त फ़िल्में नही देखी जाती मैं जाती ही नही । कई दिनों तक मन बहुत खराब रहता है" पीछे से जाती माल-लदी ट्रक का कोई पुर्जा इतनी जोर से आवाज करता हुआ चला गया कि उनकी बात टूट गई...

उन्हें मानो मेरी ओर से कुछ सुनने की जरूरत ही नही थी । लेकिन मुझसे अब नहीं रहा जा रहा था । बार-बार उनके कन्धे पर हाथ रखने की इच्छा फड़ककर रह जाती थी और रह-रहकर लगता था जैसे कहीं उनकी जिन्दगी में कोई बहुत बड़ी ट्रेजेडी है, कोई गड़बड़ है और उस गड़बड़ को उनकी बलबलाती हुई जीवनीशक्ति स्वीकार नही कर पा रही है । मैं स्पष्ट ही अपने हृदय से उठकर अँगुलियों की पोरों तक आती कोई लहर जैसी चीज महसूस करता और यह लहर शब्दों का रूप लेकर मेरे मन में गूँज उठती थी । तब कल्पना मे मैं उनकी कनपटी पर हथेली रखकर उनके सिर को अपने कन्धे से लगा लेता और कहता—'बहुत दुखी हो मिसेज तेजपाल तुम । मैं जानता हूँ । गोलियों के फूल की छाया में तुम्हारी यह कुहक कौन सुनता होगा ?' साथ ही यह भी जानता था कि इस सहानुभूति और दया को उनका आत्मसम्मान कभी स्वीकार नहीं करेगा । मैंने झिझकते से स्वर मे कहा : "एक बात पूछूँ मिसेज तेजपाल ?"

"पूछिये ।" वे सहसा चिहुँक उठी । नदी किनारे बैठे अपने-आप में अकेले युवक-युवती में से जब कोई एक ऐसा सवाल पूछता हो तो उसका अर्थ क्या होता है, मानो यह बात सहसा उन्हें याद हो आई ।

उनकी आशंका समझकर मैंने हँसकर कहा : 'नहीं, कोई ऐसी खास

बात नहीं है। मैं तो यों ही पूछना चाहता था कि आपका नाम क्या है?"

उन्होंने मुक्ति की साँस ली और खिलखिलाकर हँस पड़ीं : "बस ? अरे, मेरा नाम मिसेज़ तेजपाल है, और क्या होता ?"

"नहीं, यह नहीं। यह तो बाद में ही हुआ होगा न शादी के। पहले भी तो होगा कुछ।" मैंने हठ करके पूछा : "कई बार यह बात मन में आई। पहले सोचा बीनू से पूछूंगा। अब आपसे ही पूछे लेता हूँ।"

वे उसी तरह हँसती रहीं और मेरा मन होता रहा कि रोशनी होती तो मैं उनके खिलते दाँत देखता। वे बोलीं : "बहुत अच्छी लग गई हूँ क्या ? बड़े इण्टेरेस्टेड है मुझमे ? कहीं मुझसे मुहब्बत-उहब्बत तो नहीं करने लगे ? भई, आप पुरुष लोगों का क्या ठीक है ?" वे सीधी मुड़कर मेरी ओर देख रही थीं।

मैं सकपकाकर स्तब्ध रह गया। वे तड़ाक् से यह बात कह बैठेंगी, यह चीज मेरी कल्पना से एकदम बाहर थी। लगा, जैसे वे मुझे बच्चे की तरह खिला रही हैं। यह भी जानता था कि वे मजाक कर रही हैं; लेकिन जाने क्यों मुझे इस बात में सुरुचि का अभाव लगा। नारीत्व को संकोच और शालीनता के साथ मिलाकर देखना, हो सकता है मेरे संस्कार हों; मगर मुझे उनकी बात से ऐसा लगा जैसे किसीने एक झटके के साथ सारा मायाजाल खींचकर अलग फेंक दिया है और मैं अनावृत निरीह-सा खड़ा रह गया हूँ। स्वर समेटकर बोला : "अच्छी तो वाकई आप हैं, इसमें क्या शक है! लेकिन नाम पूछने का यह सब अर्थ कहाँ है ?" और मैं सीधा बैठ गया।

उन्होंने कुछ नहीं कहा। एक गहरी साँस ली और बोलीं : "मिसेज तेजपाल नाम खास बुरा तो नहीं है ? नाम ही क्या, पहले जाने कितनी चीजें थी जो मिसेज तेजपाल होने के बाद छूट गई···नाम ही क्यों रहता ?"

"मसलन···" मैंने समझा इस प्रश्न के द्वारा मैं उनके नाम के साथ-साथ पिछले जीवन की और कुछ बातें भी जान सकूँगा।

"मसलन मैं पहले किसी की बेटी थी, किसी की बहन थी, बाद में सिर्फ पत्नी हो गई। शादी के समय सिर्फ लैफ्टिनैण्ट की बीवी थी और आज मेजर की हूँ, तीन साल बाद कर्नल की हो जाऊँगी।"

"यह तो आप सवाल को टाल रही हैं।"

'टाल कहाँ रही हूँ ? इतना साफ तो कह रही हूँ कि मैं पिछला कुछ भी नहीं लाई अपने साथ। अपने शौक, अपने सम्पर्क, अपना नाम—सब पीछे छोड़ आई हूँ।" मेरे अविश्वास को पढ़कर वे बोलीं : "अच्छा मान लीजिये, मेरा नाम···मेरा नाम···" उन्होने इधर-उधर सहारे के लिये देखा : "मेरा नाम हुगली था, फुटपाथ या···या किट्टी था, क्या फर्क़ पड़ता है इससे ? अब मिसेज तेजपाल हूँ, बस।"

और मैं सहसा बुझ गया। या तो यह स्त्री जान-बूझकर अपने आस-पास एक रहस्य का जाला ताने रखना चाहती है या मुझे बहला और टाल रही है। उस पल लगा उनमें मेरी सारी दिलचस्पी समाप्त हो गई है। याद आया, आज कुछ ज़रूरी कागज भी तो टाइप करने हैं, वर्ना कल मुसीबत हो जायेगी। लेकिन उठने का प्रस्ताव करने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मैं जहाज पर घूमते सफेद और नीली वर्दी पहने अफसरों और खलासियों को देखता रहा। जहाज़ के सिरे पर रोमन अक्षरों में लिखा था—'हैलन'। शायद कोई ब्रिटिश जहाज़ है, तभी तो ऐसा चुस्त-दुरुस्त है। नीचे जहाज से पानी की मोटी धार एकरस घड़-घड़ गिरे जा रही थी।

"विश्वास नहीं हुआ ?" उन्होने हल्के मुस्कराते स्वर मे पूछा।

"नहीं, ठीक ही है।"

"अपने कॉलेज में सबसे मस्त लड़की थी। हर चीज़ मे हिस्सा लेती थी, दिन भर हँसती-खिलखिलाती घूमा करती थी, इसलिये लड़के-लड़कियों ने मेरा नाम क्या रख दिया था, जानते हैं ?" वे फिर अपने में डूबकर बोलीं : "झुकि झूमि-झूमि मुस्काति जाति !" फिर अपने इतने लम्बे नाम पर खुद ही हँस पड़ीं। "लड़कियाँ भी बड़ी शैतान होती हैं।

कैसा लगा आपको यह नाम ?"

"काफी अच्छा नाम है।" मैंने फिर बिना किसी विशेष दिलचस्पी के कह दिया।

मेरे स्वर के ठण्डेपन को उन्होंने पकड़ा या नहीं, लेकिन सहसा बाल झटककर बोलीं : "अच्छा एक बात बताऊँ ? मैं भारतीय नहीं हूँ।"

"तो ?" मैं सचमुच अपनी जगह से उचक पड़ा। यह तो नई बात थी। मैंने एकदम उनके चेहरे की ओर ग़ौर से देखा। उनके फीचर्स अँधेरे में दिखाई नही दिये।

"पन्द्रह साल की उम्र में मैंने बर्मा छोड़ा था। तब मैं जूनियर कैम्ब्रिज में पढ़ती थी। बाम्बिंग हुई तो हम लोग इधर चले आये।"

"ओ !" मैंने सन्तोष की साँस ली। सोचा था, जाने किस देश की होंगी। पूछा : "बर्मा में कहाँ ?"

"पेगू। पेगू का नाम सुना है ? वहाँ हमारे पिताजी फ़ॉरेस्ट आफीसर थे। माँ बर्मी थीं और पिताजी पँजाबी।" वे फिर दूर खो गईं : "हमें याद है जब भगदड़ मची थी तो आने में कैसी मुसीबत हुई थी। हम लोग रँगून आये। जिस जहाज़ में हम लोग भेड़-बकरियों की तरह भरकर आये उसपर जापानियों ने बम गिरा दिया। नावों में जितने लोग आ सकते थे, आये। जब तक दूसरा जहाज आया तब तक जाने कितने डूब चुके थे। माँ तो उसी भाग-दौड़ मे कहीं छूट गईं। हम लोग किसी तरह दिल्ली पहुँचे..."

अब मुझे फिर मिसेज तेजपाल पर दया आने लगी। हमदर्दी से पूछा : "कितने भाई-बहन हैं आप लोग ?"

"मैं बीच की हूँ। एक भाई मुझसे बड़ा है, एक छोटा। वहाँ से आकर फादर देहरादून में रेन्जर हो गये। बड़े भाई मिलिट्री-कालेज में तेजपाल के साथ पढ़ते थे। मैं दिल्ली में हॉस्टल में थी। छुट्टियों में जाती थी, तभी एकाध बार भाई के साथ इन्हें देखा..."

"अब कहाँ हैं वे लोग ?" मैंने पूछा।

"पता नहीं। इस बात को भी तो आठ-नौ साल हो गये।" वे निहायत तटस्थ अरुचि से बोलीं : अभी बताया न, पिछले सम्पर्क-शौक वगैरा सभी कुछ ··"

"तो भी जब मेजर तेजपाल कैम्प वगैरा चले जाते है तो कहाँ रहती है?"

"क्यों? क्वार्टर है न। बस वहीं रहना और दिन भर रेंकना···" वे लापरवाही से बोलीं : "पिछला सब खत्म···किसी जमाने में टॉल्सटाय के उपन्यास, शा के नाटक, चेखव की कहानियाँ पढ़ने का शौक था··· कीट्स और वर्ड्सवर्थ पर जान देती थी और बँगला कविताएँ गाती थी। भरत-नाट्यम् नाचती थी—अब तो सब खत्म। अब तो · रॉक-एन-रोल पर कन्धे मटकाते हैं और जॉज सुनते हैं। फिल्म-फ़ेयर और फिल्म-इण्डिया, अगाथाक्रिस्टी और स्टेनली गार्डनर को घोंटते हैं और दिन भर जो जी मे आता है सो रेंकते हैं। 'मुहब्बत मे ऐसे कदम डगमगाये, जमाना यह समझा कि हम पी के आये'" वे अचानक बहुत ही हल्की हो आईं। फिर एकाएक उठ खड़ी हुई : "चलिए, अब उठें। क्या बज गया?" फिर रोशनी की ओर कलाई घुमाकर घड़ी देखी तो मुँह खुला रह गया : "हाय, आठ। चलिये···चलिये।"

खड़े होकर जरा झुके-झुके चप्पलों में पाँव डालते हुए वे एकदम डगमगा उठीं तो झट मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया : "उफ, मेरे तो दोनों पांव सो गये।" उनकी कमर की ऊँचाई तक आने वाली कुतिया ने बड़ा-सा मुँह फाड़कर जंभाई ली : "क्याऽऽ!" उसके सफ़ेद दाँतों और आँखों में जहाज की परछाई कौंध गई।

मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा -

मैंने डरते डरते-से उनके कन्धे को छूकर सहारा देने का भाव दिखाया, और इधर-उधर देखा। मुझे लगा जैसे उस क्षण उनकी कुहनी भी रोमांचित हो आई थी। थोड़ी देर पाँव घिसटा-घिसटाकर चलने के बाद वे ठीक हो गईं। मेरे कन्धे पर उनकी अंगुलियों की पकड़ अब भी

सिहर रही थी।

रात को सोते समय बहुत देर तक मुझे हुगली के किनारे की बातें याद आती रही थीं। और वह सब एक मधुर चित्र बनकर मेरे मन में सुरक्षित रह गया था। आशंका भी थी, कहीं मिसेज तेजपाल मुझसे मजाक न कर रही हों। जिस ढंग से उन्होंने अपने ऊपर मोहित हो जाने की बात पूछी थी उससे यह नामुमकिन भी नहीं था कि वे यों ही एक चुहल कर डालें। मुझे लगा, जरूर कोई ऐसी बात उन्होने मेरे व्यवहार मे देखी होगी जो 'फ़ांसी' की बात उन्होंने कही और चलते-चलते सीढ़ी पर कहा गया वाक्य तो ऐसे किसी भी भाव के लिए जगह भी नहीं छोड़ता। फिर भी उन चित्रों में कुछ था कि सोते समय मैं मन में कई बार उन्हें दुहराता रहा।

लौटते समय हम लोग किले की तरफ वाली पटरी से लौट रहे थे। वे कह रही थीं : "आज तो बहुत गप्पें लड़ाईं। आप तो बहुत बोर हुये। ये मेरी बड़ी बुरी आदत है। बोलने पर आती हूँ तो बस, बकर-बकर बोले ही जाती हूँ, कोई सुने या न सुने। ममी बहुत डाँटती थीं कि लड़कियों का बहुत बोलना अच्छा नही होता, लेकिन सुनता कौन था। एक बात थी, घर में मेरा बड़ा रोब था···ममी, फ़ादर, भाई—सभी डरते थे। क्या मजाल जो मैं बात कह दूँ और वह न हो···एक बार की बात है···" वे कहकर सहसा चुप हो गईं। फिर सिर झटककर बोलीं : "अच्छा कुछ नहीं।"

मैंने इधर-उधर देखा। कोई नहीं था : "क्यों, चुप क्यों हो गईं आप ?"

"नहीं, कुछ नहीं। यों ही एक बेवकूफी की बात थी।" वे टालकर बोलीं : "पर उन लोगों ने मेरा बड़ा नुकसान कर दिया। अब अगर मेरी

कोई इच्छा पूरी नहीं होती तो मन होता है गोली मार लूं···" अनजाने ही उन्होंने फ़ीते लिपटे हाथ से दूसरी कुहनी सहलाई।

"लेकिन आपके शौक तो बहुत अच्छे थे। आपने उन्हें छोड़ क्यों दिया ?" मैंने उन्हें प्रोत्साहन देने के लिये पूछा।

"छोड़ न देती तो उन्हें लेकर घुटती ?" वे तलखी से बोलीं : "आप देखते नहीं, यहाँ कौन से शौक पनपते हैं ? आदमियों को क्लब, कैबरे, रेस और ब्रिज से फ़ुर्सत नहीं है या फिर दिन भर अपने अफ़सरों की बातें—फ़लाने की फलाने से झड़प हो गई···फ़लाने के प्रमोशन[1] में क्या गड़बड़ी पैदा हो गई। एटीकेट[2], मैनर्स और कल्चर[3] पर रिमार्क[4] या इसका ट्रान्सफर[5] उस डिवीजन में हुआ, उसका वहाँ। या फिर वही एक-दूसरे के यहाँ डिनर, रिटर्न-विज़िट्स, और चाय पार्टी, बर्थ-डे पार्टी के बाद यही घिसे-पिटे मजाक। एक-दूसरे के बारे में उल्टी-सीधी बातें और पोज़ीशन की होड़। दिन को वही खड़-खड़ करती खाकी काहिया यूनीफॉर्म, वही तनी हुई रीढ़ें और अकड़ी हुई गर्दनें। रोज़-रोज़ वही फ़ीतों और स्टारों की पॉलिश और शाम को काले-काले सूट। आइ'म सिक आफ् देम[6]। नपी-तुली चाल, नपी-तुली हँसी, नपा-तुला मनोरंजन। आप लगातार एक-दूसरे के यहाँ चार साल जाइये, वही पहले दिन वाली फ़ॉर्मेलिटी, वही तकल्लुफ, वही औपचारिकता। लगता ही नहीं, जैसे आदमी मिल रहे हों ! कठपुतलों की ज़िन्दगी···जिनकी हर हरक़त पहले से तय हो···"

"हाँ, है तो यही बात।" मैंने समर्थन किया : "मैं तो और लोगों से भी काफी मिलता-जुलता हूँ फिर भी यही सब देखते-देखते बोर हो जाता हूँ। तब आप लोगों को तो सचमुच कभी-कभी बड़ी ऊब होती होगी।"

---

१. उन्नति २. शिष्टाचार ३. सभ्यता ४, टीका-टिप्पणी ५. बदली . ६, मैं इनसे तंग आ गई हूँ।

"और यहाँ की औरतें ? उफ़, हद है :" वे उत्साह से बोलीं : "खाना और कपड़ा, बस इसके सिवा वे कोई बात ही नहीं कर सकतीं। चौबीस घण्टे बस वही बातें : सबके यहाँ दैनिक अखबार आते हैं लेकिन उसे खोलती उसी दिन हैं जिस दिन सिनेमा जाना होता है। यों होने को क्लबों में जाती हैं; पार्टियाँ अटैण्ड करती हैं; मुसकराती है, लोगों को अपने यहाँ खाने पर निमन्त्रित करती हैं, लेकिन इतनी आर्थोडाक्स[1] हैं कि क्या बताऊँ ? एक हैं जिन्होंने अपने हर दरवाज़े पर सथिए काढ़ रखे हैं। ज्यादातर सातवें-आठवें या दसवें बारहवें तक पढ़ी है, बस। बैरों ने मेम साहब कह दिया तो बहुत खुश। बीनू को छोड़कर मुझे तो यहाँ एक भी बात करने लायक नहीं लगती। अगर उनके ये पति फ़ौज के ऊँचे अफ़सर न हों तो सचमुच वे एकदम फूहड़ और गँवार है। दुनियाँ की किसी बात से इन्हें जैसे कोई मतलब ही नहीं। दूर रहते थे तो बहुत सोचा करते थे कि मिलिटरी में यों स्वतन्त्रता है···यों छूट है··· लेकिन सब दूर से दीखता है।" कुछ देर चुपचाप चलने के बाद वे धीरे से हँसी : "पहले मैं लेटी-लेटी रातों सोचा करती थी कि जिसने अन्ना-केरेनिना लिखा होगा, उसके दिल में कितना दर्द होगा···क्या-क्या बातें उसके मन में आया न करती होंगी ! अब तो वह सब याद भी नहीं आता। किसी और जन्म की बातें लगती है, किसी बहुत पुराने जमाने की···"

"खैर, यहाँ वाले आपसे भी तो खुश नहीं हैं।" मैंने ज़रा और कुरेदने के लिए कहा।

"मैं तो कभी इसकी चिन्ता ही नहीं करती ?" वे उद्धत स्वर में बोली : "अपने बारे में वह सब मैं भी सुन चुकी हूँ। यह शोर तो उन दिनों सुनते जब मैं आई-आई थी। यहाँ तो लोग रेडियो भी सुनते है तो कमरा बन्द करके ताकि बाहरवाला कोई न सुन ले। मैंने पूरा गला

---

१. रूढ़िवादी

फाड़कर गाना शुरू कर दिया तो बड़ी चर्चा ! कोई कहता—मैनर्स नहीं आते; कोई कहता भले आदमियों में नहीं रहीं; किसी के हिसाब से मुझे कपड़े पहनने का सलीक़ा नहीं था; साड़ी कहीं जाती थी पल्ला कहीं; और किसी के लिये मैं ग्रामोफ़ोन थी, किसी के लिये रेडियोग्राम। चलने-फिरने की तमीज नहीं है। फ्लर्ट है, फिल्म-ऐक्ट्रेस है ! मेजर तेजपाल जाने किस गाने वाली को पकड़ लाये हैं। और तो और, एक दिन मैंने अपने बारे मे यह सुना कि मैं किसी 'बार' में नाचा-गाया करती थी और वहीं मैंने मेजर तेजपाल को फाँस लिया; तो बड़ी हँसी आई। ऐसे रिमार्क सुनना तो अब आदत बन गई। मैं भी कहती हूँ, कुढ़ो ! कितना कुढ़ती हो, मैं उतना ही कुढ़ाऊँगी। मेरा क्या जाता है ? और अब हालत यह है कि किसी दिन अगर ऊपर सन्नाटा रहे तो मिसेज़ मक्रीजा का आर्डली आकर पूछता है—मिसेज़ तेजपाल की तबियत तो ठीक है, मेम साब ने पूछा है।"

"लेकिन ये सब चीजें तो चलती ही रहती है। कोई चाहे तो अपना शौक चलाये रख सकता है ." मैंने कोमल सांत्वना के शब्दों में कहा।

"जी हाँ, चलाये रख सकता है।" उन्होंने मुँह बिचका दिया : "पहले हमारे यहाँ एक लड़का आया करता था। वह भी भाई का क्लासफ़ैलो था और फिर बाद में कुछ दिनों हम लोग एक जगह साथ-साथ भी रहे। ऐसा अच्छा वायलिन बजाता था कि क्या बताऊँ ! मन होता था कि बस बैठे-बैठे उसका वायलिन सुनते रहो। वह फोर्ट के भीतर ही बेचलर्स-क्वार्टर्स में रहता था और अक्सर आ जाया करता था। मैं कोई भी काम करती तो मुझे ऐसा लगता है जैसे कहीं दूर वह वायलिन बजा रहा हो। और कन्धे और बाँह पर वायलिन थाम कर डूबा-डूबा सिर, काँपती अँगुलियाँ और खिचता गज—सभी कुछ हर समय आँखों के आगे नाचा करता। मैं खाना खाती रहती और अचानक लगता जैसे—नीचे किसी के फ्लैट मे वह वायलिन बजा रहा है। मैं चौंककर रुक जाती। ये पूछते—क्या हुआ ? मेरे मुँह से निकल जाता—

यह कैसी आवाज है ? ये बोलते—कुछ भी नहीं, पानी सनसना रहा है किचिन में, या ऊपर पानी की टंकी भरने की मशीन चल रही है। मैं झेंपकर चुप हो जाती। कभी-कभी तो सोते-सोते चौंककर जाग उठती…"

"फिर ?"

"फिर क्या ? उन दिनों जो-जो कुछ सुनने का मिला उसे भूल सकती हूँ ? उसी को लेकर इनकी उससे कुछ अनबन हो गई। बाद में उसका ट्रांसफर हो गया…" पता नहीं यह मेरा भ्रम था कि मुझे लगा जैसे उनका गला रुँध आया है। हम लोगों के ब्लॉक अब शुरू हो गये थे। हवारा ब्लॉक अभी आड़ में पड़ता था। वे बोली : "अब मैं आपके साथ चल रही हूँ। किसी ने देखा होगा तो कल ही सुन लीजिये, क्या-क्या उड़ायेगा। उड़ाये, मुझे किसी की कोई चिन्ता नहीं…"

"मिसेज तेजपाल, मैं आपके बारे में इतनी बातें नहीं जानता था।" गहरी सांस लेकर मैंने उनसे कहा। मुझे उन पर तरस आने लगा और समय-समय पर आनेवाली झुँझलाहट पर खेद हुआ।

हठात् वे खिलखिलाकर हँस पड़ीं : "अरे आप तो भावुक हो उठे। ये तो रोज होने वाली बातें हैं। मैंने कुछ ऐसी-वैसी बात कह दी हो तो बुरा मत मानिये। मैं बड़ी सनकी हूँ। जो भी धुन आ जाये बस अकेले-अकेले ही बोले जाती हूँ। कोई गाना सुबह-सुबह जबान पर चढ़ जाये, बस समझ लीजिये, उसे गा-गाकर ढेर कर दूँगी।" फिर जाने क्यों रूमाल से आँखे और मुंह पोंछकर बोली : "और कायदे से मुझे माफ़ी-वाफ़ी माँगनी भी नहीं चाहिये। जैसे आप वीनू के लिए, वैसे ही मेरे लिये…"

"नहीं…नहीं, ऐसी कोई बात नहीं…" मैंने जल्दी से कहा।

और अब हम लोग सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे तो उन्होंने कई बार मेरी ओर सिर मोड़ते हुए बालों को झटका और आत्मीयता और झेंप की गंगा-जमुनी मुसकराहट उनके गालों के भँवरों में वर्तुलाकार थिरक उठी। जब किटी उन्हे खींचती ऊपर ले गई तो मैं सोचता रहा, कितनी स्मार्ट

हैं ये···जाने क्यों दिल के भीतर एक गहरी साँस निकल गई। ऊपर मोड़ से उन्होंने हाथ हिलाया—"टा-टा···।"

टा-टा ! आज सड़क पर यों ही चहलकदमी करते हुए एक-एक चित्र मेरे सामने उभर-उभरकर आ रहा था। फिर तो किटी को घुमाते, आते-जाते, सीढ़ियाँ चढ़ते या वीनू के यहाँ से विदा लेते समय वे बड़े दोस्ताना ढंग से हाथ उठाकर टा-टा करती, ठीक जैसे बच्चे करते हैं और एकाध बार जब वे गुड्डी के साथ थीं तो उन्होंने टा-टा करने के बाद अंगुलियों को भी होंठों से लगा लिया था। जाने किन गहराइयों के कुनकुने पानी में मुझे डुबाकर निकाल लिया था कि उन्हें देखते ही एक अजब स्फूर्ति और करुण सहानुभूति के भाव साथ-साथ मुझे छा लेते थे। और रात को मैं देर तक उनके बारे में सोचा करता था। वे किस समय कहाँ हैं, इसकी खबर रखता था। एकाध बार रणधीर ने मजाक में कहा : "आजकल हमारे दाने से बड़ी दोस्ती हो रही है, डिप्टी गॉड की···बड़ा खतरनाक खेल है। मेजर तेजपाल गोली मार देगा, याद रखना।"

वीनू उसे डपट देती : "आपके दिमाग़ में तो हमेशा बस ये ही बातें आती हैं। दूसरों पर कीचड़ उछालते हैं, कुछ अपनी कहिए न ?"

हजामत बनाना छोड़कर रणधीर कहता : "अपना भाई चाहे क़त्ल कर आये, लेकिन तुम उसकी तरफ़दारी जरूर करना।" फिर जबरदस्ती संजीदा मुँह बनाकर कहता : "देखो भाई, समझाना हमारा काम है। बाकी तुम जानो ··यों डिप्टी गॉड को हम क्या खाकर समझायेंगे।"

मुझे नहीं मालूम, मैं उन दिनों खतरनाक खेल खेल रहा था या नहीं; लेकिन यह सच है कि जब-जब मैं उन्हें देखता, तेजपाल की सूरत आँखों के आगे आ खड़ी होती। टाइप करते-करते कभी बालों को झट-

कारता मिसेज तेजपाल का चेहरा आ जाता तो कभी मेजर तेजपाल का बड़ी-बड़ी मूंछों वाला। इस बात को दिल के भीतर मैं भी जानता था कि वे उन लोगों में से है जो गोली मार सकते हैं···और जब उसके बाद पिकनिक वाली घटना हो गई तब तो यह बात और भी साफ़ हो गई। मैं कसमसाकर रह गया···

रणधीर ने झुंझलाकर मुझसे कहा : "बुलाओ न उन्हें, क्या हो रहा है ?" फिर तेजपाल की ओर देखकर बोला : "इन लेडीज़ का निकलना भी बस···"

वीनू मिसेज़ तेजपाल को लाने गई तो वहीं की हो रही। पिकअप आ गई थी और अर्दली पिकनिक का सारा सामान रख चुके थे। दो बार हॉर्न भी दिया। रणधीर, तेजपाल और रुद्रा नीचे खड़े हो गये थे। मिसेज़ रुद्रा और उनकी गुड्डी पहले ही पिक-अप में चढ़कर बैठ गई थीं। गुड्डी लाल पतलून पहने पिक-अप की रेलिंग पर झूलती सामने के दूसरे तल्ले के फ़्लैट से झांकते शेखर से बातें कर रही थी, पीछे से मिसेज़ रुद्रा ने उसे पकड़ लिया था। ऊपर जाते हुए मैंने देखा, तेजपाल एक खाली सिगरेट के डिब्बे को ठोकर मारते हुए कुछ कह रहे थे।

"वीनू !" मैंने पुकारते हुए तेजपाल के फ़्लैट में कदम रखा। बैरा पिक-अप पर सामान ले जा रहा था, इसलिये दरवाज़ा खुला था। मैं ड्राइंगरूम में झांकता हुआ सीधा बगल वाले कमरे में—"मिसेज तेजपाल, आप भी तैयार होने में···" कहता हुआ जा पहुँचा।

मेरी बात आधी रह गई।

"भीतर तो आ।" वीनू खिलखिलाने के बीच में रुककर बोली। और जैसे ही मैंने पर्दा उठाया कि पहली बार तो स्तब्ध रह गया, फिर सहसा गला फाड़कर हँस पड़ा।

बीनू पलँग पर बैठी बुरी तरह हँस रही थी और ड्रेसिंग-टेबिल के सामने मिसेज तेजपाल पैण्ट और शार्ट-ब्लाउज मे खड़ी हुई झुकी-झुकी होठों पर लिप्स्टिक लगा रही थी : "हल्लो ऽऽ !" वे निहायत ही बेतकल्लुफी से शीशे में यों ही व्यस्ततापूर्वक अपना चेहरा देखती बोलीं।

"यह क्या तमाशा है ? नीचे वे लोग शोर मचा रहे हैं और···" मैंने प्रशंसात्मक दृष्टि से मिसेज तेजपाल को देखा और बनावटी झुँझलाहट से कहा। इन कपड़ो मे भी वे बड़ी आकर्षक लग रही थीं। लगता था, जैसे मैंने इन कपड़ो के सिवा उन्हें कभी और कपड़ों में देखा ही नहीं है।

"चलते है भाई, यहाँ हमारी जान मत खाओ।" वे इत्मीनान से शीशे में देखकर बिन्दी लगाती रहीं। फिर खुद ही जैसे अपने पर रीझ गईं। "ये हॉर्न नीचे से तो बज ही रहा था ऊपर भी आ गया।" उन्होंने मिलिट्री अफसरों की टोपी लगा ली। बिन्दी के साथ बड़ा अजब मेल था। पीछे बाल निकल आये थे।

"लेकिन, आखिर यह सब तमाशा क्या है ? चलते-चलते मूड खराब करेंगी ?" मैंने देखा, नये कपड़ों की चढ़ती झेंप से उनका चेहरा झलझला आया था। पूछा : "यों चलेगी ?"

"क्यो ? अच्छी नहीं लगती क्या ?" उन्होंने सीधे मेरी ओर मुंह करके पूछा।—"हमारे स्लैक्स पसन्द नही आये ?"

"बिलकुल बैंकाई लगती हैं आप !"

"बस !" वे बनावटी निराशा से बोली : "सिर्फ बैंकाई ! कम से कम यह तो कहा होता कि ऑड्रे हैवर्न लगती हूँ।"

"ऑड्रे हैवर्न !" मैंने चिढ़ाया : "लोगों को भी अपने बारे में बड़े-बड़े भ्रम होते हैं। बेचारे हालीवुड वालों का पता नहीं था वर्ना 'भवानी जंक्शन' में क्यों आवा गार्डनर को परेशान करते ?"

"लगती तो वाक़ई बहुत अच्छी हैं।" नीचे फिर हॉर्न सुना तो लाचारी और झुँझलाहट से बोला : "अच्छा साहब, जैसे चलना हो

चलिये । पर निकलिये तो सही !"

"थैंक्यू ।" उन्होंने बाद वाली बात ही नही सुनी ।

बीनू ने बताया : "असल मे कल ये कहीं मेजर तेजपाल के साथ मैदान से लौट रही थीं। रास्ते में कुछ योरोपियन औरतें जीन्स और फ़्लाइंग-शर्ट पहने गोल्फ़ खेलने जा रही होंगी। उन्हें देखकर मेजर तेजपाल बोले : 'देखो, ये औरतें कैसी बेशर्म लगती हैं। अगर बीच से कमर इन्होंने न कस रखी होती और चाल में जनाना नखरा और मटक न होती तो पीछे से लड़के और लड़की में फर्क़ करना मुश्किल हो जाता। ये बोलीं : 'इसमें बेशर्मी की क्या बात है ? ये तो अपने-अपने कपड़े हैं ऐसी खुली रहती है, तभी तो ऐसी स्वस्थ हैं।' और बस, तभी से मेरे पीछे लगी थीं कि मैं भी जरा जीन्स पहनकर देखूंगी। अब वह नहीं तो पैण्ट ही सही।"

"मजाक नही, आप जो कुछ भी पहन लें, उसी में अच्छी लगती हैं।" बिन्दी और होठों की लाली के साथ टोपी सचमुच इतनी अच्छी लग रही थी कि अगर बीनू न होती तो परिणाम की चिन्ता किये बिना मैं उनकी ठोड़ी अपनी ओर घुमाकर ज़रूर कुछ क्षण एकटक देखता रहता, तब उनकी पलकें किस प्रकार झेंपकर नीचे झुकी रहतीं, इस कल्पना ने मन को एक अद्भुत रोमांच से भर दिया।

लाली, पाउडर, रूज इत्यादि का प्रयोग करने वाली औरतों की प्रदर्शन-प्रवृत्ति को मैंने कभी अच्छी निगाह से नहीं देखा; लेकिन इनके बारे में कुछ भी बुरा सोचने को मन नहीं करता था।

"अच्छा मिसेज तेजपाल, अब चलिये, नहीं तो वाक़ई ये लोग नाराज हो जायेंगे।"

वे फिर कपड़े बदलने चली गईं। उन्हें गुड्डी के साथ देखकर जो बात बाद में मेरे मन में आई थी कि वे बड़ी गुड्डी हैं, इस समय भी वही बात शब्दहीन रूप में प्रत्याभासित हुई।

"क्या हुआ ?" रणधीर ने शायद इसलिये झल्लाकर पूछा कि कहीं

तेजपाल ज़ोर से न भड़क उठें।

"आ रही हैं। आल्मारी की चाबी कहीं रख दी थी।" मैं डर रहा था कि इन लोगों के नीचे आते ही तेजपाल ज़ोर से दहाड़ेंगे।

तभी देखा, सारी सीढ़ियों को सैण्डिलों की खटर-पटर से गुंजाती हुई, हँसती खिलखिलाती दोनों उतर रही थीं। सीढ़ियों की कांचवाली खिड़की से देखा—मिसेज़ तेजपाल दो-तीन रंग-बिरंगे गुब्बारे लिये हुये थीं। आसमानी नाइलोन की साड़ी और ब्लाउज़ पहने थीं। उसे पहनने में लाभ क्या है, यह मेरी समझ में अभी तक नहीं आया। साटन का पेटीकोट और ब्रेसरी अनेक पटलियों और तहों के बावजूद ज्यों की त्यों दिखाई दे रही थी। मिसेज़ तेजपाल के इस रूप को देखकर हम सभी को धक्का लगा और जैसे सभी ने नजरें चुरा लीं। बोला कोई कुछ नहीं। छिपी नज़रों से देखा तो लगा तेजपाल कुछ बोलते-बोलते रुक गये। उनके कान एक बार लाल हुये और वे निचला होंठ दबाकर रह गये। शान्त स्वर में बोले : "किटी के लिये बोल दिया है बैरा से ?"

"जी।" वे बोलीं और गुड्डी के पास आकर उससे बातें करते हुये दोनों गुब्बारे उसे दे दिये तो वह किलक उठी। पिक-अप का पिछला हिस्सा पकड़कर वे व्यस्तता से चढ़ने लगीं तो उनकी पिंडली घुटनों तक खुल गई। सभी उनको प्रशंसा-मुग्ध साथ-साथ घृणा-भरी छिपी-छिपी निगाहों से देख रहे हैं, इस बात के प्रति वे एकदम लापरवाह थीं। और कोई समय होता तो मैं भी शायद उन्हें यों ही देखता; लेकिन उनके इस रूप से शर्म मुझे लग रही थी। सीट पर बैठते ही उन्होंने फिर बाल झटके और गुड्डी को दोनों बाँहों में भींचकर बोलीं : "आण्टी की गोद में नहीं बैठेगी ? देखो हमने तुम्हें गुब्बारे दिये हैं।"

सब लोग बैठ गये तो ड्राइवर ने पल्ला चढ़ा दिया। बैरा सामने ड्राइवर की बग़ल में बैठ गया। गाड़ी गेट से निकलकर हावड़ा की तरफ दौड़ चली। हम लोग आमने-सामने बैठे थे। महिलाएँ सब एक सीट पर थीं। उनके कान के आसमानी टोडवाले बड़े-से नग को गुड्डी मुग्धभाव से

छूती हुई घुसुर-घुसुर जाने क्या-क्या बातें कर रही थीं और उसके दोनों गुब्बारे इधर-उधर इस तरह उड़ रहे थे कि वह नन्ही परी-जैसी लगती थी। शायद सुन्दरता के प्रति बच्चे भी काफ़ी प्रबुद्ध होते हैं। आश्चर्य मुझे इस बात का था कि तेजपाल ने देरी को लेकर कुछ भी नहीं कहा। जिस ढंग से वे सिगरेट के खाली डिब्बे को ठोकर मार रहे थे, उससे तो ऐसा लगता था कि वे उन्हें देखते ही बुरी तरह फुफकार उठेंगे।···इस समय वे अपने घुटनों की क्रीज़ उठा-उठाकर ठीक कर रहे थे। रणधीर ने कार्डराय की गहरी कत्थई पतलून और खुले कॉलर की सफ़ेद कमीज़ पहन रखी थी और उसका कॉलर बार-बार उड़कर कनपटी पर बज रहा था। गाड़ी तेज चलने लगी थी और मिसेज़ तेजपाल को बार-बार अपने कानों पर अँगुलियाँ फेरकर बाल ठीक करने पड़ते थे। मिसेज रुद्रा छाती के ऊपर ग़र्दन तक पूरा पंजा फैलाकर उड़ती सलेटी बँगलौरी साड़ी को दबाये थीं। वीनू ने सलवार के साथ का दुपट्टा सिर पर घुमाकर दाँतों से दबा लिया था। वहाँ तो वीनू में कोई ऐसी बात नहीं दिखाई दी थी; लेकिन अब लगता था मिसेज तेजपाल की ओर उपेक्षा का भाव धारण करने में दोनों महिलाओं ने मूक समझौता कर लिया था।

"मेजर अइयर से नहीं कहा ?" रुद्रा ने कनपटी पर लहरें पैदा करते हुये जेब से इलाइची निकालकर फैली हथेली पर सबको आफ़र की। पहले महिलाओं को फिर पुरुषों को। मिसेज़ तेजपाल ने मुसक्राकर थैंक्स कहा और मना कर दिया। उन्होंने पर्स से निकाल-निकालकर सबको टॉफियाँ दीं और बाहर ऐसी व्यस्तता से देखने लगी जैसे कोई बहुत ही ज़रूरी काम कर रही हों।

"कहा था, लेकिन आज अपने डान्स-टीचर को बुलाया था उन्होंने।" रणधीर ने बताया।

"वॉट ! डान्स-टीचर ?" दाँतों से दबाकर इलायची के दाने छीलते हुये तेजपाल ने माथा सिकोड़कर पूछा : "तभी आजकल उसके फ़्लैट से तबला-वबला बहुत सुनाई देता है।"

"तबला नहीं, मृदंगम् ।" रुद्रा ने अपने उसी मजाकिया चेहरे से कहा : "तुम्हें नहीं मालूम, आजकल मेम और साहब दोनों को डांस सीखने का बड़ा शौक लगा है, जब देखो तब नाचते रहते हैं ।"

"हुँह, इन साउथ-इण्डियन्स का भी दिमाग खराब होता है ।" सिर झटककर तेजपाल बोले : "परेड करना छोड़कर अब उदयशंकर बनने की धुन लगी है !"

"उदयशंकर बनने की क्या है जी, अपनी-अपनी हॉबी है ।" गुड्डी के कान में 'कू' करना छोड़कर एकदम मिसेज तेजपाल बोल पड़ीं : "अगर अँग्रेजी डांस की प्रैक्टिस करना बुरा नहीं है तो अपने डांस की प्रैक्टिस करना क्या बुरा है । ये तो अपनी-अपनी हॉबी है ।"

"आई सैड, डैम हॉबी," तेजपाल ने हाथ झटके : "ये औरतों की तरह हाथ-पाँव मटकाना अच्छी हॉबी है ! अरे, कोई और काम नहीं हो तो टेबिल-टेनिस खेलो । सच बात है, इनका खाना, रहना-सहना कभी मेरी समझ में नहीं आया । हाउ दीज पीपुल लिव[1] ! उस दिन हमें लंच पर बुलाया, रसं···भातं—जाने क्या-क्या लाकर रख दिया । मेरी तो सारी भूख देखते ही हवा हो गई । आई सैड, यार तुम हमें ऐगपोच और दो स्लाइस मँगा दो, यह सब हमसे नहीं चलेगा । ये तो बैठी-बैठी शौक से खाती रहीं । इनको कुछ दे दीजिये, आप सब खा जाती हैं ।"

"मान लीजिये, अच्छा न भी लगे, लेकिन होस्ट के मुँह पर यह सब कहा जाता है ?" मिसेज तेजपाल ने मानो तड़पकर कहा : "बेचारों ने इतने शौक़ से तो तैयारी की···"

यों मैं बहुत प्रसन्न नहीं था; लेकिन न जाने मुझे उनका यह पक्ष लेना और अपनी पतली कलाई उठा-उठाकर जोर देकर बात कहना, सब कुछ बड़ा बनावटी-सा लगा । मुझे कभी-कभी स्वयं आश्चर्य होता कि कैसे इस दिखावटी स्त्री के प्रति मेरा दिल इतनी हमदर्दी से भर गया था

---

१. ये लोग कैसे रहते हैं ?

और कैसा इसका वह सम्मोहन था कि उस संध्या के बाद मैं जाने-अनजाने, हर क्षण उसीके बारे में सोचा करता था। शायद उस दिन की छाप मन की तहों मे कुछ ऐसी गहरी समा गई थी कि मुझे लगता, गुलाबी सर्दी की दोपहर में मैं मिसेज तेजपाल के साथ लेक की किसी एकान्त बेंच पर बैठा हूँ और सामने नाव चलाना सीखने वाले अपनी सफेद बनियान-जाँघिये की ड्रैस में पतली-सी नाव पर तीर की तरह गुज़र जाते है। एक साथ चप्पू कातर के पाँवों की तरह उठते हैं और हथेली में पानी उछालते आगे झपट पड़ते है—बाँहों की मछलियाँ तड़प-तड़पकर रह जाती हैं। धूप में चिलकते पानी से मिसेज तेजपाल की आँख चौंधिया रही है, इसलिये उन्होने भौहों पर हाथ लगाकर आड़ कर ली है और हम लोग चुपचाप बैठे है। कभी लगता, पहाड़ पर घाटी के किनारे बने बरामदे मे खिड़की के बन्द शीशों के पास हम लोग बैठे-बैठे चाय पी रहे है और वे जाने क्या-क्या लगातार बोले चली जा रही हैं। सारी घाटी गहरे-घने सुरमई कोहरे से छाई हुई है और शीशों को छू-छूकर वह कुहरा बूंद-बूंद मे पिघल उठने वाली भाप की तरह जम गया है, बड़ा अजब अवास्तविक-सा वातावरण है। और भी इसी तरह की जाने कितनी तस्वीरें थी जो उन दिनों हर समय नाचा करती थीं। मैं जानता था कि वे तस्वीरें सच नही है; लेकिन उन सपनों को मैंने इतनी बार मन में दुहरा-दुहराकर बसा लिया था कि लगता था वे सब बीती हुई सच घटनाओ का पुनरावलोकन ही है। जाने कितने प्रश्न थे जिनको मैं मन ही मन उनसे पूछता, उनके उत्तर की कल्पना करता और प्रतिक्रिया या प्रभाव ग्रहण करता।

इस समय मिसेज रुद्रा की टेढ़ी-टेढ़ी, शायद हल्की घृणा से भरी निगाहों को, जिनसे एक साथ वे पुरुषों की मिसेज तेजपाल के प्रति भावनाओं को भी तोल रही थीं, देख-देखकर स्वयं आश्चर्य होता था कि क्या सचमुच मैंने वे सारी बातें इन्हें ही लेकर सोची थीं। उनका सारा पल्ला बाँह पर पड़ा था। कोई मजाक की बात कहने के लिये रुद्रा की बटर-

फ़लाई मूँछें बार-बार फड़ककर रह जाती थीं। वे बोले : "ख़ैर मिसेज तेजपाल, आपको क्या है ? आप तो भारतीय हैं नहीं, आपको भरत-नाट्यम् से क्या लेना-देना ? आप चाहें तो थोड़ी-बहुत मनीपुरी की तारीफ़ कीजिये। और इस वक्त तो सबसे बड़ी बात यह है कि हम लोग ग्रामोफ़ोन जान-बूझकर नहीं लाये है।"

और फिर सब लोग हँस पड़े। उनके गालों के गड्ढे गहरे हुए और वे गुड्डी की कलाइयो को अपने हाथ में लेकर उसकी नन्ही-नन्ही हथेलियों से ताली बजाती हुई बोलीं : "आप कुछ कहिये, हमारी गुड्डी कहेगी तभी गायेंगे। है न गुड्डी ? देख गुड्डी, वो पुल···"

हुगली के दोनों किनारों पर पाँव रखे सामने पुल खड़ा था। इस बात को हम भी जानते थे कि गुड्डी को खिलाने के बहाने वे जान-बूझकर अपने कपड़े अस्त-व्यस्त हो जाने देती हैं। जब वे बाहर की ओर मुड़कर गुड्डी को कोई चीज दिखाती तो उनकी बीच की नाली के दोनों ओर उभरी केले के नये चौड़े पत्ते-सी पीठ एक अजब आकर्षक मरोड़ खाकर हमारी ओर आ जाती और उस समय मेजर तेजपाल दाँतों से नाखून कुतरते हुये बाहर देखने लगते। बड़ी बेचैनी हम सभी लोग महसूस करते ··अचानक अब वे वहीं धीरे-धीरे गुड्डी को गाना सुनाने लगी थीं।

उनकी इस 'बेशर्मी' को महिलाओं ने किस रूप में लिया, यह बीनू से सुनने को मिला; थोड़ी देर बाद।

सारी महिलाओं ने जब एक-स्वर से ब्रिज की खिलाफत की तो झुँझलाकर तेजपाल और रुद्रा शतरंज खेलने बैठ गये। आज पिकनिक का विशेष कार्यक्रम यह था कि रणधीर छोटी बंदूक से महिलाओं को निशाना लगाना सिखायेगा। सभी जानते थे कि अगर ये लोग ब्रिज पर बैठ गये तो शाम तक न तो खाने का नम्बर आयेगा, न निशानेबाजी का। बीनू ने रणधीर को पहले ही पक्का कर लिया था। यही सोचकर

रणधीर ने भी खास उत्साह नहीं दिखाया। वहीं पास ही ईंटों का सफ़री चूल्हा बना लेने के बाद गोमेज चूल्हा और स्टोव साथ-साथ जलाकर अपनी दूकान फैलाकर बैठ गया। तेजपाल सीधी टाँगें फैलाये अधलेटे थे और दोनों हाथों में फ्लास्क उठाये गट-गट पानी पी रहे थे। और रुद्रा उभरती खुशी को अँगुली से मूँछों के ऊपर खुजाकर छिपाये हुए थे। इससे साफ था कि बाज़ी कड़ी पड़ गई है।

इसके बाद वह घटना हो गई कि सारी पिकनिक ने दूसरा ही रूप धारण कर लिया।

हम सब लोग वहाँ से हटकर ऐसी जगह आ गये थे जहाँ सामने एक टूटी-फूटी बाउण्ड्री की मोटी-सी दीवार थी। बीच में घास बिछा छोटा-सा मैदान था, जो थोड़ी दूर जाकर एक ओर ढालू हो गया था। नीचे जहाँ यह ढलान खत्म होता था वहाँ से काफ़ी लम्बा-चौड़ा ताल था और उसके काई लदे किनारों पर घास-सिवार के बीच-बीच में छोटे-छोटे ढेर-से कमल खिले थे! ताल के दूसरी ओर कुछ औरतें और बच्चे कमर-कमर पानी में डूबे, जाल मढ़े ढप जैसे लिये हुए मछलियाँ पकड़ रहे थे। उन्होंने छोटे-छोटे बर्तन या घड़े इधर-उधर तैरा दिये थे और पकड़ी हुई मछलियाँ उनमें डालते जाते थे। गुड्डी ने फूल लेने की जिद की तो मिसेज तेजपाल उसका हाथ पकड़कर उसे वहाँ भगा ले गई थीं। दोनों के हाथों में रंग-बिरंगे गुब्बारे थे और दोनों किनारे पर खड़ी बड़े मुग्ध भाव से मछलियों का पकड़ना देखती रहीं। गुड्डी कुछ पूछ रही थी और वे बताती जाती थीं। ऐसा लगता था जैसे गुड्डी का ही 'एनलार्ज्ड फ़ोटो' साथ खड़ा कर दिया गया हो।

निशानेबाज़ी का क्लास शुरू करने के लिये रणधीर ने किटबैग से टारगेट, गोलियों का डिब्बा और फ़ीता निकाल लिया था। सबसे पहले उसे समझाना था बन्दूक के हिस्से और मशीन की बनावट। मूँगफली खाती हुई मिसेज रुद्रा और बीनू इधर-उधर उत्सुक विद्यार्थियों की तरह आकर बैठ गई थीं। मिसेज तेजपाल को बुलाना था, वर्ना उन्हें दुबारा

समझाना पड़ेगा। वीनू ने दोनों हाथों का भोंपा-सा बनाकर पूरे दम से पुकारा : 'मिसेज़ तेजपाल ! गुड्डीऽऽ।" और इसी में उसके गले की सारी नसें उभर आईं। झेंप मिटाने को बोली : "उनको तो गुड्डी ऐसी भा-गई है जैसे दोनों न जाने कब की सहेली हों। जाने आपस में क्या-क्या बातें किया करती हैं।"

"गुड्डी भी तो उनके लिये जान छोड़ती है।" अपने बड़े-बड़े दाँतों को ढकने की चिन्ता किए बिना ही, खिलकर मिसेज़ रुद्रा बोलीं : "नीचे ज़रा-ज़रा-सी देर बाद कहेगी, ममी, आण्टी के यहाँ चलो। जहाँ मैंने कहा, वहाँ मेजर तेजपाल हैं, बस वही सहमकर चुप। उनसे और किटी से अभी इसकी दोस्ती नहीं है।"

"हैं ही डरावने।" वीनू ने रणधीर की ओर सहमी निगाहों से देखते हुए मुसकराकर कहा। वह टारगेट की झण्डी हाथ में लिए लगातार तालाब की ओर देखे जा रहा था।

देखा, गुड्डी को दौड़ाती हुई मिसेज़ तेजपाल दौड़ी चली आ रही हैं। रणधीर मुग्ध आँखों से उधर देखता रहा। फिर जैसे अनायास ही उसके मुँह से निकला : "कुछ भी कहो, कम्बख्त का एक-एक अंग साँचे में ढला है!" इधर भागकर आते हुए उनकी साड़ी शरीर से चिपककर पीछे उड़ने लगी थी और एक विचित्र अतीन्द्रिय-स्पर्श उनके शरीर को दिये दे रही थी। पीछे उड़ती साड़ी से दोनों पाँवों, कमर, धड़—सबकी बनावट और गठन अधिक स्पष्ट रूप में इस तरह उभरकर धूप में दिखाई दे रही थी जैसे खिले गुलाब की क्यारियों पर कुहरे का झीना नीला-नीला जाला हिलोरें ले रहा हो। बात सबके मन में यही थी, लेकिन रणधीर ने उसे खुलकर शब्द दे दिए थे : "हिरनी की तरह कुलाँचें भरती घूमती हैं!"

अगले ही क्षण मिसेज़ रुद्रा की निगाह वीनू के खिसियाये चेहरे पर जा पड़ी। वे बोलीं : "कुछ कहिये, मेजर धीर, बुरी तो वीनू भी नहीं हैं। यह तो बेशर्मी है। ऐसे कपड़े पहनने से फ़ायदा ही आखिर क्या है?"

तब शायद रणधीर को ध्यान आया कि उन्होंने मिसेज रुद्रा और बीनू के सामने ऐसी बात कह दी है जो शायद अनुचित और अशिष्ट है। वह अपनी सकपकाहट सँभालता प्यार से बीनू के कन्धे पर हाथ रखकर बोला : "हमारी बीनू लाखों में एक है।"

"हटाइए हाथ।" बीनू ने लज्जा और अपमान से उसका हाथ झटक दिया। जैसे घुटकर बोली : "घर की मुर्गी दाल बराबर। इधर-उधर न ताकें तो आदमी ही किस बात के!" उसकी आँखें झलझला आईं।

हालाँकि बीनू को मैंने डाँटा : "बीनू यह क्या बेवकूफ़ी है। मजाक भी नहीं समझती?" लेकिन उसकी बात मुझे भीतर छू गई। उसकी बात में मिसेज रुद्रा जैसी न तो सालती ईर्ष्या थी, न आक्षेप। आत्म-हीनता की एक ऐसी घुटती कचोट थी जो मेरे मन को चीरती चली गई। मिसेज़ तेजपाल की 'लापरवाह स्वच्छंदता' ने दोनों महिलाओं को कितने भीतर तक मथ डाला है, इसका अहसास मुझे उस क्षण हुआ तो बड़ी दया आई। पता नहीं यह मेरे मन का पक्षपात था या कमजोरी; मुझे उनपर क़तई क्रोध नहीं आ रहा था और साथ ही रणधीर का ढ़ीलापन भी अच्छा नहीं लग रहा था।

कभी वे दौड़ने में आगे निकल आतीं तो चाल धीमी करके गुड्डी को बराबर आ जाने देतीं। गुड्डी के पाँव आड़े-तिरछे पड़ रहे थे। अँगुली पकड़ाये वह लुढ़कती-सी दौड़ी आ रही थी। जाने क्यों मुझे लगा—किटी के साथ मिसेज तेजपाल का दौड़ना और यह गुड्डी के साथ दौड़ना कहीं किसी अदृश्य-सूत्र से अन्तर्ग्रथित है। यों देखने में यह दृश्य ठीक उल्टा था। किटी उन्हें इस तरह खींचकर जहाँ चाहे ले जाती थी जैसे वे सिर्फ़ उसकी इच्छा से चल रही हों और यहाँ वह गुड्डी के साथ बच्ची बनी उसके साथ चली आ रही थीं। उस समय मैंने नहीं सोचा था कि यह दृश्य मन में इतनी गहराई से अंकित हो जायेगा और मिसेज तेजपाल के नाम के साथ यही चित्र उभरा करेगा। या उनके सारे चरित्र को एक नया अर्थ दे देगा।

"ममी, आण्टी ने हमें दौड़ाया।" गुड्डी अपनी माँ से जा चिपकी। "ये फूल दिये।" उसके एक हाथ में दो-तीन फूल थे। पता लगा कि उन लड़कों से गुब्बारों के बदले यह सौदा स्वयं गुड्डी ने किया था। वह हाँफ रही थी।

"हम तो तुम्हारे लिये कमल-गट्टे तुड़वा रहे थे। बुलवा क्यों लिया हमें?" हाँफ़ती हुई मिसेज़ तेजपाल आसमान से उतरीं परी की तरह एक हाथ से बाल सँवारती सामने खड़ी थीं। आँखें झपकाकर मैंने देखा और देर तक मन ही मन सोचता रहा—सचमुच, कैसे कोई इनपर क्रोध कर सकता है?

"आइये, पहले यह काम खत्म कर लें। फिर वे लोग खाने को बुलायेंगे।" रणधीर को बात शायद चुभ गई थी। अपराधी की तरह आँखें नीची किये वह रूमाल से बन्दूक का 'बट' (पीछेका हिस्सा) साफ़ करता रहा।

इसके बाद अपने चारों ओर हमें बैठाकर जितनी देर रणधीर ने बन्दूक के पुर्जों, बन्दूक चलाने के कायदों के बारे मे समझाया, शायद ही उन्होंने आँख उठाकर देखा हो। फ़ीते से दूरी नापकर टारगेट पलँग गाड़े गये। गलती से कोई आने-जानेवाला उधर से न आ निकले, इसलिये एक आदमी को दीवार के पीछे भेजना था। "मैं जाऊँगी। आओ गुड्डी, हम चलें।" मिसेज़ तेजपाल बोलीं तो गुड्डी फिर उनकी टाँगों से जा चिपकी। "ममी से टा-टा बोलो।" मुझे फिर अपने को विदा देती उनकी मूर्ति दिखाई दी।

"ममी टा-टा!" गुड्डी ने कहा और वे दोनों लुढ़कती-पुढ़कती-सी सामने दौड़ चलीं—जैसे किसी विशाल रेतीले किनारे पर दूर चली जा रही हों।

"अरे मिसेज़ तेजपाल, इतना मत खिलाओ भाई। बाद में रोती है।" बड़े अनुनय-भरे स्वर में पीछे से मिसेज़ रुद्रा बोलीं। और जब बिलकुल लम्बे, दण्डवत् की मुद्रा में, लेटकर कुहनियाँ धरती पर और बट

कन्धे पर टिकाकर रणधीर ने निशाना लेना दिखाने के लिए कहा—'रेडी' तो दीवार के पीछे से लहराता-सा स्वर उठा : 'मेरा तन डोले, मेरा मन डोले, मेरे दिल का गया क़रार, यह कौन बजाए बाँसुरिया...'

हम लोग एक दूसरे की ओर देखकर मुसकराये। मुझसे फिर हँसे बिना नहीं रहा गया : "सचमुच बड़ी मस्त है।" तभी आँखों के आगे सहसा गोलियों का फूल कौंधा। किसी ने भीतर सुधारा—"मस्त नहीं, हिम्मतवाली!"

महिलाओं के लिए तो बन्दूक हाथ में लेकर निशाना साधना ही एक अभूतपूर्व रोमांचकारी अनुभव था। हरेक को तीन-तीन गोलियाँ चलानी थीं। मिसेज रुद्रा और बीनू की छह गोलियों में से मुश्किल से दो बाहरी वृत्त के कोने पर लगी थीं। लेकिन दोनों ऐसे उल्लास से भरी काँप रही थी मानो किसी बड़ी भारी दौड़ में सफल आई हों। मिसेज तेजपाल का नम्बर आया तो आवाज देकर उन्हें बुलाया गया। वे उसी अलमस्त और अल्हड़ चाल से टॉफ़ी कुतरती आई और निस्संकोच लेट गईं। गुड्डी को उधर ही छोड़ आई थीं। इस बार मिसेज रुद्रा के साथ 'मैं भी चलती हूँ' कहकर बीनू भी चली गई। रणधीर ने उनकी कुहनियों को ढंग से धरती पर टिकाया, बन्दूक दी, और निशाना साधने के लिये उनके सिर से सिर मिलाकर, उनके स्पर्श को अधिक से अधिक बचाते हुए उनपर झुक गया। बन्दूक उसने उनके पंजों के ऊपर से खुद भी पकड़ ली थी। "देखिए, मिसेज तेजपाल, काँपिये मत। आप बहुत ज्यादा 'एक्साइटेड' हो रही है।" एक आँख टारगेट पर टिकाकर रणधीर बोला। हालाँकि खुद उसके नथुने फड़कने लगे थे। कान की लवें लाल हो आई थीं। फिर भी वह आश्चर्यजनक रूप से संयत दिखाई दे रहा था। इस दृश्य को देखना बड़ा दिलचस्प था। मेरे भीतर कहीं बहुत गहरे में इच्छा हुई, काश! मैं भी यों इन्हें गोली चलाना सिखा पाता। आश्चर्य की बात यह कि उस समय मैं यद्यपि काफी पीछे था और रणधीर की ठोड़ी उनके सिर पर रखी-सी थी, लेकिन मुझे ऐसा लग रहा था जैसे

मेरी ठोड़ी वहाँ रखी है और उनके बालों की भीनी-भीनी गंध मेरे मस्तिष्क में समाई जा रही है और उनके नाइलोनी कपड़ों के सजीव पारदर्शी स्पर्श ने मुझे रोमांचित कर डाला है; उनके शरीर की गन्ध का जादू मेरे चारों ओर लहरा उठा है। मैं साँस रोके उस अनुपमेय अनुभूति को पीता रहा।

"मिसेज तेजपाल, आप बेकार देर लगा रही हैं।" मुझे सहसा रणधीर का झुँझलाया स्वर सुनाई दिया। देखा, रणधीर ने सिर घुमाकर एक उड़ती-सी नजर उस ओर डाली जहाँ धरती के उठाव के पार पेड़ों की आड़ में तेजपाल और रुद्रा शतरंज खेल रहे थे।

"कैसे पकड़ें, बताइये न ?" नाक के स्वर में वे बोलीं।

और जैसे-ही अँगुली पर अपनी अँगुली रखकर रणधीर ने घोड़ा दबाया कि उन्होंने बन्दूक-वन्दूक छोड़कर हथेलियाँ कानों पर रख लीं : "उई !" वे चीख उठीं।

"धाँय !" के साथ देखा— सामने एक तेरह-चौदह साल का लड़का हक्का-बक्का खड़ा है।

"हाय।" सबके मुँह खुले रह गये। अभी एक क्षण में गजब हो सकता था, यह सभी के सामने बिजली की तरह कौंध गया।

रणधीर झटके से उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी बन्दूक एक ओर फेंक दी।

"यह क्या मिसेज तेजपाल ? अभी गजब हो जाता न। आपको हर वक्त बचपना···सारी पिकनिक रखी रह जाती।" दाँत पीसकर झुँझलाया वह आगे झपटा और सारा गुस्सा उस लड़के पर उतार डाला। अन्धाधुन्ध तीन-चार झापड़ जड़ दिये : "यहाँ क्यों आया ? आवाज देनी चाहिए थी। तुझे भेजा किसने यहाँ ?"

लड़का खुद भौंचक्का होकर स्तब्ध-सा रह गया था। हकला-हकलाकर टूटे-फूटे स्वर में उसने कहा कि "मेमसा'ब लोगों ने कहा, सा'ब को खाने को भेज दो।"

"कहाँ हैं मेमसा'ब ? साले खुद मर जाते और हमें मुसीबत में डाल जाते।" और उसकी कुहनी पकड़कर घसीटता रणधीर उसे दीवार के पीछे ले गया। मुड़कर मुझसे कहता गया : "गन और कार्टिजेज लेते आना।"

अभी-अभी अगर दुर्घटना हो गई होती ? इस बात की कल्पना अनेक भयंकर रूपों में सामने आ रही थी। मिसेज तेजपाल पहले तो आँखें फाड़े बुद्धू की तरह रणधीर को देखती रहीं और फिर घुटनों में सिर गड़ाकर सिसकने लगीं। इस समय मुझे उनपर कोई दया नहीं थी—उनके जरा-से खिलवाड़ में एक जान जा-सकती थी। लेकिन इस लड़के को भी आखिर यहाँ आ मरने की क्या जरूरत थी ? बीनू वगैरा ने आखिर इसे वहाँ रोका क्यों नहीं ? मैंने सहमते हाथों से बन्दूक इस तरह उठा ली जैसे इस सारे सम्भावित भयंकर कांड की जिम्मेदारी मेरे ऊपर हो, और कहीं मूल रूप से अपराधी मैं हूँ। बन्दूक से डर लगता था कि कहीं चल न जाये। आदमी ने अपने-आपको मारने के लिए भी कैसे-कैसे हथियार बना लिये हैं। सीसे की इंच भर गोली और पिछला और अगला सारा इतिहास एक क्षण में समाप्त ! कैसी आसानी से लोग पलक मारते ही दूसरे का अस्तित्व समाप्त कर डालते हैं; कभी नही सोचते कि हर जीवन के साथ उनके अपने जीवन की तरह ही इतिहास, भावनायें, सम्पर्क और सम्बन्ध होते है। सब सामान उठाकर मैंने कहा : "खैर जो हुआ सो हुआ, मिसेज तेजपाल..."

वे कुछ नहीं बोलीं। उनके बाल उनकी बाँहों पर बिखरे रहे। सिर दो-एक बार काँपा।

"अब छोड़िये, लेकिन आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था।" मैं उनके बिलकुल पास आ खड़ा हुआ। झुककर कुहनी पकड़कर उठाते हुए संकोच से बोला।

उन्होंने घुटे स्वर में रुँधे गले से कहा : "तुम चलो।" और सिर उठाकर कुछ ऐसी निरीह कातर निगाहों से देखा कि मैं उन्हें संभलने को

छोडकर इस तरह चला आया जैसे मैं ही किसी को मारकर आ रहा हूँ। धूप चुभने लगी थी। इस समय मुझे उनसे पहले जैसी कोई हमदर्दी नहीं थी। लेकिन मुझे लगा जैसे यह षड्यंत्र वीनू और मिसेज रुद्रा का बनाया है।

देखा, मेजर तेजपाल और रुद्रा की शतरंज चालू थी। रुद्रा बार-बार बैठक बदल रहे थे और उनके जबड़े की हड्डी कनपटियों पर तेजी से चल रही थी। तेजपाल सिगरेट के टिन पर ताल दे रहे थे। वीनू और मिसेज रुद्रा स्नैप्स लेने में मशगूल थीं। गोमेज सबके घरों से आये टिफिन कैरियरों को खोल-खोलकर प्लेटें लगा रहा था। रणधीर लड़के का कान पकड़े खड़ा बुरी तरह उन्हें डांट रहा था : "आप लोगों को वहाँ से आने की जरूरत क्या थी ? कम से कम आवाज देकर आतीं। जुबान तो थी। जरा-सी देर नहीं बैठा जाता था ? अभी यह साला मर जाता तो ? कोई काम कितना सीरियस[1] है, तुम लोगों को कभी समझ में नहीं आयेगा !"

लेकिन मैंने देखा जैसे रणधीर का स्वर कहीं दब रहा था। वीनू थोड़े उद्धतभाव से गाल फुलाये कैमरा बन्द कर रही थी। पता चला, गोमेज ने बर्तन वगैरा धोने के लिए उस लड़के को यहीं से पकड़ लिया था। जब सब तैयार हो गया तो उनसे कह आने के लिए उसे भेजा कि 'सा'ब बुलाता है।' इन लोगों ने सोचा कि जरा-सी देर में इधर कौन आता है, ये उठकर चली आईं। उस कम्बख्त को भी पहले वे ही मिलीं। उन्होंने लड़के से कहा कि यहाँ बैठ जाओ, जब तीन गोलियां चल जाएं तो बुला लाना, दीवार के उस पार से सा'ब को। शायद बात उसने पूरी समझी नहीं, थोड़ी देर बैठा और फिर बुलाने को दौड़ पड़ा।

"ओए, की होंदा पेया यारा ?" मस्ती में आकर तेजपाल बोले। उनका वजीर दुश्मन के व्यूह में घुस गया था और सफलतापूर्वक कई मुहरे मारकर ऊँट के जोर में शह देने की तैयारी कर रहा था। वे शरा-

---

१. गंभीर

वियों की तरह हाथ फैलाकर बोले : "मरा तो नही ? अब छोड़ो, उन वेचारियों की जान क्यों आफत में किये हो ? और अगर मर ही जाता तो कौन सारी दुनिया सूनी हो जाती।"

मैं बन्दूक इत्यादि वहीं रखकर बैठ गया और शतरंज देखने लगा। मन में खटक लग रही थी कि मैंने मिसेज तेजपाल को न लाकर ग़लती की। कम से कम एकाध बार और मुझे उनसे अनुरोध करना चाहिए था। वे वेचारी वहाँ वैठी रो रही हैं। रणधीर बोला : "बात मरने की नहीं है, यह तो इनकी लापरवाही की बात है। एक काम दिया सो वह भी ठीक से नहीं किया गया।"

"यार धीर, तू तो एक बात के पीछे पड़ जाता है। अब जो नहीं हुआ उसे लेकर क्यों जान खाये जा रहा है ?" तेजपाल झुँझला उठे : "हमने सैकड़ों मार दिए। कोई साला पूछने वाला था ?"

"लेकिन लड़ाई की बात और है न ?" गम्भीर स्वर में रुद्रा ने हथेली पर धीरे-धीरे ठोढ़ी ठोंक-ठोंककर कहा। उनकी कनपटियों की हड्डियाँ जिस तरह चलती थीं, उससे जाने क्यों खयाल होता था कि उन्हें बुरी तरह शराब पीने की आदत है।

"लड़ाई में नहीं जी, एकाध तो यों ही निशाना देखने को खत्म कर दिया।" तेजपाल उत्साह से बोले। उनके चेहरे और आँखों मे बड़े क्रूर किस्म की चमक लपक उठी थी। "जिन दिनों हम लोग चाँदमारी किया करते थे उन्हीं दिनों की बात है। किसानों से हमने खेत ले रखे थे, उनके चारों तरफ अपने हिस्से में कँटीले तार खींचकर बाउण्ड्री बना ली थी।" वे मुझे सबसे अधिक दिलचस्पी लेते हुए देखकर मुझे ही सुनाने लगे : "वह हमारी राइफ़िलों का रेंज (सीमा) था। उसके भीतर आने की लोगों को मनाही थी। क्योंकि अगर उसके भीतर गोली लग जाती तो कोई जिम्मेदारी किसी की नहीं थी। यों ही एक दिन चाँदमारी कर रहे थे कि देखा एक बुड्ढे की भेड़ें दूर कँटीले तारों में घुस आईं। अपने हाथ के डण्डे से कँटीले तार उठाकर बुड्ढा भी उनके पीछे-पीछे उन्हें घेरता

हुआ घुस आया। मैं देखता रहा, देखता रहा। जब भेड़ें हाँककर वह बाहर निकल गया और तारों मे फँसे डण्डे को निकालने लगा तो मेरे मन में आया देखें तो सही, राइफिल का रेंज उसके बाहर तक है भी या नहीं। आइ सैड, लैट्स हैव ए फन।[१] एक सचमुच की डमी ही सही। मैंने राइफिल सीधी की और धाँय से निशाना दाग दिया।"

"फिर?" मेरा मुँह खुला रह गया।

"फिर क्या? साला टें बोल गया। गोली पसली के पार हो गई। ट्वेल्व बोर की गोली खाकर साँस ले सकता था कहीं? कद्दू की तरह लुढ़क गया।" वे अपने गाल फुलाकर दोनों हथेलियों को आपस मे इस तरह मसलते रहे जैसे पानी में हाथ धो रहे हों।

"फिर कुछ नहीं हुआ?"

"होता क्या? साले की टाँग खींचकर भीतर तारों में कर लिया। कह दिया, भीतर घुस आया था, और वहाँ पूछता कौन है?" रुद्रा ने चाल चल दी थी, अतः अत्यन्त इतमीनान से तेजपाल अँगुलियाँ नचाते हुए अगली चाल तय कर रहे थे। बोले: "यार, सब दीख रहे हैं। हमारी बीवी नहीं दीख रही। किधर गई?"

"उधर बैठी अफ़सोस कर रही हैं।" रणधीर कड़वाहट से बोला।

जो आदमी सिर्फ़ मजाक के लिए किसी की जान ले सकता है, उसे मैं फटी-फटी आँखों से देखता रहा। जी बहुत खराब हो आया था और मन होता था कि पास पड़ी बंदूक उठाकर मैं भी एक 'फन' देख लूँ कि इनके उठे-उठे बालों के गुच्छे वाले कान गोली लगने पर कैसे लगते हैं। बन्दूक का बट उनके टेंटुए पर रखकर दबाने की तड़पन भीतर मचल-मचलकर रह जाती थी। मैं बैठा-बैठा भुनता रहा, लेकिन वे निहायत निरुद्विग्न भाव से खेलते रहे। मुझे उनकी आँखों और नाक की जगह बन्दूक की गोलियाँ रखी दिखाई दीं। और लगा जैसे चेहरा लाल फ़ैल्ट

---

१. मैंने कहा—एक तमाशा ही सही

का टुकड़ा हो···गोलियों का फूल···जिसमें सैकिण्ड की सुई पलीता लगाती गोल-गोल घूम रही हो···जिसके दोनों ओर पत्थर की आँखों वाले मुर्दा बारहसिंघे के सिर लगे हों।

"यार, उस कमबख्त के नाजुक दिल के मारे हम परेशान हैं। जो बात नहीं हुई, अब उसके लिए घण्टों रोयेगी। इतना समझाता हूँ कि तू आखिर मेजर की बीवी है। कुछ तो दिल कड़ा कर, लेकिन समझ में ही नहीं आता।"

मैंने देखा, उनका चेहरा आश्चर्यजनक रूप से कोमल हो उठा। वे हथेली टेककर उठे और फिर दोनों हथेलियाँ झाड़कर बोले : "भई, एक मिनट में आता हूँ। जरा धीर, देखना, ये मुहरे इधर-उधर न कर दें। है किधर वो ?"

रणवीर ने अंगुली उठाकर इशारा कर दिया, और वे झूमते-झामते कपड़े खड़खड़ाते उधर चले गये सादा कपड़ों में भी जब वे चलते थे तो ऐसा लगता था जैसे वर्दी पहने हों। देखा तो थोड़ी देर बाद ही मिसेज़ तेजपाल की बांह को अपनी बाँह में दावे, वे उन्हें लिये चले आ रहे हैं; उनकी घड़ी का डायल धूप में चमक रहा है। रूठे बच्चे की तरह वे जैसे अनिच्छापूर्वक झेंप से मुसकराती खिंची चली आ रही है। उनकी आँखें लाल थीं और वे बार-बार नाक सुड़क रही थीं। बिन्दी बिगड़ गई थी। दूसरे हाथ से कभी-कभी कान के ऊपर बाल ठीक कर लेती थीं। तेजपाल का चेहरा खिला था। तब मैंने जाना, तेजपाल कहीं भीतर गहराई में उन्हें बहुत प्यार भी करते हैं।

लेकिन उस क्षण मात्र गहरी काहिया वर्दी में रंग-बिरंगे रिबन लगाये मेजर तेजपाल और आसमानी कपड़ों में फूटे पड़ते निष्कलुष सौन्दर्य की आभा को देखकर किसी ने मन में ही बहुत जोर से दुहराया··· ब्यूटी एण्ड द बीस्ट ![1]···

---

१. सौन्दर्य और पशु

पिकनिक फिर कैसी हुई, मुझे पता नहीं। मेजर तेजपाल का चेहरा देखकर मुझे उबकाई-सी आती थी। उनकी कनपटियों पर सफेद होते बाल बड़े भद्दे लगते थे और बालों से भरी कलाई पर घड़ी का चौड़ा-सा डायल हाथ घुमाते ही झलमला उठता था और जिसमें अंकों की जगह सुनहरी बिन्दियाँ रखी थीं और सेण्टर सेकिण्ड की लाल सुई निरन्तर घूमती रहती थी···मैंने जब-जब उसे देखा तो लगा जैसे कोई परिचित चीज याद आ रही है···जैसे इस घड़ी के सुनहरे बिन्दियों वाले डायल और लाल सुई का किसी चीज से निकट सम्बन्ध है···तभी एकाएक वह गोलियों का फूल स्मृति में कौंध गया···घड़ी के सुनहरे अंक गोलियों के पीतल के शरीर की याद दिला गये थे···फिर न जाने क्यों ऐसा लगा जैसे सैकिण्ड की लाल सुई ऐसी जलती तीली है जो एक-एक अंक को जलाती हुई निकल जाती है!···और तब कल्पना में गोलियों का फूल आतिशबाजी की चरखी की तरह जलता हुआ घूमने लगता था···और हर बार कोई कहता था—यह आदमी अपने मनोरंजन के लिए एक हत्या को स्वीकार कर चुका है···जाने कितनी और की होंगी···और···

आज मैं सोचता हूँ कि रणधीर ने ठीक कहा था। वह आदमी जरा-सी बात में बेझिझक मुझे गोली मार सकता था। सच बात तो यह है कि उस दिन से मैं उनसे मन ही मन दहशत खाने लगा था। लेकिन मैं क्या सचमुच मिसेज तेजपाल को लेकर कोई खतरनाक-खेल खेल रहा था? जहाँ तक स्मृति को कुरेदकर देखता हूँ लगता है, ऐसा तो नहीं है। वे मुझे अच्छी लगती थीं, क्योंकि उनकी सुन्दरता और सजीवता के जादू से मैं अपने-आपको मुक्त नहीं कर पाता था। इस बात को वे भी जानती थीं और निगाहें मिलते ही हम दोनों इस तरह मुसकरा उठते थे जैसे किसी व्यक्तिगत और साझे के रहस्य के दोनों हिस्सेदार हैं। उनके कुछ कमजोर और भावुक क्षणों में मैंने उन्हें देखा था। और यही हमारी

आत्मीयता थी। मुझे तेजपाल पर क्रोध आता; मिसेज तेजपाल पर—जिनका नाम मैं आज तक नही जान सका, दया आती थी, उनके प्रति हमदर्दी होती थी···आज भी ऐसा लगता है जैसे जाने-अनजाने पोज़ों में उनका चेहरा, वह बाल झटकारने का खास अन्दाज, सभी कुछ मेरे सामने साकार हो उठे हों। मुझे मन ही मन इसपर भी गर्व था कि उनके और मेरे बीच में कही कोई नाजुक, गहरा और शायद मधुर समझौता है। हम लोग मित्र है, लेकिन बस, इसके आगे और कोई बात मेरे दिमाग में नहीं आती। मैं मानता हूं कि उनका शरीर-सौन्दर्य आँखों को बांध लेता था और उनमें वह चीज़ कूट-कूटकर भरी थी जिसे अंग्रेजी में सेक्स-अपील कहते है। लेकिन उनके शरीर-सौन्दर्य में कुछ था जो जाने किन स्वप्नों के रहस्य-लोकों में मन को पहुंचा देता था। उनकी बच्चों जैसी हरक़तें बिलकुल बनावटी हैं, यह जानकर भी मन में उनपर क्रोध नहीं आता था। खैर जो भी हो, तेजपाल से मैं कतराता था और उनकी उपस्थिति में प्राय: मुझे बड़ी बेचैनी अनुभव होती थी। अब इसे समय का प्रभाव कहिए या कुछ और कि जैसे ही मैं उनके सामने से हटा कि मन पर पड़ी उनकी छाप बदलती गई। बाद में जब भी एकाध बार उनका ज़िक्र आया तो 'अरे वो हमारे तेजपाल' कहकर ही उनका नाम याद आता। मन ही मन मैं उन्हें दोस्त समझने लगा था, क्योंकि आगे उस रूप में मिलने की कभी उम्मीद नही थी।

लेकिन आज उन्होंने मुझे पहचाना तक नहीं। कॉफ़ी हाउस में अगर वे पहचान लेते तो मैं ही उन्हें जी भरकर कॉफ़ी पिलाता और इतने पुराने परिचित के मिलने पर खुश होता। लेकिन आज तो उन्होंने जैसे मनजाने, पर खुले रूप में शत्रु ही घोषित कर दिया···मगर बीनू कहती है कि वे बेचारे तो अपने होश में नहीं थे! वे तो रांची से छूटकर आये हैं···जाने क्यों पागल हो गये? मिसेज तेजपाल जाने कहाँ होंगी···कैसी होंगी जाने···

और मेरा मन घूमने में वतई नहीं लगा। यों ही सिगरटें फूंकता लौट आया। क्वार्टरों में अँधेरा हो चुका था। मुश्किल से दस बजे होंगे और यहाँ आधी रात हो गई लगती है। कहीं एक पिछले वरामदे में हल्की रोशनी दीखती थी, अर्दली सुबह के लिए साहब के परेड के कपड़े लगा रहा होगा। गेट के दरवान ने ताला बन्द कर लिया था। वगल के रास्ते से मैं भीतर की सड़क पर आ गया। कुहनी पर जिस दिन पट्टी वंधी थी, उस दिन मिसेज तेजपाल यहीं तो मुझे मिली थीं। दाहिनी ओर वे चल रही थीं और वाईं ओर कुतिया उन्हें घास की ओर खींचे जा रही थी। मन पर बड़ा वोझ घुमड़ आया। मान लो, किसी दूसरी जगह वे मुझे मिलें तो मैं उन्हें पहचान लूंगा ? या मुझे देखकर क्या वे खुद ही चहककर पूछेंगी : "कहो, अपनी फांसी-वासी को कहाँ छोड़ आए···?"

अपने फ्लैट की घण्टी वजाई। दरवाजा खुलने की राह देखते हुए मुझे ऐसा लगा कि अगर जल्दी ही दरवाजा नहीं खुलता तो मैं यहीं जमीन पर वैठ जाऊँगा। दूसरी वार घंटी वजाने वाला ही था कि किवाड़ों का कांच भक् से जल उठा, यानी भीतर वरामदे की वत्ती जली। चटखनी खुली। बड़े-बड़े फूलोंवाला गाऊन चढ़ाये वीनू थी। एक हाथ से अपने गालों पर किसी क्रीम की मालिश कर रही थी : "वड़ी देर कर दी···"

भीतर वरामदे में आकर, दरवाजा वन्द करके उसके लौटने की राह देखते हुए मैं वोला : "हाँ, यों ही। यहाँ अकेले वैठे-वैठे मन नहीं लग रहा था, सो जरा-सा टहलने निकल गया। अव तो किले के पास भी वहुत-से क्वार्टर वन गये हैं। पहले तो नहीं थे।"

"हाँ। ये तो तभी वन गये थे। अखवारवालों ने तो वहुत शोर मचाया कि कलकत्ते की सारी सुन्दरता ही इस मैदान की वजह से है। अगर यों क्वार्टर या और चीजें वनती चली गईं तव तो वस यही याद करने को रह जायेगा कि यहाँ कभी मैदान था।"

"रणधीर सो गया क्या ?" मैंने अपने कमरे की ओर जाते हुए पूछा।

"अरे मैंने कहा, डी० जी० साहब, शाम को मेजर तेजपाल मिले थे, इस वक्त कहीं मिसेज तेजपाल तो नही मिल गईं···?" मेरी बात के जवाब में भीतर से रणधीर की आवाज आई। फिर वह खुद ही हो-हो करके दबी-सी हँसी हँसा। रात में हँसी की आवाज बाहर भी जाती है।

पर्दा हटाकर मैं भीतर आ गया। टाँगों पर रजाई डाले, पलँग के सिरहाने के साथ टिका, रणधीर कोई किताब पढ़ रहा था। किताब रजाई पर औंधी रखकर मेरी ओर देखता बोला : "सुना, आज आपको मेजर तेजपाल मिले थे···? बैठ-बैठ, फिर थोड़ी देर बाद जाकर सोना।" और उसने मेरे बैठने के लिए अपनी टाँगें समेट लीं। लगा, इस समय वह बातें करने के मूड में है। उसने किताब बीनू वाले खाली पलँग पर रख दी। दोनों पलँग सटे हुए बिछे थे। ऊपर अनखुली मसहरियाँ चाँदनी की तरह तनी थीं। बीनू ड्रेसिंग टेबिल के सामने वाले स्टूल पर आ बैठी और अँगुलियों में जाने कौन-कौन क्रीम, लोशन लगा-लगाकर चेहरे पर मालिश करती हुई हमारी बातें सुनने लगी।

मैंने सचमुच परेशानी से कहा : "यार, इतना बड़ा धोखा कैसे हो सकता है ? उस आदमी की शक्ल तो हूबहू तेजपाल से मिलती थी। फिर इस बीनू ने यह बताकर मेरा शक और भी पक्का कर दिया कि उनका दिमाग़ खराब हो गया था। क्योंकि जिस ढंग से उस आदमी ने बातें कीं, वह सही दिमागवाले आदमी की बातें थी ही नहीं।"

रणधीर को अभी विश्वास नहीं हुआ। हँसकर बोला : "अरे जनाब, यही तो मैंने कहा कि—वह तो मेजर तेजपाल थे, अगर किसी दिन मिसेज तेजपाल मिल गईं तो हमें अस्पताल में आपकी तलाश करनी पड़ेगी। आपके दिमाग़ में तो वही छाई है न, सो क्या ठीक है, जाने किस दिन किसी को भी जाकर पकड़ लें कि आप मिसेज तेजपाल हैं।"

इस बार उसके मजाक़ पर ध्यान न देकर मैंने परेशान स्वर में कहा: "मजाक छोड़ यार, बता न कहाँ हैं आजकल वे ? मेजर तेजपाल को क्या हुआ था ?"

शीशे में वीनू का पूरा शरीर दिखाई दे रहा था—उसके साथ ही मेरी परछाई और पीछे का खाली पलँग, ऊपर लटका बल्ब। होठों पर अँगुलियों से मलने के बहाने अपनी दुष्ट हँसी छिपाती हुई बोली : "बता क्यों नही देते ? खलबली के मारे बिचारे को रात-भर नींद भी नहीं आयेगी।"

"भई, जानने की उत्सुकता तो है ही...।" मैंने स्वीकार किया।

"अरे तुझे तो खत लिखती होगी न, तेरी तो दोस्त थी...मोस्ट इंटीमेट फ्रेण्ड[१]..." उसकी मुसकराहट में मेरी बेचैनी का मजा लेने का भाव था। उसकी हर मुद्रा मानो कह रही थी कि मिसेज़ तेजपाल की बात सुनकर रहा नही जा रहा न...

मुझे ऐसी झुँझलाहट आ रही थी कि इसके बाल नोंच लूँ, इस वक्त भी यह मज़ाक करने से बाज़ नहीं आ रही। मैंने आजिजी से कहा : "वीनू, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, इस वक्त मजाक मत करो। न बताना चाहो तो कोई बात नही..."

वीनू की गर्दन मुड़ी, एक बार निगाहें रणधीर से और फिर मुझसे मिलीं। सहसा वह गंभीर हो गई। बोली : "ज्यादा तो ये ही जानें, इन्हींके साथ तो थे मेजर तेजपाल उस वक्त। मैं तो यहाँ की बात जानती हूँ।"

इस बार जैसे कहीं दूर खोकर रणधीर बोला : "वह तो बहुत ही गम्भीर केस हो गया भाई। हममे से किसी को भी अन्दाजा नहीं था कि बात यह होगी। हम लोग तो यही समझते थे कि दोनों का स्वभाव नहीं मिलता...लेकिन भीतर इतनी बड़ी ट्रेजेडी होगी..."

ये लोग साफ-साफ़ क्यों नही बता देते ? क्यों मेरी उत्सुकता को खींचे चले जा रहे हैं ? मैंने दोनों घुटनों पर हाथ रख लिए, अगर अब नही बताया तो मैं उठकर चला जाऊँगा। चिन्तित मुँह बनाकर पूछा :

---

१. अन्तरंग मित्र

"क्यों ? कहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो गई क्या ?" तभी वही पुराना मजाक दुहराने का लोभ संवरण नहीं कर पाया : "दाने को कोई चुग गया क्या ?"

"नहीं..." सोचता-सा रणधीर बोला : "चुग-चुगा तो कोई नहीं गया। हाँ, दाने को ही पर निकल आए सो एक दिन फुर्र..." उसने हाथ से चिड़िया उड़ने का इशारा किया।

"हैं...?" मैं चिहुंक-सा पड़ा : "सच ? मजाक तो नहीं कर रहा ?"

रणधीर अब भी नहीं हँसा। उसी तरह बोला : "हाँ, मजाक नहीं। उसी से उस बेचारे तेजपाल का दिमाग़ खराब हो गया। चाहे जो कहो, आदमी उसपर जान देता था। वैसे भी—ही वॉज़ ए फ़ाइन चैप..."

"वे चाहे जान देते हों, लेकिन मिसेज तेजपाल ने तो शुरू से ही उन्हें पसन्द नहीं किया...लगता था जैसे वे उनकी छाया से दिन-रात बचती रहती हों और हमेशा अपने को कुतिया और गुड्डी में बहलाये रखना चाहती हों।" वीनू ने बाल खोलकर कन्धे के ऊपर से सामने की ओर कर लिए और तेल की प्याली में अंगुलियाँ डुबा-डुबाकर धीरे-धीरे बालों की लटों में लगाने लगी थी : "तेजपाल के कैम्प चले जाने के बाद तो सचमुच उनकी हालत अजब हो गई थी। उन दिनों जरूर लगा जैसे वे या तो उन्हें बहुत ही याद कर रही है या बड़ी मानसिक कश-मकश में से गुजर रही हैं..."

"क्यों, कैम्प क्या बहुत दिनों को गये थे ?" मैंने पूछा।

"पूरे दो महीने का था। पहले तो उन्होंने मिसेज को घर भेजने की बहुत ज़िद की; लेकिन वे नहीं ही मानीं। बोलीं : यहीं रहूँगी। वहाँ मुझे अच्छा नहीं लगता। खैर, यहीं रहने लगीं। वही दिन-दिन भर गाना और कभी गुड्डी और कभी कुतिया को लिए हुए इधर से उधर घूमना। कुतिया को लिए हुए ईडन-गार्डन तक घूमने जाती। मिसेज रुद्रा को गुड्डी को इतनी-इतनी देर तक छोड़ना अच्छा नहीं लगता था; लेकिन हम लोग समझा देते कि बेचारी अकेली हैं। आपका क्या है,

उनका मन लग जाता है। मिसेज रुद्रा को यह अन्धविश्वास भी था कि कहीं गुड्डी को वे कुछ कर-करा न दें। किसी आया ने शायद बता दिया कि जिन औरतों के बच्चे नही होते वे कुछ उस तरह की उल्टी-सीधी बातें करती हैं। और एक दिन उन्होंने मिसेज रुद्रा के चेहरे पर जाने क्या पढ़ा कि उस दिन से न तो रुद्रा के घर गई, न कभी गुड्डी को साथ ले गई—बस, दूर से ही टा-टा कर लेती। शुरू-शुरू मे दो-एक दिन तो हमारे यहां अड्डा जमाए रक्खा···इस बीच में कई बार कहा : 'मिसेज रुद्रा बड़े ओछे दिल की हैं।' मैंने बहुत बार पूछा; लेकिन बताया कुछ भी नही। बस यही पूछती थीं कि 'आपका किशोर कब आयेगा ?' लेकिन एक बात की ओर हम सभी लोगों का ध्यान जाये बिना नही रहा कि धीरे-धीरे उनका गाना कम होता चला गया। इसके साथ-साथ ही औरों के यहाँ आना-जाना भी घटा। हमने सोचा कि बेचारी अकेली हैं, परदेस में हम लोग ही तो उनके अपने हैं, सो मैं अक्सर उन्हें देखने जाने लगी। लेकिन उनके व्यवहार में एक ऐसी अजीब निर्जीवता और उदासीनता आने लगी थी कि भई, फिर हमने भी जाना बन्द कर दिया। वे अक्सर मोटी-मोटी किताबें लेकर बैठी रहतीं। ये मुझे अक्सर कहते—आजकल ग्रामोफ़ोन चुप क्यों है ? दाना आज दिन-भर नहीं दिखाई दिया। तबीयत तो खराब नहीं है, तुम्ही देख आओ···"

रणधीर ने अपनी सफाई दी : "मैंने सोचा कि अकेली औरत है। कभी किसी चीज की जरूरत ही पड़ जाये। अकेले मन भी तो नहीं लगता होगा। मान लो, आज मैं ही कैम्प चला जाऊँ तो पास-पड़ोस वालों पर ही तो इन्हें छोड़कर जाऊँगा या नहीं ? इसलिये मैं कहता कि दोपहर में उनके साथ ज़रा ताश-वाश खेल लिया करो···"

बीनू ने मुसकराकर बात काट दी : "तो मैं आपसे कुछ कह थोड़े ही रही हूँ ? आप अपनी सफ़ाई क्यो दे रहे हैं ?" फिर अपनी बात का आनन्द लेती हुई मेरी ओर मुड़ीं : "सो जब भी अक्सर इनसे मुलाकात होती आप ज़बान में शहद घोलकर कहते : 'मिसेज़ तेजपाल, आपकी

तबियत-वबियत तो खराब नही रहती ? वैसे तो आप खुद ही तकल्लुफ़ में विश्वास नहीं रखतीं — कि कुछ सोचेंगी नहीं, लेकिन हमारे लायक कोई काम हो तो बिना किसी संकोच के बताइये। आपका यों सुस्त रहना सारी जुबली-लाइन्स को अखर रहा है। हमें तो बिना गाना सुने खाना हज्म होना बन्द हो गया है। इस बीनू के साथ पहले आप शौपिंग, क्लब, सिनेमा वगैरह तब भी चली जाती थीं, दिन भर कुछ न कुछ करती रहती थी, अब आपने वह भी बन्द कर दिया···लेकिन उन्होने इन्हें कभी लिपट नहीं दिया। एकाध बार तो इन्होंने मजाक में कह भी दिया : "मेजर तेजपाल तो बहुत ही मिस कर रही है क्या ? अगले हफ़्ते मुझे भी कैम्प जाना है। उन्ही के साथ पड़ा है। जाऊँगा तो कह दूँगा। वे थैंक्स कहकर चुप हो गई। फिर सुस्त-सी हँसी हँसकर बोलीं : 'नहीं, कोई ऐसी खास बात तो नही है।' ये अपना-सा मुँह लेकर रह गये···"

रणधीर नई जलाई सिगरेट का कश खींचने की व्यस्तता में अपनी झेंप-भरी मुस्कराहट छिपाता रहा : "नो बीनू ! ऐसी कोई बात नहीं थी। डौन्ट बी सिली[1]। मैं तो यों ही कर्ट्‌सी[2] के लिये पूछता था।"

"हाँ-हाँ, तो मैं कौन-सा कोई दूसरा मतलब लगा रही हूँ ?" वह रहस्यमय ढंग से मुस्कराई। फिर अपने किस्से पर जाकर बोली : "किटी को सुबह शाम घुमाने वे जरूर ले जाती। इस प्रोग्राम में कभी लापरवाही नहीं हुई। वर्ना दिन भर इस बरामदे में कभी उस बरामदे में रेलिंग के सहारे खड़ी-खड़ी कुहनियाँ टिकाये, होठों को नीचा करती···मैंने उन्हें तीन-तीन चार-चार घण्टे यों ही खड़े देखा है···जाने क्या देखा करतीं, सूनी-सूनी आँखों से। यह तो सभी जानते थे कि हस्बैंड और वाइफ़ में बहुत ज्यादा प्यार हो, ऐसा नही है; फिर भी हमने सोचा कि उन्हें टीज़ करने, तंग करने के लिए ही सही, सारे दिन गाती-खिलखिलाती तो

---

१. मूर्ख मत बनो २. शिष्टाचार

रहतीं थी, एक रौनक बनी रहती थी। हम लोगों के लिए भी चर्चा के लिए कोई चीज थी। अब वह सब कुछ भी नहीं रह गया। जब जाओ तब कभी 'वार एण्ड पीस' पढ़ रही हैं, कभी 'ज्यां क्रिस्तोफ'। हम घण्टों चुपचाप बैठे रहते। हारकर पूछते : "मिसेज तेजपाल आपका मन कैसे लगता है इन किताबों में?" बस, जवाब में खोई-खोई सी मुसकरा देतीं··· मानो किसी दूसरी दुनिया में जाकर रहने लगी हों···हम सभी इस बात को महसूस करने लगे थे कि सिर्फ शरीर यहाँ है···ये अब यहाँ नहीं रहतीं···इसके बाद इनके भी ऑर्डर्स तेजपाल के साथ ही कैम्प जाने को आ गये। मेरे दो-एक हफ्ते इनकी तैयारी और बाद को सँभाल में चले गये···इस बीच में मुझे दिल्ली भी जाना पड़ा···किशोर से मिलने।"

मैंने गम्भीरता से कहा : "ख़ैर, यह तो मैंने भी मार्क किया कि उनका वह गाना-खिलखिलाना बहुत स्वाभाविक और भीतर से फूटा हुआ नहीं था। लगता था, मेजर तेजपाल को चिढ़ाने के लिए ही वह सब करती हों···" और मुझे फिर हुगली वाली याद हो आई।

"भई, अब जो भी हो···उनके मन की बात तो भगवान् ही जाने।" बीनू यों ही हथेलियों पर बालों के सिरे को लेकर तेल लगे हाथ मसलती रही : 'लेकिन दिल्ली से आते ही उनमें एक और परिवर्तन की ओर हमारा ध्यान ज़रूर गया। दिन में दो-तीन बार मिसेज तेजपाल हमारे यहाँ यह पूछने आने लगीं कि 'पोस्टमैन आ गया क्या?' जैसे ही पोस्टमैन आता, वे दूर से ही अपना दरवाजा खोलकर खड़ी हो जातीं और जब वह नीचे से ही चला जाता तो उनका चेहरा देखने लायक हो जाता। वे हमारे यहाँ आतीं : 'गलती से हमारा कोई खत तो पोस्टमैन यहाँ नहीं डाल गया?' अक्सर किटी को घुमाती हुई हेस्टिंग्ज़ के पोस्ट-ऑफिस जा पहुँचतीं···या गेट पर खड़ी-खड़ी दरबान से पूछा करतीं कि डाक किस-किस समय बँटती है। दूसरों के खत लेकर उनकी मोहर देखतीं और अक्सर शिकायत करतीं कि मुहर पर समय साढ़े आठ पड़ा है और डाक ग्यारह बजे बाँटी जा रही है। इन डाकियों की शिकायत होनी चाहिये।

लगता था कि खत पाने के लिए वे पागल रहती थीं···उनका रोम-रोम मानो साकार प्रतीक्षा बन गया था। उनका खत तो हमारे यहाँ नहीं आया; लेकिन एक दिन वे ट्रेनों का टाइम पूछते हमारे यहाँ आईं। एक हाथ में खुला पेन और दूसरे में आधे लिखे खत का पैड था। शायद खत में ट्रेन के आने या जाने का टाइम लिखना था, सो यों ही लिये भाग आईं। जब गईं तो मैंने देखा—खत का एक पन्ना मेज़ से उड़कर कुर्सी के नीचे जा गिरा है···मैंने इन्हें भी दिखाया। मेरी समझ में तो कुछ आया नहीं। जाने क्या-क्या लिखा था! उन्हें वापस लौटा देने के लिये मैंने वह पन्ना एक किताब में रख दिया और फिर ऐसी भूल गई कि बहुत खोजने पर भी नहीं मिला। इसीलिए फिर जान-बूझकर उनसे जिक्र भी नहीं किया कि माँगेंगी तो क्या दूँगी। ये मुझसे लड़ते रहे कि अगर ऐसी ही याद पाई है तो उसे मेज पर ही रख देती, कम से कम उन्हें लौटा तो देते ही···"

रणधीर निहायत निर्विकार भाव से आँखें बंद किये सिगरेट पी रहा था, उसने पीछे पीठ टिका ली। यों ही रहकर बोला : "तुम अपनी बात तो पूरी कर लो पहले···"

बीनू ने उसे देखा और मेरी ओर भौंह से इशारा किया। बोली : "हम लोग आश्चर्य करते और दिन-रात इसी बारे में बातें करते कि आखिर मिसेज़ तेजपाल को हो क्या गया? सपने में भी ख्याल नहीं था कि तेजपाल के बाद उनकी हालत यह हो जायेगी। हम तो सोचा करते थे कि वे उन लोगों में से हैं, जिन्हें कुएँ में भी डाल दो तो वहाँ भी गाती गुनगुनाती रहें···लेकिन उन दिनों तो गाना खो ही गया था···"

हममें से कोई कुछ पूछे इसके लिए थोड़ा सा समय देकर बीनू ने आगे बताया : "और तब सुना, एक दिन उनके फ़्लैट में वॉयलिन की आवाज़ आ रही है। ~उन्हें वॉयलिन सीखने की धुन लग गई थी। एक काला-सा आदमी उन्होंने लगा लिया था जो रोज आकर उन्हें वॉयलिन सिखाया करता था। शायद मेज़र अइयर ने वह ट्यूटर उन्हें सुझाया

था। जब भी जाओ तो वॉयलिन बजा रही हैं···उसी के बारे में बातें··· बाजार जाओ तो उसी की चीजों का वर्णन···उन्हीं की दुकानों का चक्कर···हम लोग समझ गये थे कि ये सनकी हैं और जो भी इनके दिमाग़ में चढ़ जाता है बस, उसीके पीछे हाथ धोकर पड़ जाती हैं। और इसके बाद न इन्हें खाने का होश रहता है, न सोने का। बस, किटी को घुमाने का काम वे बिना नागा नियमित रूप से करतीं थीं। कलाई में फ़ीता लपेटे वे रोज दोनों वक्त उसे घुमाने ले जातीं। लेकिन जैसे पहले उसके पीछे गाती, गुनगुनाती, कुलाचें भरती-सी निहायत बेफिक्र मस्ती से चली जाती थीं वह सब एकदम समाप्त हो गया था···अब तो लगता था जैसे बीमार और मजबूर-सी उस तगड़ी कुतिया के पीछे-पीछे घिसटती चली जा रही हों···। हम लोगों को बड़ा तरस आता···देखो, इनकी क्या हालत हो गई है।···फिर एक दिन देखा कि सामान-बामान बाँधकर उन्होंने सीट रिजर्व कराई और आकर बोलीं : 'मैं घर पर जा रही हूँ।' हम लोग कर ही क्या सकते थे ? स्टेशन जाकर उनको और उनकी कुतिया को विदा कर आये···जाते-जाते रोने लगीं···'गुड्डी की मुझे बड़ी याद आयेगी।' बस उस दिन के बाद से आज तक पता ही नहीं लगा कि कहाँ गईं···" बीनू का गला भर्रा आया।

थोड़ी देर हम लोग सभी चुप रहे। मानो उस प्रभाव को आत्मसात् करते रहे। उनका दुख मुझे भीतर ही भीतर जैसे सालने लगा। गले का थूक लीलकर मैंने पूछा : "उस ख़त के पन्ने में क्या लिखा था ?"

"एक शायरी थी और भी जाने क्या-क्या था···" बीनू ने बताया।

तब रणधीर ने आँखें खोलीं और फ़िजिडियर के पास वाली आलमारी की ओर इशारा करके कहा : "वे चर्चिल के 'वॉर मैमोअर्स' रखे हैं न, उनकी बायें सिरे वाली जिल्द में रखा है ख़त।"

"हैं ?" मैं ज़ोर से उछल पड़ा। लपककर किताब उठाई और भूखे की तरह पन्ने पलटकर ख़त खोजने लगा।

"आपको पन्ना मिल गया और आपने हमें बताया नहीं···?" बीनू

ने शिकायत के लहजे में कहा।

"अभी सात-आठ दिन पहले ही किताब के पन्ने पलटते-पलटते दीख गया···" फिर मुझसे बोला : "वह है न, नीला-सा कोना···"

मैंने नीला कागज खींच लिया। देखा, किसी बड़े खत के बीच का हिस्सा था। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, तब कहीं बड़ी मुश्किल से समझ में आया कि मैं क्या पढ़ रहा हूँ। कागज एकदम यों शुरू होता था :

"···तनाव टूट जाने की स्थिति तक आ पहुँचा है। सारे दिन अकेली बैठी-बैठी पढ़ा करती हूँ, लेकिन कुछ भी पढ़ नहीं पाती। किताबें खुलीं रहती हैं, पन्ने पलटे जाते हैं, आँखें अक्षरों और लाइनों पर घूमा करती हैं और लगता है, दिमाग़ के बोझ से पलकें बन्द हो-हो जाती है। पता नहीं रहता कि चारों तरफ़ क्या होता रहता है, जाने यह क्या हो गया हैं मुझे! सारे दिन सर्दी लगती रहती है और बदन पसीने से तर-बतर रहता है। नींद पूरी तरह नहीं आती। जाने क्या-क्या घूमा करता है दिमाग़ में!

"···याद है, एक बार तुमने लिखा था : 'हम लोग एक दूसरे को सँभालने, सँवारने और बनाने में मदद दें, दुख और कमज़ोरी के क्षणों में उसे बाँटकर एक दूसरे को हल्का कर सकें, बल दे सकें···" कुछ कर सकते हो बोलो···? मेरे दिमाग़ से यह बोझ उतार सकोगे? इस तनाव से पीछा छुड़ा सकते हो··? मानोगे, मैं आजिज आ गई हूँ···

"···सुनो, एक हफ़्ते भर को यहाँ आ जाओ न···मैं कतई परेशान नहीं करूँगी तुम्हें, सारा दिन···कुछ देर बातें करेंगे बस, फिर तुम बैठे वॉयलिन बजाया करना···मैं चुपचाप सुना करूँगी···

"साहिर की लाइनें बार-बार तुम्हें लिखने को मन करता है :

कहीं ऐसा न हो कि मेरे पाँव थर्रा जाएँ
और तेरी मरमरी बाहों का सहारा न मिले
अश्क बहते रहें, खामोश सियह रातों में···
और तेरे रेशमी आँचल का किनारा न मिले···

बस, खत यही समाप्त हो गया था। जाने क्या लिखा होगा अगले पन्नों में ! मैं बड़ी देर सोचता रहा। जानता था, यह पत्र मेरे लिए नहीं हो सकता था···फिर भी एक ठण्डी साँस दिल को चीरती चली गई···काश, यह खत मेरे लिए ही लिखा गया होता !···

"देखूँ, मैं भी तो देखूँ, क्या मतलब निकलता है इसका···?" वीनू के स्वर और खत लेने को बढ़े हाथ से मैं जैसे तन्द्रा से चौंक पड़ा···किसी वॉयलिन बजाने वाले की बात उस दिन हुगली के किनारे बताई तो थी। गहरी साँस लेकर बात को पूरा किया : "तो इसी ग़म ने मेजर तेजपाल को पागल कर दिया ?"

इस बार रणधीर सीधा उठकर बैठ गया। सिरहाने दूध के गिलास वाली मेज़ पर रखी जूते के आकार की एश-ट्रे में सिगरेट डालकर उसने दोनों हाथों को पहलवानों की तरह छाती पर कस लिया, निचला होंठ सिकोड़कर चबाया और बड़ी संजीदगी से गर्दन हिलाकर बोला : "नॉट एक्ज़ैक्टली···नहीं, इस ग़म ने मेजर तेजपाल को पागल नहीं किया। वह ग़म बहुत गहरा था, दूसरा था। जैसा कि तुम कहते हो न, कि मिसेज़ तेजपाल का गाना, चहचहाना सब बनावटी और नकली लगते थे, उसी तरह मुझे भी लगता है कि मेजर तेजपाल का दबदबा, खूँखारपना, और कठोरता भी असली नहीं थे···और दोनों अपने-अपने नक़ली हथियारों से एक दूसरे से लड़ रहे थे···मज़ा यह कि दोनों जानते थे कि हथियार दोनों के पास नकली हैं···यह लड़ाई खुद नकली है ! असली मोर्चा तो कुछ भीतरी ही था और वही वह उन्हें हरा गई···"

"क्या मतलब ?" रणधीर ने इतनी सारी बात कही और सचमुच मेरी समझ में कुछ नहीं आया। पूछा : "वे कैम्प जा पहुँची क्या ?"

"नहीं जी, वे कैम्प क्यों पहुँचती ?" और फिर आँखें बन्द करके उसने कहा : "बात असल में यों हुई कि···भई, मेजर तेजपाल को तो तुमने देखा ही था। शुरू से ही रिजर्व रहते थे। मूड में हुए तो बोल

लिये, नहीं तो बहुत कम ही बोलते-चालते थे। कैम्प पर एक दिन लालटेन बीच में रखे हम लोग खाली वक्त में कोई जरूरी कागज देख रहे थे। मेज पर सामने-सामने बैठे थे। तभी अर्दली ने डाक लाकर दी। उनका भी खत था। उन्होंने लिफ़ाफा खोला, खत निकाल कर पढ़ा और फिर रख दिया। थोड़ी देर चुप रहे। मैं समझ तो गया कि खत मिसेज तेजपाल का है। फिर भी पूछा : 'किसका है, कोई खास बात है क्या ?' तो जवाब दिया : 'नहीं, यों ही पूछा है, घर चली जाऊँ ?" खैर, हम लोग फिर काम में लग गये। मुझे लगा जैसे मेजर तेजपाल का मन काम में लग नहीं रहा। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर लिफ़ाफा उठाया, पढ़ा और फिर वहीं रख दिया। मैंने सोचा, काम सुबह हो जायेगा। इस वक्त इन्हें अपने सोचने के लिये अकेला छोड़ दूँ। सो डिनर पर मिलने को कहकर मैं भी उठ आया। खाने पर जब वे नहीं पहुँचे तो पता लगवाया। अर्दली ने जाकर कहा कि 'साहब तो बन्दूक लेकर गया है। कह गया है कि हम शिकार पर जाता है।' मुझे अजब-सा लगा। इतने दिन हो गये, इस वक्त तो कभी शिकार पर नहीं गये। लेकिन दो दिन पहले ही वे गाँव के एक आदमी से नीलगायों के बारे में बातें कर रहे थे, सोचा शायद उनके साथ कोई समय तय कर डाला हो। लेकिन बिना मुझे बताए चले जाना कुछ समझ में नहीं आया।

"दूसरे दिन पता लगा कि उस रात को वे पास की पहाड़ी पर चले गये थे और वहाँ उन्होंने अन्धाधुन्ध आसमान की ओर फ़ायर किये थे। सुबह जब अर्दली ने लाकर बेड-टी लगाई तो धक्का मारकर उसे दूर फेंक दिया। परेड पर आये तो बड़ा अजब हाल : वही रात के कपड़े, हजामत बढ़ी हुई, रात भर का जगा, भारी-भारी आँखों वाला मनहूस चेहरा। मैंने पास जाकर कंधे पर हाथ रखा, हमदर्दी से पूछा : 'वाट्स रोंग चैप...' तो अचानक मेरा हाथ झटककर पागलों की तरह एक तरफ भाग खड़े हुए। झाड़ी, पत्थर गड्ढे, काँटे-कंकड़ कुछ भी नहीं देखा... जाने कहाँ-कहाँ भागते फिरे। सारे कपड़े फाड़ लिये। बदन में जगह-

जगह खरोंचे पड़ गए···सारा शरीर खून से रंगीन हो गया। लोगों ने भागकर पकड़ा तो लगे लात-घूंसों से मारने।···वहीं के दो-एक आदमियों ने बताया : 'सा'ब, इनपर देवी आ गई है।' मैंने सबको भगा दिया और बार-बार प्यार से पूछने लगा : 'मेजर तेजपाल, ये आप क्या कर रहे हैं ? कुछ तो सोचिए, आपको यह हो क्या गया है ? ये लड़के लोग भी क्या सोचेंगे ? लेकिन मेरी बात का जवाब न देकर बस, एक से एक बुरी-बुरी गंदी गालियां देते और हर तीसरे मिनट कहते, 'मैं गोली मार दूंगा।' उस वक्त उन्होंने किसीकी एक नहीं सुनी। यह तो कहो, उनके दिमाग़ में नहीं आया; वर्ना अगर कहीं ईंट-पत्थर मारने की बात दिमाग़ में आ जाती तो दो-एक को घायल कर डालते। संभालना भी मुश्किल हो जाता। दो-चार आदमियों के तो यों भी बस के नहीं थे। खैर, जब उन्हें पकड़कर कैम्प लाये तो उनका बुखार कुछ-कुछ उतर गया था और वे अच्छे-भले, लेकिन बीमार आदमी की तरह व्यवहार करने लगे थे। बहुत देर माफ़ी-वाफ़ी मांगते रहे। बोले : 'यार घोर, मुझे जाने क्या हो गया था। बुरा मत मानना, प्लीज़। आइम सो सॉरी, रीयली।' मैंने भी उन्हें समझाया : 'कोई बात नहीं कोई बात नहीं। आप अब आराम कर लें।' सोचा कि कोई लहर आ गई थी, अब गुज़र गई। थोड़ी देर उनका माथा-वाथा सहलाता रहा। सोचा, इस वक्त ज्यादा सवाल-जवाब करना ठीक नहीं है। दो आदमी पहरे पर रखकर चला आया। वे सारे दिन कम्बल ओढ़े पड़े रहे। कैप्टन मक्रीजा ने आकर देखा, बिलकुल नॉर्मल आदमी थे। हां, वह खत उन्होंने जाने कब फाड़-फूड़ डाला और जब मक्रीजा ने उसके बारे मे बहुत पूछा तो डांट दिया : 'वह मेरा अपना पर्सनल मामला है।' दिन भर कुछ भी नहीं खाया-पिया। सारा बदन अंगारों की तरह तपता रहा, एक पल को आंख नहीं लगी। किसीसे कुछ बोले भी नहीं···"

"वह खत नहीं देखा···?" मैंने पूछा।

"वही तो ग़लती हो गई। उसे देख लेता तब तो सारी बात का पता

ही चल जाता। खैर, दूसरे दिन संध्या को बोले : 'मैं जरा टहलूंगा।' इन लोगों ने भी सोचा कि भले आदमी की तरह, छत्तीस घण्टे हो चुके हैं, अब बुखार उतर गया होगा। उनके बैरा को साथ करके उन्हें टहलने भेज दिया। झुटपुटे का समय था। वे आगे-आगे थे, बैरा कुछ दूरी पर चल रहा था। रास्ते भर दोनों चुप रहे। लेकिन आते वक्त उन्हें एक औरत मिल गई। वह अपने खेत से पोटली सिर पर लादे घर आ रही थी। बस, उसे देखते ही उनका दिमाग़ फिर खराब हो गया। एक ही छलाँग में उसके सिर पर सवार हो गये। पूछा न ताछा और औरत को उठाकर धरती पर दे पटका। उसके सारे कपड़े-वपड़े फाड़ डाले और जब तक उसकी चीख-पुकार सुनकर, अर्दली की आवाज पर लोग दौड़े, तब तक उन्होंने उसके शरीर पर एक इंच कपड़ा नहीं रहने दिया था। गांव वालों ने कुछ शायद पीट-पाट भी दिया और लाकर कैम्प छोड़ गये। रात-भर उन्हें खाट से बाँधकर रखा गया। वे सारी रात चिल्लाते-चीखते रहे : 'मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।' दूसरे दिन कैप्टेन मक्रीजा ने रिपोर्ट दे दी कि इनका दिमाग खराब हो गया है और उन्हें जल्दी से जल्दी कैम्प से हटा देना जरूरी है। मक्रीजा के साथ उसकी नर्स भी थी। उसे देख-देखकर वे जैसी चेष्टाएं करते थे, और जिस अश्लील और बीभत्स-भाषा में कहनी-अनकहनी सुना रहे थे, उसे देखकर नर्स को वहाँ से हटा देना पड़ा। इससे यह तो साफ़ हो गया कि औरत की सूरत देखते ही उनका पागलपन भड़क उठता है। इसके बाद उन्हें रांची पहुँचा दिया गया···सच कहता हूँ, मैं तो उस बेचारे की बात आज भी सोचता हूँ तो बड़ा दुःख होता है। मेरे साथ ही 'प्रमोशन' मिलने वाला था। शुरू के दिनों की रिपोर्ट के बारे में मक्रीजा बताता था कि खम्भा, पेड़, किवाड़ उनके सामने जो भी पड़ जाता उससे लिपट जाते, उसके साथ अश्लील चेष्टाएं करते और खुद अपने-आपको लहू-लुहान कर डालते···" रणधीर दर्द से बोलता रहा और मुझे पहली बार ऊपर का बल्ब उसकी नम आंखों में झलमलाता दिखाई दिया।

कुछ देर चुप्पी छाई रही। वीनू ने भी खत पढ़कर किताब में रख दिया था और किताब को दोनों हथेलियों में दाबे, घुटनों पर रखे चुपचाप कुछ सोचती बैठी थी। शीशे में उसकी कनपटी को ढँकते, कन्धे से सामने आते बाल लटके थे। मैं फिर बोला : "खैर, खत तो नहीं पढ़ा जा सका, लेकिन जो कुछ वे बकते थे उससे कुछ अन्दाज तो लग ही सकता है। अक्सर क्या कहते थे ?"

"चिल्ला-चिल्लाकर यही कहते थे कि मैं भी आदमी हूँ। मैं अभी दिखा दूँगा, मैं मर्द हूँ। लाओ, औरत लाओ, मेरे सामने, मैं अभी दिखाता हूँ..."

"हैं ?" और बेचैनी से रणधीर को बात पूरी करने देने से पहले ही मैं चौंककर खड़ा हुआ : "अच्छा ? यह सब कहते थे ..? तब तो तब तो..." मैं अगली बात कैसे कहूँ, यह सोचकर हकलाने लगा : "तब तो इसका मतलब यह हुआ कि..."

लाचारी और असहाय भाव से रणधीर धीमे गले से बोला : "भई कैसे कहूँ ? मुझे तो आज भी विश्वास नहीं है...डाक्टरी रिपोर्ट भी ऐसा नहीं कहती...।"

इस बार वीनू ने कहा : "सचमुच बड़ी वैसी औरत थी...उस बेचारे अच्छे-खासे आदमी की ज़िन्दगी खराब कर दी...अरे तुझे जाना ही था तो यों ही चली जाती ! ..."

लेकिन उस गंभीर वातावरण में वीनू की बात को किसीने महत्व नहीं दिया। और जाने कितनी देर हम लोग यों ही अलग-अलग बैठे सोचते रहे...मेरे दिमाग़ में एक के बाद एक तस्वीरें कौंध रहीं थीं...

बरामदे की घड़ी बाजब घन्-घन् करके बारह घण्टे बजाये तो गहरी साँस लेकर मैं उठा, 'अच्छा, अब तुम लोग सोओ...मैं चलता हूँ... सचमुच सुनकर बड़ा अफ़सोस हुआ...''

और जैसे ही वीनू की गोद से किताब उठाकर चलने लगा कि अपनी गंभीरता के पार बड़े खिसियाने-से ढंग से मुस्कराकर रणधीर ने

मजाक किया : "अब इसे छाती पर रखकर सोना, बड़े खूबसूरत सपने आयेंगे···

कोई बात कितनी नाजुक होती है और किसपर मजाक करना चाहिए, किसपर नहीं, यह तमीज़ इन मिलिटरी वालों को कभी नहीं आयेगी—मैंने मन ही मन सोचा और चला आया। लेकिन यह सच है कि युद्ध के संस्मरणों के बीच दबा वह खत मेरे सिरहाने रखा रहा और मुझे रात भर बड़े अजब-अजब सपने आते रहे। जैसे मैं मन ही मन अपने-आपसे बातें करता रहा। मैं अवचेतन रूप से रात भर मिसेज तेजपाल और मेजर तेजपाल की ही बातें सोचता रहा···स्मृति के प्रोजेक्टर के सामने कुछ तस्वीरें बार-बार उभर-उभरकर आती रहीं··· मैं चांदनी रात में ताजमहल के पास सीले-सीले लॉन में हथेलियों पर सिर रखे चित लेटा आसमान को ताके जा रहा हूँ···कोई सीढ़ियों पर घुटनों में सिर-गड़ाये चुपचाप बैठा है—यह छाया मेरी चेतना पर अंकित हो गई है।···होली के भूत जैसी शक्ल बनाए मेजर तेजपाल मिसेज़ तेजपाल की पीठ में बन्दूक की नली अड़ाये उन्हें जाने किन ऊबड़-खाबड़ रास्तों से धकेले लिये जा रहे हैं···गुड्डी के हाथ में ढेर से कमल के फूल देकर वे खुद गुब्बारे उड़ाती, हरियाले मैदान के ढाल पर मेरी ओर दौड़ी चली आ रही हैं···मैं देखता हूँ कि दौड़ते-दौड़ते मिसेज तेजपाल अचानक ग़ायब हो जाती हैं और उनकी जगह सिर्फ़ गुड्डी दौड़ती आती दिखाई देती है वह अकेली ही भागी चली आ रही है··· ···भयानक आँखों वाली कमर से ऊँची और तगड़ी अलसेशियन कुतिया उन्हें सीढ़ियों पर, सड़क पर और न जाने कहाँ-कहाँ घसीटे लिए जा रही है···कलाई में चमड़े का फ़ीता लपेटे कुहनी पर सफ़ेद पट्टी बाँधे गाती हुई वे खिंची चली जा रही हैं···खिंची चली जा रही हैं···कमान बनीं···। अचानक देखता हूँ कि कुतिया के पीछे मिसेज तेजपाल नहीं, बल्कि गुड्डी खिंची चली आ रही है···आवाज मेरे गले तक आकर रह जाती है—'गुड्डी ! कलाई से फ़ीता छुड़ा लो। उसे छोड़ दो···वह

कुतिया बड़ी भयानक है·· तुम्हें जाने कहाँ गड्ढे-खाई में गिरा देगी'··· और फिर सारी तस्वीरें गोलियों के फूल में बदल जाती हैं·· और यह फूल अँधेरे मे आतिशबाजी की चरखी की तरह फूटता हुआ सारे आसमान को ढँक लेता है···और बीचोंबीच एक सैण्टर-सैकिण्ड की सुई लपलपाती जीभ की तरह घूमती रहती है···

सारी रात मुझे लगा जैसे कहीं बहुत गहरे से, एक निहायत ही महीन रोती-सी वॉयलिन की लहरी सुनाई देती रही···

सुबह एक गहरी छाप मन पर थी : पता नहीं वह तगड़ी अलसेशियन कुतिया उन्हें खींचकर कहाँ ले गई·····नहीं, वे खुद नहीं गईं···।

अनदेखे अनजान पुल

दो आग्रह

निन्नी जिस महिला का नाम है, वे भारत सरकार के एक बड़े जिम्मेदार पद का भार सँभाले हुए है। मेरी उनसे भेंट एक पहाड़ पर छुट्टियाँ बिताने के सिलसिले में हुई। दोनों पक्ष फ़ुरसत में थे, अतः परिचय का वह स्तर शीघ्र ही आ गया, जहाँ एक, दूसरे को केवल गवाह बनाकर स्वयं अपने जीवन को पुनः जीता है।

अपने जीवन को पुनः देखते हुए कहीं उन्होंने कहा था, "जब मैं उस सबको देखती हूँ तो लगता है जैसे एक तंग और अंधेरी सुरंग से गुज़रकर आ रही हूँ। यों इसमें नया कुछ नहीं है, शायद औरों ने भी यही जीवन जिया और लिखा हो।"

लेकिन मुझे लगा, कहानी का कोण एकदम नया है।

कहानी प्रथम पुरुष में सुनाई गई थी; लेकिन निन्नी—विधु—के दो आग्रह थे; और अभी विदेश जाते-जाते उन्होंने मुझे फिर उनकी याद दिलाई है। एक तो यह कि कहानी तृतीय पुरुष में लिखी जाए, दूसरे यह कि कहानी में लड़की का नाम निन्नी ही रहे···

मेरा अन्दाजा यह है कि शायद वे अपने को, उस निन्नी को, एक अलग व्यक्ति की तटस्थता से देखना चाहती हों या यह कि उस लड़की को ही 'डिस-ओन' (अस्वीकार) करना चाहती हों—साथ ही निन्नी नाम से सम्बद्ध मधुर स्मृति-चित्रों के प्रति उनका मोह अभी भी हो···

बहरहाल, अगर इस कहानी को पढ़कर वे मुझे यह सूचना-भर दे सकें कि मैंने उन्हें गलत नहीं समझा—और समझाया है, तो आभार मानूंगा।

—राजेन्द्र यादव

प्रद्युम्नकुमार और किरण जी के लिए

३०-१-६३

कलकत्ता

"मनुष्य महान इसलिए है कि वह सेतु है स्वयं अपना लक्ष्य और सीमा नहीं।"

—नीत्शे

('जरथुस्त्र उवाच' से)

नुमायश और नुमायश

अब फिर से वही नुमायश होगी ! भीतर एक भय है, जो उलटे पड़े तिलचट्टे की तरह हाथ-पांव मारता रहता है···लेकिन नहीं, भीतर एक सपना है, जो मकड़ी के तने जाले की तरह फैला है और हर हवा से लहराने लगता है कि मीलों फैली वही नुमायश है। रंग-बिरंगे स्टॉलों को घेरती गोल-गोल घूमती बच्चों के खिलौनों जैसी एक रेलगाड़ी है और उसमें हम बैठे हैं और वह सर्पाकार सीढ़ियों की तरह घूमती हुई ऊपर उठती चली जाती है···और ऊपर से देखने पर नीचे की अगणित-असंख्य बत्तियाँ घनी क्यारियों में खिल आए फूलों जैसी लगती हैं···।

दिल्ली के स्टेशन पर जब निन्नी उतरी तो वह तिलचट्टा सीधा था और लम्बी-लम्बी सूँड़ें हिलाकर आने वाले खतरे को सूँघ रहा था। मकड़ी ने उस वक्त तक जाला नहीं बनाया था और सच पूछो, तो निन्नी को पता भी नहीं था कि मकड़ी यहाँ जाला बनाने लगेगी। पीछे किले-जैसा स्टेशन और सामने मोटर-ताँगों-रिक्शों की भीड़, एक खद-बद-खद-बद करता हुआ सागर ! सब कुछ कितना नया, कितना अकल्पनीय ! निन्नी चकित-उच्छवसित भी थी और उसे ऐसा भी लग रहा था कि इसमें तो कुछ भी नया और विशेष नहीं है। उसे इसलिए ऐसा नहीं लग रहा था कि वह दिल्ली के बारे में बहुत पढ़ या सुन चुकी थी, बल्कि उसकी प्रकृति ही कुछ ऐसी हो गई थी कि उसे कुछ भी अप्रत्याशित नहीं लगता था—कोई भी घटना, कोई भी व्यक्ति, कोई भी बात या स्थान··उसके भीतर के उस तिलचट्टे ने उसे इतना अधिक आत्मसजग और चौकन्ना बना दिया था कि वह हमेशा ही किसी अनहोनी, अशोभन की प्रत्याशा ही करती रहती और कोई भी बात उसे मूलतः आश्चर्यजनक नहीं लगती,

क्योंकि वह हर शॉकिंग बात के लिए तैयार रहती थी। वह खड़ी-खड़ी नयेपन के विस्मय को पाने की कोशिश करती रही कि दिल्ली में हमेशा ही इतनी भीड़ होती है या आजकल नुमायश के कारण सारा देश यहाँ टूट पड़ा है, लेकिन प्लेटफार्म पर कदम रखते ही जो सूनापन, निराशा और व्यर्थता-बोध घुमड़ने-घिरने लगा, वह अब असह्य हो उठा। धक्कों के बीच, भीड़ की बाढ़ के रेले के साथ बाहर निकली तो बार-बार मन में हुआ, व्यर्थ ही आई, तब अम्मा की बात ही मान लेती। इस समय दादा अकेले होते तो चाहे, जिसके यहाँ पड़ रहते, मेरे रहने से कितनी परेशानी होगी।

"इस प्रेसीडेण्ट की ट्रेन ने तो सारा काम चौपट कर दिया।" घड़ी देखकर दादा बोले, "तीन घंटे लेट हो गए। सात बजे आ जाते। अब आधी रात में तो दर्शन के यहाँ ही एक चांस ले सकते है। अकेला आदमी है, खास दिक्कत भी नहीं होगी। न होगा तो सुबह कुछ और इन्तजाम कर लेंगे।"

अँधेरे कोने में हिलती मूँछों के ऊपर दो आँखें चमक उठीं। तिलचट्टा चौकन्ना हो गया। अब यह जाने कौन है दर्शन ? ताँगे में बैठे-बैठे दादा ताँगे वाले से इस अन्धेर पर बात करते रहे कि प्रेसीडेण्ट की स्पेशल भले आए, इसके लिए नियमित चलने वाली गाड़ियाँ क्यों किसी रोड-साइड स्टेशन पर चार-चार घंटे पड़ी रहे हैं ? मेरा दोस्त है एक करोलबाग में, मैं तो आधी रात को वहाँ जा सकता हूँ। अकेला आदमी है, तसवीरें बनाता है और रहता है। होस्टल में साथ रहे है, लेकिन जिनके इस तरह के इन्तजाम नहीं हैं, ऐसे वक्त उनके लिए कितनी परेशानी हो जाएगी ? किसको जाकर रात के बारह बजे जगायेंगे ?

दादा उससे बक-बक करते रहे और निन्नी धड़कते दिल से उस तिलचट्टे को वापस कोने में भगाने की कोशिश करती रही। दादा पर झल्लाहट भी आ रही थी कि उस अनजान आदमी से इतनी सब बकवास करने की क्या जरूरत ? चुप क्यों नहीं हो जाते ? ताँगा जाने किन उलटे-सीधे ऊँचे-नीचे, घुमावदार रास्तों से होकर जा रहा था। कड़ाके की सर्दी और चारों ओर धूल की तरह छाया कोहरा और उसमें खोई-खोई बत्तियाँ,

ऊँघते मकान। उसे आश्चर्य भी हो रहा था कि कभी इस यात्रा का अन्त भी आएगा या ये लोग अन्त तक यों ही चलते रहेंगे ? एकाध बार दादा के मुँह से दर्शन का नाम जरूर सुना था, लेकिन तब नहीं लगा कि बहुत घनिष्ठता है। किसी को असमय में जाकर तंग करने का भय उतना नहीं जितना एक और भय था, जो काँटे की तरह कसक रहा था···अब एक और नुमायश, अब एक और परीक्षा···।

आखिर एक पतली गली में एक मटमैले-से मकान के नीचे जाकर दादा ने ताँगा रुकवाया और उसके रुकने से पहले ही कूदकर उतर पड़े। मुँह ऊपर उठाकर पुकारा, "दर्शन ! ओये दर्शन !" खिड़की से किसी ने एक बार झाँका और भीतर चला गया। थोड़ी देर शांति रही, फिर रजाई या कम्बल-लिपटा एक सिर बाहर निकला, गौर से देखकर नीचे के लोगों को पहचानने की कोशिश करता रहा। हलकी अनखाई-सी आवाज आई, "कौन सा'व ?" दादा ने उल्लास से कहा, "अबे साहब के बच्चे, नीचे तो आ···!" कुछ देर फिर चुप्पी रही, फिर अनिश्चित-सी आवाज में ऊपर से पूछा गया, 'कौन ? रम्मी तो नहीं···?" दादा ने नकली गुस्सा दिखाया "अब नीचे भी आयेगा या वहीं से सारी जनमपत्री पूछेगा ?" ऊपर का स्वर पुलक से खिल उठा, "ओहो, ठहर हरम्मी !" और आवाज के इस उल्लास पर निन्नी ने एक सन्तोष की साँस ली; चलो हमारा आना किसी ने बोझ की तरह तो नहीं लिया। ऊपर किसी ने पुकारकर कहा, "चन्दू अबे ओ चन्दू ! जरा नीचे से सामान तो ला उठाके···।" लेकिन सीढ़ियों पर धम-धम के साथ उतरते कदमों की आवाज़ जैसे-जैसे नीचे आने लगी, निन्नी का दिल धसकने लगा। फव्वारे की धार पर उछलती गेंद की तरह हर धड़कन पर तिलचट्टा उछल रहा था···। एक बार फिर उसी अपमान का सामाना करना होगा···। एक बार नये सिरे से अपने को नये आदमी की आँखों में 'कुरूप' देखना होगा···। एक बार फिर तराजू पर बाटों की जगह वही दया रखी जाएगी···। मैं यहाँ आई ही क्यों ? निन्नी अनजाने ही ताँगे की आड़ में एक ओर सरक गई। एक हाथ से दूसरे की कुहनी साधे

धीरे-धीरे निचले होंठ को नोचती रही। मन होता था, अँधेरे में चुपचाप कहीं खिसक जाए।

अचानक सचेत होकर देखा, कम्बल लपेटे ही वह 'दर्शन' साहब नीचे आ गये थे और डैनों की तरह कम्बल फैलाकर दादा के गले से झूल गए थे। शायद बहुत दिनों बाद मिले हैं। दर्शन ने जरा-सा पीछे हटकर प्यार से दादा के पेट में घूंसा मारा, "हरम्मी, इतने दिनों न पता, न पत्र। मैं बार-बार सोचता था कि अपना रम्म, सॉरी हरम्मी, आखिर खो कहाँ गया ?" निन्नी ने अनुमान लगाया कि यह दादा को चिढ़ाने का नाम रहा होगा। जाने कैसे ताँगे की छाया से भी हटकर वह गली के मकान के नीचे चली गई थी।

ताँगे वाला चला गया था और निन्नी फालतू की तरह मकान की छाया में अलग खड़ी चेस्टर की दोनों जेबों में हाथ डाल उमड़ते आँसू रोक रही थी। मित्रों के इस मिलन से या इस आशंका से कि अभी दादा उसका परिचय करायेंगे और उसे फिर आत्मघाती ग्लानि को भोगना पड़ेगा, वह रुआँसी हो आई थी। धुंधली आँखों से एक बार उसने दर्शन को भी देखने की कोशिश की—लेकिन एक तो वह कम्बल में लिपटा था, दूसरे वह दादा से उलझा था। उसे भी तो निन्नी की सिर्फ रूप-रेखा ही दीख रही होगी··· लेकिन जब ऊपर रोशनी में चेहरा देखेगा, तो कितनी निराशा होगी !··· कहेगा, यही है रम्मी की बहन ? ऐसा उसके साथ अनेक बार हुआ है—अकसर होता है। सिनेमा में बैठे-बैठे मार्क किया कि कोई उसे बार-बार देख रहा है, कई बार दूर से नजर को समेटकर लाता है और उसकी ओर मोड़ देता है, लोग सामने परदे का खेल देखने में व्यस्त हैं और पड़ोसी आँख गड़ाए उसके सिलुएट को तौल रहा है···। तब भीतर गुदगुदी नहीं, एक अथाह निराशा भर जाती है—अभी अन्धेरा है, इसलिए इतनी दिलचस्पी दिखा रहा है, अभी इन्टरवल होगा तो बेचारे को कितना धक्का लगेगा ! अपनी दिलचस्पी पर उसे कितनी जुगुप्सा होगी ! वह उद्वेग से होंठ काटने लगती। मन होता, काश मुसलमान होती तो ऐसे समय झट बुरका डाल

लेती। और अभी भी यही मन हो रहा था कि काश, बुरका होता तो इस आसन्न-संकट से कैसी आसानी से मुक्ति मिल जाती ! इस खयाल से आँसू और भी वेग से उमड़ आए कि दर्शन कलाकार आदमी है, कितना धक्का लगेगा बेचारे को इस असुन्दर काली-कलूटी लडकी को देखकर...!

"सुनो, यह मेरी छोटी बहन है···फिफ्थ इयर में फिलॉसफी लेकर पढ़ती है। बड़ी होशियार है, लेकिन जरा-सी जिद्दी है। बहुत समझाया कि दिल्ली में बेहद भीड़ है, लेकिन मानी ही नहीं। बोली, नुमायश क्या रोज-रोज होती है ! सच पूछो तो इसीकी वजह से इतनी रात को यहाँ का खयाल···अरे निन्नी, तू वहाँ कहाँ जाकर खड़ी हो गई...?" दादा ने नाम लिया, तो निन्नी का ध्यान टूटा। वह जरा-सा हिली, लेकिन अधिक से अधिक अपने को अँधेरे में रखे ही वहीं से हाथ जोड़ दिये। जवाब में जब दर्शन ने हाथ जोड़े, तो एक बार फिर मन में आया, हाय इस बेचारे को क्या मालूम कि किसे हाथ जोड़ रहे हैं ! ऊपर रोशनी में देखेंगे, तो कितना धक्का लगेगा···! राम, लोग पहले कैसे जब चाहते थे तब अन्तर्धान हो जाया करते थे ! तिलचट्टा फिर उछलने लगा था !

चन्दू इन लोगों का सामान ऊपर ले जा चुका था।

"चलिए, ऊपर चलिए।" दर्शन के साथ-साथ दादा ने कहा, "अब क्या यहीं खड़े रहना है ? चल न···! "निन्नी को बड़ी झुंझलाहट आई, ये दादा भी परिस्थिति की नाजुकता तो समझते नहीं, बस अपनी-अपनी लगाए रहते हैं ! लेकिन चलना तो है ही। फाँसी के तख्ते तक ले जाने वाली सीढ़ियों पर लोग कैसे चढ़ते होंगे, उस समय उनके मन में क्या भाव रहता होगा, यह तो निन्नी को नहीं पता, लेकिन उसे कम से कम यही लगा। सामने खड़ी मृत्यु की ओर शहीदों की दृढ़ता से बढ़ते हुए, यानी डगमगाते कदमों पर जैसे-तैसे काबू किये जब निन्नी एक-एक सीढ़ी चढ़ रही थी, तो यह अहसास उसे बुरी तरह बेचैन कर देता था कि दो अपरिचित निगाहें मुझे और मेरे टखनों और एड़ियों को ढंकते-खुलते देख रही हैं। लेकिन अधेरी सीढ़ियों को पार करते-करते एक हठ निन्नी ने अपने

अन्दर महसूस किया : आखिर कब तक छिपा रहेगा ? और क्या दर्शन ने अभी तक जाना नहीं होगा ? आर्टिस्ट की निगाहों को कब तक धोखा दिया जा सकेगा···? रोशनी में आई, तो वह अपनी सारी घबराहट पर अधिकार पा चुकी थी। सच पूछो तो वह अब तक इसी सबमें उलझी थी और यह देख ही नहीं पाई थी कि कहाँ क्या रखा है।

"फिलहाल तो यही कमरा है अपने पास। लेकिन पार्टनर, इससे गलतफहमी में मत पड़ना। जब स्टूडियो बनाऊँगा, तो ऐसा मेरा क्लोक-रूम होगा," दर्शन ने कहा तो निन्नी का ध्यान अपने से हटकर कमरे की ओर गया। एक चारपाई पर उलटी-सीधी रजाई इस तरह पड़ी थी जैसे अभी-अभी यहाँ से कोई उठकर गया हो ··। उस ओर चौड़े तख्तों पर पीतल के सिरों वाली आलपीनों से जड़े कुछ सफेद-मटमैले कागज पड़े थे, कुछ कागज यों ही गोल हो रहे थे · एक ओर सन्दूक पर बहुत सारे फ्रेम उलटे रखे थे। सामने दीवार पर भी दो बड़ी-सी खूंटियों के ऊपर सफेद कागज-जड़ा चौकोर तख्ता टिका था। कागज पर पेन्सिल से किसी स्केच की लाइनों के ऊपर रंग हो रहा था। अलगनी पर एक ओर कपड़ों के ढेर टँगे थे। कुरसी पर सुराही और गिलास। चन्दू ने सामान मेज़ के पास लाकर रख दिया था।

"बनायेंगे सिनेमा के पोस्टर और बातें करेंगे स्टूडियो की···अरे, तुम आर्टिस्ट लोग इतने सपने न देखो, तो क्या बिगड़ जाए ?" दादा कह रहे थे।

"यार, जो है सो है, लेकिन कम से कम निन्नी जी के सामने तो हमारी पोल यों मत खोल !" दर्शन बोला, तो दोनों फिर खिलखिलाकर हँस पड़े। दर्शन ने फिर कहा, "अरे, अरे, आप बैठिए न, खड़ी क्यों हैं ?"

जैसे कपड़ों में छूत लग जाएगी, इस तरह सकुचाती हुई निन्नी बैठ तो गई, लेकिन उसका रोम-रोम दर्शन के चेहरे पर अपने को देखकर लगने वाले शॉक को पकड़ने को उदग्र हो आया। जैसे इम्तहानों के रिज़ल्ट का अखबार देख रही हो। हाँ-हाँ, इस बार जब दर्शन ने निन्नी की ओर

देखा, तो वह शॉक वहाँ था : उससे गलती नहीं हो सकती, यह विस्मित निराशा का ही झटका था। और इस झटके को वह बहुत अच्छी तरह जानती है। उससे भी अच्छी तरह जानती हैं, चेहरे पर झटका खाकर उतर आये भावों को, जिनमें कभी घृणा होती है, कभी दया। मन मे खुद गया है, किसी ने कहा था, "कहाँ दादा और कहाँ वह !" उसे सचमुच कितनी निराशा होती, अगर वह दर्शन के चेहरे पर यह शॉक नहीं देखती। अब अपनी आशंका या प्रत्याशा-पूर्ति का सन्तोष और एक अजब-सी तल्ख दया, दोनों की अनुभूति एक साथ हुई : 'बेचारे तुम ;' और निन्नी बहुत ऊँचे से मुस्कराई।

लेकिन दर्शन तुरन्त ही संभल गया या अभ्यस्त हो गया। फिर दोनों अपनी-अपनी बातों में लग गये। एक बार मुड़कर पूछा, ,'खाना तो नहीं खाया न ?'

"जी नहीं, भूख भी नही है।" दादा ने बताया, "वहाँ उस छोटे-से स्टेशन पर साली गाड़ी को तीन घंटे डाले रखा, तो बैठे-बैठे क्या करते ? जो भी चने-मूंगफली वाला जाता था, उसे बुला लेते।"

दर्शन ने झिड़क दिया, "अबे, कोई उस सबसे पेट भरता है ? और इन्हें तो भूख होगी ही थोड़ी-बहुत। क्या नाम बताया जी ?" निन्नी सिर झुकाए पाटी पर बैठी थी। "नाम तो विधु है, लेकिन सब लोग निन्नी ही कहते हैं !" जल्दी से दर्शन ने कहा, "हाँ, तो निन्नी जी, बात यह है कि खाना मैंने भी अभी तक नहीं खाया है। यों ही एक स्केच में उलझा था। अभी खाता हूँ, अभी खाता हूँ, करते-करते टालता गया। खैर, इस चंदू से अभी कुछ मीठा मँगाए लेते है। थोड़ा-थोड़ा खा लेगे।"

फिर दर्शन घूमता हुआ बाहर निकल गया—यह दरवाजा कुछ-कुछ बरामदे जैसा था, शायद बाहर खुली छत थी। सामने एक और दरवाजा सा दिखाई देता था। वहाँ से किसी के साथ बातें करने की भनभनाहट आती रही। दादा बहुत खुश और सन्तुष्ट नजर आ रहे थे। बोले,"बैठी क्यों है ? अब उठकर कपड़े-अपड़े बदल। इससे पूछ लेते हैं, यहाँ पास-पड़ोस

का कोई नुमायश में जा रहा होगा, तो साथ कर देंगे।"

"लो पार्टनर, बात यों है कि—"दर्शन बाहर से ही बोलता आया, "अपना स्टूडियो जब बनेगा, तब बनेगा, लेकिन इस एज़ में आर्टिस्ट का भाग्य यही है। गोगां, सेजां बेचारे हो गए पहले ही, अगर आज होते, तो वो लोग भी बधावा पब्लिसिटी प्रा० लिमिटेड के लिए बैठे-बैठे पटाखा-साबुन के इश्तहार बनाते। तुम्हारी तरह हम भी पढ़ाई पूरी कर लेते तो शायद ज़िन्दगी सुधर जाती। तब तो शांति-निकेतन से कलकत्ता और कलकत्ता से बम्बई, कहाँ-कहाँ की खाक नहीं छानी, लेकिन लिखा तो भाग्य में बधावा पब्लिसिटी प्रा० लिमिटेड का नमक था! यों मन होता है, तो अपनी खुशी के लिए भी उलटा-सीधा खींच-खांच लेते हैं, लेकिन दोस्त, उसका फ्यूचर क्या? कभी-कभी तो बड़ी कोफ्त होती है···मगर खैर,अब तुम यू० पी० एस० सी० के लिए आये हो, तो कहीं न कहीं बड़े अफसर बन ही जाओगे। हमे भी गर्व करने को एक विषय हो जायेगा कि अपना यार रम्मी बड़ा अफसर है। लेकिन कहीं तुम उस साले सुकुल की तरह हरामखोर मत निकल जाना···अरे वही, जो अपने ऊपर वाले विंग में रहता था न? पता लगा साला डायरेक्टर होकर आया है, सो गये एक दिन मिलने···।'

दादा निन्नी की जगह जा बैठे थे और वह कपड़े निकाल रही थी। अपनी बात बीच में छोड़कर दर्शन ने कहा, "ठंड में बस ज़रा-सा मुंह-हाथ धो लीजिए। उसे भेज तो दिया है मिठाई लेने, लेकिन आता कब है, यह बताना बड़ा मुश्किल है। बात यह है कि नौकर अपना नहीं है, साझे का है।" उसने कुरसी पर लदे कपड़े का ढेर जमीन पर रख दिया और कम्बल लपेटे ही उसपर जम गया, दोनों टाँगें ऊपर चढ़ा लीं। दादा से बोला, "वो कागज़ वगैरा सब नीचे जमीन पर रख दे और टाँगें रजाई के भीतर कर ले।" निन्नी के हाथ में कुछ कपड़े और तौलिया देखकर बोला, "वो एकदम सामने जो दरवाजा है न, बस उसके पास ही बाथरूम है—सीधी चली जाइए···। अरे रे, ये नंगे पांव तो पंजे गलेंगे न···चप्पलें·· अच्छा, इन्हें

ही पहन जाइए।" फिर कम्वल से टांगें निकालकर उसने कुरसी के नीचे रखी चप्पलें निन्नी की ओर सरका दी। दादा पर नये सिरे से गुस्सा आ गया निन्नी को—कितना कहा था कि चप्पल दिला ले चलो। तव तो कह दिया दिल्ली से दिला देंगे। अपने वटन लगवाने होंगे, कपड़े धुलवाने होंगे तो किस तरह सिर पर सवार होकर करा लेंगे और हमने ज़रा-सा काम कहा, तो दिल्ली से दिला देंगे। कल सवसे पहले चप्पलें खरीदूंगी।

"पहन जा न···" दादा ने कहा, तो पहले निन्नी ठिठकी लेकिन फिर बड़े झेंपते-झिझकते ढंग से आकर दर्शन की चप्पलें पाँवों में डाली और जल्दी से वाहर निकल आई। मोजे-ठुँसे दादा के जूते पास ही पड़े थे।

उस क्षण एक वड़ी घिसी-पिटी-सी वात निन्नी को महसूस हुई। उसे सचमुच लगा कि दर्शन के तलुओं की गरमाई उसके तलुओं को छू रही है और यह छुअन रोमांच की लहर की तरह उसके रोम-रोम में तैरती चली गई है। चप्पलें लेने एकदम पास आना पड़ा था और तव निन्नी ने दर्शन को ठीक से देखा : गेहुँआ रंग, इकहरा शरीर, लम्वा-सा चेहरा और एक ओर झोंक लेकर समेटे हुए वालों का झुड, आँखों के चारों तरफ कालिमा के हलके दायरे···दादा के आसपास की उम्र। मन में कहीं हलके सन्तोष और अवसाद की भावना साथ आई।

"दाहिनी···नहीं, वायीं ओर दीवार में स्विच है।" पीछे से दर्शन की आवाज निन्नी ने सुनी। गुसलखाने में नल के नीचे आधी-भरी वाल्टी रखी थी और एक सफेद कपड़े की पट्टी नल के मुँह से वाल्टी तक झूल रही थी ताकि ठडे पानी की धार पाँव न भिगोये। वन्द खिड़की के पत्थर पर एक वीच से चटखा गोल शीशा, हजामत का विखरा सामान, दो-एक सावुन, पेस्ट, व्रश, व्लेड और भी जाने क्या-क्या···। दरवाज़ा वन्द करते ही जाने किस प्रेरणा से निन्नी ने सवसे पहले शीशा उठाया और इस तरह देखने लगी, जैसे पहली वार अपने को देख रही हो—दर्शन को कैसी लगी होगी। उसे लगा, अचेतन में जाने कव से शीशा देखने की इच्छा मचल रही थी। रुपहले काँच पर वही काली-कलूटी

शक्ल थी वही चमकते दाँत और आँखों की सफ़ेदी थी, वही ज़रूरत से ज्यादा लाल मसूड़े और साँवले-होंठ थे। सिर के ऊपर बल्ब चमक रहा था और टूटे शीशे से आधी शक्ल ऊपर और आधी नीचे हो गई थी··· और मन में वही घिनौना तिलचट्टा मूँछें हिला-हिलाकर आँखें चमका रहा था··नहीं, नहीं···तनुओं में उस गर्मी को महसूस करने का कोई हक निन्नी को नहीं है···। उसने खूब कस-कसकर तौलिये से मुंह पोंछा··· वह क्यों आ गई यहाँ ?

जब बाहर निकली तो चन्दू लौट आया था और जमीन पर ही अखबार इत्यादि बिछाकर उन लोगों ने खाने की प्लेट-तश्तरियाँ लगा ली थीं। शायद निन्नी की ही राह देखी जा रही थी। उसे बड़ा संकोच हुआ कि क्या सोचेंगे, गुसलखाने में गई तो वहीं की हो रही। ख़ैर, खाना सभी ने साथ-साथ खाया और बड़े हठ-इसरार के बाद सोने की यही व्यवस्था माननी पड़ी कि निन्नी चारपाई पर सोये और वे दोनों नीचे धरती पर एक ही बिस्तर पर सोयें। निन्नी ने जब यह हठ किया कि वह भी नीचे सोयेगी तो दर्शन ने हँसकर कहा, "देखिए, यह तो होगा नहीं कि मेहमान नीचे सोयें और मैं ऊपर। तो लाइए चारपाई पर दो-एक सन्दूकों को ही सुला दूँ···।" वह झेंप गई—दूसरे विकल्प को दर्शन कैसी सफाई से उड़ा गया था···ख़ैर, यों ही सोना पड़ा। बिस्तर निन्नी ने अपना ही बिछाया। चन्दू साहब फिर गायब हो गए थे।

जिसका निन्नी को डर था, वही हुआ—वह जानती थी कि जैसे ही अँधेरा होगा, तिलचट्टा अपनी आड़ से बाहर निकल आयेगा और उसकी आँखें उसे रात-भर डराती रहेंगी। अँधेरे में वह लेटे हुए दर्शन और दादा की बातें सुनने में मन लगाये रही। दर्शन बता रहा था, "इस मकान में दो कमरे हैं। बीच में चौक या बरामदा, जो भी समझो, सो यह सामने वाला है। मकान असल में एक रिटायर्ड कैशियर का है। वह एक बात में तीन बार यह ज़रूर कह देता है कि मैं सत्तर साल का हो गया हूँ, एक पैसा इधर का उधर नहीं हुआ। जब से होश संभाला है

तभी से हिसाब रखने की आदत है। बीबी नहीं है, बहुएं है लेकिन सबसे लड़-भिड़कर यहाँ अकेला पड़ा रहता है। बाकी लोग कही चाँदनी चौक में हैं। न उनके यहाँ जाता है न किसीको अपने यहाँ झाँकने देता है। शायद फाउंटेनपेनों के पार्टस् बनते हैं। तो ये चन्दू बाबू इसी पंजाबी रिटायर्ड बुड्ढे कैशियर-साहब की सेवा में रहते हैं" मुझसे जगह, नौकर, बिजली-पानी सबके सत्तर रुपये लेता है। तुम जानो, शरणार्थियों के आने के बाद से अंधाधुन्ध किराये बढ़ गये है। इस बुड्ढे शर्मा ने यह मकान बहुत ही सस्ता खरीद लिया था। तो पार्टनर, ये हमारे चन्दू साहब है। खाने-पीने का भी हमारा-इनका साथ है। उलटा-सीधा जो कुछ बना देता है, सो खाना पड़ता है। और सच बात तो यह है, रम्मी, कि अब वर्षों से उलटा-सीधा खाते-खाते मुँह का जायका ही नही रह गया है। घास लाकर भी रख दो तो उससे पेट जरूर भर लेंगे···।"

निन्नी नाक तक कम्बल लपेटे पड़ी-पड़ी चुपचाप सुनती रही। इस तरह साँस रोके सुन रही थी, मानो छिपकर किसीकी निहायत ही व्यक्तिगत बातें सुन रही हो···। कभी-कभी उसे लगता, ये सारी बातें पास लेटे दादा से नहीं, स्वयं उसीसे कही जा रही हैं।

"और तू भी तो बता यार, कुछ अपनी बात। तब से मैं ही बकर-बकर लगाए हूँ···। अपना कुछ नही है पार्टनर, लगता है, वो आदर्श, वो सपने, वो महत्वाकांक्षाएं सब निहायत ही गलत थे और अब लगता है जिन्दगी बनाने के सबसे अच्छे दिन गलत और झूठी चीजों के पीछे भागने में खो दिये···।" दर्शन बोले जा रहा था।

दादा ने जोर से करवट बदली, "कुछ नहीं यार, हमने ही कौन-से तीर मार लिये ? लेकिन अब बाकी बातें सुबह करेंगे। नींद आ रही है जोरों की।" फिर जरा-सा सिर उठाकर निन्नी की ओर देखा और मुड़कर धीरे से पूछा, "आसपास कोई चीज भी है, या यों ही रेगिस्तान की जिन्दगी बिता रहा है ? मुझे तुझपर विश्वास नहीं है कि तू कलाकार होकर किसी सूनी···।"

देखें क्या जवाब देते हैं···निन्नी ने साँस रोक ली।

"यार, बहाव इतना तेज है कि यह सब करने को फुरसत ही नहीं है···। रेस के घोड़े की तरह हर आदमी भागकर एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है, लेकिन मजा यह है कि ऐसा कोई लक्ष्य भी तो नहीं है, जिसपर सबसे पहले पहुँचने की होड़ हो या जहाँ पहुँचकर लाखों का वारा-न्यारा होता हो।" फिर गहरी साँस लेकर कहा, "अपना तो यही साला बुड्ढा कैशियर है··साला दिन-भर हाथ में हुक्का लिए इस तरह धुआँ खींचता है, जैसे जमीन से पानी सूतकर निकाल रहा हो। पहले दिन-भर आकर मेरा सिर खाता था, काम नहीं करने देता था···। वही अपने रिटायर्ड जीवन की ऊब और नौकरी के दिनों के लाखों बार सुने किस्से···वही आजकल के लड़कों को कोसना। एकाध बार मैंने कोई सख्त बात कह दी, बस, तब से बोलचाल बन्द है। अब गली में चारपाई डालकर सारे दिन या तो गन्ने चूसेगा या हुक्का पियेगा। गली-भर में मक्खियाँ भिनकती रहेंगी, गायें गंडेरियों-गन्नों को खाती, गन्दगी करती रहेंगी और यह उर्दू में छपी गीता हाथ में लेकर आसपास की बहू-बेटियों की नाक में दम किये रहेगा—सिर पर पल्ला लो, हँसो मत यह क्या पढ़ रही हो? ही इज ए परफैक्ट न्यूसेंस। साले के दाँत अभी तक पत्थर जैसे रखे है, सो उन्हींकी नुमायश करता रहता है। कभी चने खायेगा, कभी रेवड़ियाँ। अपने पंजाब से भागने के लाखों किस्से, कि मुसलमानों ने उनपर क्या-क्या जुल्म किये···।"

दादा के खर्राटों से दर्शन की वाग्धारा अचानक बन्द हो गई, "हय स्साला, सो भी गया···? हम गधे हैं सो बके जा रहे हैं!" निन्नी का मन हुआ कि कहे, आप कहिये, मैं सब सुन रही हूँ। यों, उस समय भी निन्नी को लगा था और आज भी लगता है कि बोलने को दर्शन शुद्ध बकवास ही कर रहा था। या तो बहुत बोलने की आदत थी, या अपने दोस्त को 'एट होम' महसूस करा रहा था। लेकिन निन्नी को लगा जैसे वह निहायत ही गूढ़ और रहस्यमय आत्मीयता की अन्तरंग बातें बताये

जा रहा हो। कमरे के घुप् अंधेरे में ऊपर के रोशनदान का धुंधला-सा चौखटा और भीतर दादा का बेमालूम-सा खर्राटा···दोनों में से देख कोई किसी को नहीं सकता था, लेकिन निन्नी को लग रहा था कि इन सारे शब्दों के पार वह अपनी निगूढ़ व्यथा उससे कहे दे रहा है···अंधेरा एक झीनी मलमल का टुकड़ा है और उसका एक सिरा वह पकड़े है, दूसरा दर्शन, और कभी-कभी दोनों महसूस करते है कि इस चादर का खिंचाव दूसरी ओर ज्यादा बढ़ गया है। लेकिन दोनों समान रूप से सचेत हैं कि कोई एक चीज है, जिसे दोनों पकड़े हैं और यही अनुभूति उन्हें हमसफ़र की निकटता दिये हुए है।

निन्नी के उनींदे मन में एक सवाल उभरा : प्रथम दृष्टि में प्यार की बकवास के प्रति अनजाने विश्वास का ही तो यह परिणाम नहीं है कि ये सब दिमागी फितूर उसे तंग कर रहे है ? लेकिन टटोलकर पाया कि नहीं, ऐसी कोई बात नही है। सच पूछो तो मैंने तो अभी तक उनसे निगाह मिलाई ही नहीं है, उसने अपने-आपको समझाया। लेकिन दर्शन के बोलने में, उनके हँसने में, कहीं व्यवहार में एक ऐसा खुलापन जरूर उसे लगता था, जो कहीं अपनत्व की अनुभूति जगाता था। वह बात कर रहा होता, तो मन होता कि निन्नी उसके चेहरे को देखे, उसकी मुद्रा, आँखों और होंठों की चंचल बनावट को देखे और मार्क करे कि कोई विशेष बात कहते हुए उसके होंठ कैसे बने थे···और वह खाते-खाते अनजाने ही उसके चेहरे को देखने लगती। उसे बच्चों की तरह आश्चर्य होता कि बातों के साथ उसके चेहरे का भाव कैसे बदलता हैं। क्या वे भीतर से चाहते है कि इस समय चेहरा ऐसा हो जाय, या यह सब अपने-आप ही होता चलता है ? और जब अपने चेहरे पर किसी की निगाहें महसूस करके दर्शन जरा-सा बेचैन होकर उसकी ओर मुँह घुमाता तो वह झट चौंककर सिर झुका लेती और खाने में डूब जाने का अभिनय करती। प्रथम दृष्टि में प्रेम जैसा तो कुछ नही; हाँ, उसके लिए सबसे नया अनुभव तो यही अवश-भाव से चेहरे को देखना, या देखते रहने की दुर्दमनीय इच्छा को महसूस करना

था···और इसी अनुभव का नयापन था, जो उसे छाये हुए था। शायद इससे पहले उसने सिर्फ निगाहें जानी थीं। उसे देखकर चौंकती, घक्का, निराशा, दया या घृणा की अभिव्यक्ति करती हुई निगाहों से ही उसका परिचय था और इन निगाहो को ही देखने का उसे ऐसा अभ्यास हो गया था कि उनमें भरे अपमान से वह तिलमिला भी उठती थी, डरती भी थी लेकिन देखती भी उन्हें ही थी। कभी-कभी तो वह न उन निगाहों वाले-चेहरे को देखती, न उस मुख से आते स्वर को सुनती, बस जाने-अनजाने अपनी स्थिति की सार्थकता-निरर्थकता को दर्शन की आँखों में ही तोलती। यहाँ पहली बार इन आँखों में उनने देखा कि ये अपने-आप में ही, अपने सपनों में ही या जाने कहाँ इस तरह डूबी हैं कि इन्हें बाहर के प्रति दया-अपमान या जुगुप्सा दिखाने का अवकाश ही नही है। बार-बार उसने उत्सुकता से जानना चाहा, मगर उनमें गिन्नी को देखकर पैदा होने वाली कोई प्रतिक्रिया नही थी। तो क्या पहली बार 'जो धक्का' उसने दर्शन के चेहरे पर देखा था, वह भी भ्रम ही था ? वे या तो उसे देखती ही नही थी या उसके पार देखती थी, और तब उसका ध्यान दर्शन की निगाहों से हटकर आसपास चेहरे पर गया था। अब सोते-सोते, मानो सपने में, उस देखे हुए चेहरे को आँखों के सामने साकार करने का प्रयत्न करने लगीं।

दर्शन का स्वर अचानक इस तरह चुप हो गया था मानो किसी ने बजते रेकॉर्ड से सुई हटा ली हो। सारी रात उसे ऐसा लगता रहा जैसे सुई हटाने वाला हाथ अभी-अभी उसी धारी पर सुई रख देगा और दर्शन फिर वहीं से, ठीक उसी अन्दाज में बोलना शुरू कर देगा। उस तनाव-भरी स्थिति में उसे गुसलखाने मे अपना चेहरा देखना याद आया, चेहरा याद आया और फिर इधर-उधर से आँसू ढुलक पड़े···पता नही, भगवान ने उसके साथ कौन-सा बदला लिया है।

सबसे ज्यादा डर उसे सुबह का था, जब दर्शन उसे दिन की खुली रोशनी मे देखेगा। हो सकता है रात में उसकी 'कुरूपता' का सही-सही अन्दाज न लगा पाया हो। वह असम्भव-सी कल्पना करने लगी कि अभी

उठे, चटखनी खोले और स्टेशन पहुँच जाये। कोई न कोई गाड़ी तो मिल ही जायेगी। जाने उसके क्या करम फूटे थे कि दादा से जिद करने लगी थी, "मैं भी जाऊँगी। नहीं, इस बार मैं जरूर जाऊँगी दिल्ली। आप हर बार टाल जाते है।" दादा ने तर्क रखा था, "देख, मैं सारे दिन बाहर भटकूँगा, पता नहीं किसके साथ कहाँ ठहर जाऊँ। तू उन लोगों में घुल-मिल पायेगी भी या नहीं। सारे दिन तू या तो मेरे साथ चलने का हठ करेगी, या वहाँ बैठी-बैठी अनजान लोगों में बोर होगी।" लेकिन वह जिद पर अड़ी ही रही, "नहीं, मैं तुम्हारे साथ नहीं लगूँगी, जितना घूमना-फिरना होगा खुद ही घूम-फिर लूँगी। आखिर बी. ए. पास किया है, क्या जिन्दगी-भर बच्चा ही बने रहना है? बाहर नहीं निकलूँगी तो आत्म-विश्वास कैसे आयेगा? और मुझे तो अपने पैरों पर खुद ही खड़े होना है···:" अपने लहजे से इस बार गिन्नी ने जिस ओर संकेत किया था, वही दादा का वीक-पॉइन्ट है : उसकी शादी में पिछले दिनों जो-जो दिक्कतें घर वालों ने देखी थीं, और घर में उसकी जो स्थिति थी, उससे धीरे-धीरे सबके मन में और स्वयं निन्नी के मन में ही यह बात जम गई थीं कि गृहस्थी का सुख उसके लिए नहीं हैं। उसे सिर्फ़ पढ़ाई की लाइन में जाना है। लेकिन वह जब भी कोई ऐसी बात कह देती तो दादा को बेहद दुःख होता, उन्हें लगता कि बड़े भाई की जिम्मेदारियों को निभाने की असमर्थता ही है, जो उसे उसका प्राप्य नहीं मिल रहा। इस बात पर आहत-भाव से ये उसे देखते रहे थे। फिर बोले, "अच्छा, तैयार हो जा : लेकिन, फिर बताये देता हूँ, अकेले ही घूमना होगा···।"

और दिल्ली निन्नी को आना ही था। सच पूछो तो दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता के बारे में उसके मन में बड़े अजब-अजब से खयालात थे, बड़े अजब-से सपने थे। और सबके ऊपर था यह तीव्र बोध कि उसका रंग काला है, वह सुन्दर नहीं है, उसके होंठ सांवले है और मसूड़े जरूरत से ज्यादा लाल है और सारे चेहरे पर दांतों और आंखों के कोयों की सफ़ेदी बड़ी डरावनी लगती है। यह बोध रात-दिन उसके ऊपर सवार रहता और

घिनौने तिलचट्टे की तरह अपनी उपस्थिति से उसकी नींद हराम किये रहता। यह बताना मुश्किल है कि इस बोध को बनाने में दूसरों का हाथ कितना है और अपनी हीनतानुभूति कितनी, फिर भी इतना वह जरूर जानती है कि जब भी पहले-पहल यह बात उसके मन में आई होगी, उसे लाने का श्रेय दूसरो को ही रहा होगा। वह तो यहाँ तक कहती है कि शुरू-शुरू में तो अक्सर वह भूल भी जाया करती थी, लेकिन जब-जब दूसरों की आँखें, उसको निगाहें देखती, उनकी बातें, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत समझती तो यह बात झटके-से उसकी सारी चेतना पर छा जाती। उन दया और हिकारत की निगाहों को, घर से स्कूल जाते और अब कालेज जाते-आते हुए अपने छोटे-से शहर में उसे हर समय सहना पड़ता था। छोटे-शहरों में सब एक-दूसरे को जानते हैं और शायद सबसे कठिन होता है परिचितों की दया और हिकारत सह पाना। उसे मालूम था कि गली के मोड़ का इस्माइल दर्जी उसके गुजरते ही गहरी साँस लेकर कहता है, "खुदा की कैसी कुदरत है! वकील साहब के सारे बच्चों का रंग-रूप भी साफ है और नाक-नक्शे भी दुरुस्त है, यही बेचारी जाने कैसे सबसे अलग जा पड़ी है।" आगे पन्ना परचूनिया कहता, "जाने कैसे बेचारी की शादी होगी?" वह कहता चाहे न कहता, निन्नी को लगता जैसे वह कह रहा हो। कालेज में तो अक्सर ही सुनना पड़ता, "सत्यानाश हो इस कल्लोपरी का, सारा सगुन ही बिगाड़ दिया साली ने···आरती निगम का कैसा अच्छा प्रोफ़ाइल था, आप सामने आ मरी। अरे महारानी, जरा इधर ही सरककर बैठ जातीं···।" और निन्नी अपमान-संकोच से गड़-गड़ जाती। उसकी आँखों से आँसू बहने-बहने को हो आते। सिमटकर इतनी छोटी हो जाना चाहती कि अदृश्य हो जाये। निरीह भाव से एक तरफ सरक जाती कि 'देख लो भाई, आरती निगम का प्रोफ़ाइल। देख लो, सुधा शर्मा की आँखें देख लो···अर्चना सूद का जूड़ा देख लो···मीरचन्दानी की मैचिंग देख लो···।' तभी कहीं से फिर गर्म सीसे की तरह कानों में आकर पड़ता, "आप क्यों नखरे दिखा रही है? आपको कोई नहीं निहार रहा

चन्द्रमुखी !" घर में भाभी (वे लोग, माँ को भाभी ही कहते थे) रात-दिन माथे पर हाथ मारती रहती, "हाय, इसका जाने क्या होगा···? भगवान जाने कैसे इसका बेड़ा पार लगायेगा ? राम जाने क्या-क्या दिन दिखायेगी यह लड़की !"

और निन्नी इस सबसे दूर—बहुत दूर भाग जाना चाहती थी—ऐसी भीड़ में जहाँ कोई परिचित न हो, ऐसे अनजान लोगों के बीच जो चलते-चलते पीछे मुड़कर उसे न देखें। सामने पड़ जाने पर मुँह का स्वाद बिगड़ जाने की विकृति जिनके चेहरों पर न आए। सुबह-सुबह जिन्हें अपना सगुन बिगड़ता न लगे, और उसे देखकर जो उसके विवाह और भविष्य के लिए फिक्र और दया न दिखाएँ। सिर्फ अपरिचित हों और जिन्हें उसके बारे में सोचने की कतई फुरसत न हो। सुन रखा था, बड़े शहरों में आदमी चकर-घिन्नी की तरह घूमता है और उसे किसी की बात सुनने का अवकाश नहीं होता··। एक बार देखे तो सही, आखिर कैसा लगता है वहाँ ? उसे लगा, शायद इसलिए वह दिल्ली भाग आई है। हाँ एक और भी बात तो थी उसके दिल्ली आने के पीछे, वह जानती है। मगर नहीं, अभी नहीं, फिर कभी सोचेगी वह सब तो···।

लेकिन सुबह होने पर जिस बात के लिए वह डर रही थी वह बहुत शुरू से ही उसके मन में थी। रेल मे दादा से उसने कहा था, "क्यों, मुझे अपने साथ ले चलने समय शर्म लगती है क्या ? दिल्ली वाले तुम्हारे दोस्त कहेंगे, कैसे बहन है इसकी ?" दादा के चेहरे पर दर्द उभर आया, "कैसी बात करती है निन्नी, तू ? मैं तो तेरी ही दिक्कतें सोचकर नहीं ला रहा था···।" दादा चुप हो गए और रास्ते-भर निन्नी को अफसोस होता रहा था कि ऐसी बात उसके मन में आई ही क्यों···? और सारी रात नींदी-उनींदी अवस्था में यही सब उसके मन में दुहराया जाता और गुंजता रहा। भाप के बादलों-जैसा एक बेचैनी-भरा डर था, मानो सुबह उसे परीक्षा में बैठना हो। शायद ऐसी परीक्षा से तीसरी या चौथी बार डर रही थी। लोग अनेक बार परीक्षाओं में बैठ चुकने पर उसके अभ्यस्त हो जाते हैं

और उनके मन का डर निकल जाता है। लेकिन अपने-आपको 'पास' कराने की यह परीक्षा ऐसी थी कि हर बार अपमान की आग दुगुने और चौगुने वेग से झुलसाने लगती। अपने को दिखाकर 'लड़की हमें पसन्द नहीं है' की अनेक शब्दों और सकेतों मे दी गई राय ने उसे किस तरह सारी-सारी रात रुलाया है! उसने क्या-क्या असम्भव कल्पनाएं नहीं की! अपने-आपको मार डालने के क्या-क्या तरीके नही सोचे! उसे ऐसा लग रहा था कि एक बार फिर वैसी ही परीक्षा आ गई है। पहली परीक्षाओं की जिम्मेदारी घर वालो पर थी। उन लोगों की खुशी के लिए वह इम्तहानों में बैठती थी कि शायद इस बार तीर निशाने पर लग जाए··· शायद इस बार···। लेकिन यहाँ के इस अप्रत्याशित इम्तहान में तो जबर्दस्ती उसे धकेल दिया गया था—परिस्थितियों ने ला डाला था। सारी रात अचेतन मन पर अपमान की आशंका झूलती रही। कैसे वह उन निगाहों का सामाना कर पायेगी ?

सोते-सोते ही जाने कैसे अपने-आप तय हो गया कि सुबह बहुत जल्दी उठकर वह मुंह-हाथ धो लेगी और चेहरे-मुहरे को ज़रा ढंग का कर लेगी। कहते है, सुन्दरता अपने-आपमें कुछ नही होती, सलीका ही आदमी को सुन्दर बनाता है। रात को देर तक दीवारों के पार कहीं हुक्के की गुड़गुड़ सुनाई देती रही, कभी-कभी दूर सड़क पर कोई मोटर या टैक्सी गुजर जाती थी तो कम्पन की हल्की-सी लहर छूती हुई चली जाती। बीच-बीच में कई बार जागना हुआ, लेकिन सुबह बहुत अंधेरे ही आँखें खुल गईं। देर तक आसपास की दीवारों को देखती रही। पहली बार तो समझ में ही नहीं आया कि वह है कहाँ? फिर कहीं दूर नीचे नल की पटर-पटर, 'हरे रामा, हरे रामा रामा-रामा 'हरे-हरेकी शीतमयी साँसों के साथ कुल्ला करने, गला साफ करने की आवाज आई, दीवार के पार से लगातार हुक्के की गुड़-गुड़ सुनाई दी, कहीं बन्द जगह मुर्गे ने बाँग दी बाहर सड़कें झड़ने-खुरचने की आवाजें और गली के उस ओर से जोर-जोर के खुर्राटे आए तो ध्यान आया कि वह दिल्ली में दर्शन के कमरे में है। कुहनियों के बल ज़रा-सा उठकर देखा, रोशनदान से आती सफ़ेदी में कम्बल लिपटे दो शरीर धुंधले-धुंधले-

से पड़े थे। और गौर से देखने पर लगा, दर्शन ने दूसरी ओर करवट ले रखी थी। उनके पास ही चप्पलें रखी थी···फिर कुरसी पर कपड़ों का ढेर था। निन्नी के तलुओं में रात वाली ऊष्मा फुरहरी लेती चली गई। फिर से इन चप्पलों को पहनकर मुंह-हाथ धोने चली जाए ? जमीन तो सचमुच ठिठुर रही होगी।

दादा उठे, तब तक वह मुंह-हाथ धोकर, बाल उलटे-सीधे संवारकर फिर चारपाई पर आ लेटी थी। जीने में किवाड़ों के नीचे से अखबार सरका दिया गया था, उसे उठा लाई थी और नुमायश के बारे में अधिक से अधिक जान लेने की कोशिश कर रही थी। शायद दर्शन ने धूप के कारण अपना चेहरा पूरी तरह ढंक लिया था। दादा उठे, लम्बी जम्हाई लेकर बोले, "अरे, तू तो उठी बैठी है। बड़ी जल्दी उठ गई···नई जगह नींद नहीं आई न···?

निन्नी ने भरसक स्वर दबाकर कहा, "नहीं तो ! मैं तो खूब सोई।"

दादा ने अंगड़ाई लेकर कहा, 'ये साला अहदी, अभी पड़ा-पड़ा सो ही रहा है। सात बजे से पहले नहीं उठेगा। पुरानी आदत है इसकी।"

दादा के कम्बल को अपने चारों ओर और भी लपेटकर नकियाए स्वर में दर्शन बोला, "सोने दो निशाचरो, क्यों सन्तों की नींद हराम करते हो ?" निन्नी ने जीभ काट ली, ये तो जागे पड़े हैं !

दादा अटैची से ब्रश निकालकर गुसलखाने की ओर चलते हुए कह गये, "उठ गया है तो बिस्तर-बिस्तर लपेट, चाय का सामान देख, जरा कुछ हाथ-पांव हिला, तो गर्मी आएगी। क्या मेहमानों की तरह गुड़िया बनी हुई बैठी है !"

निन्नी चाहती थी कि दादा जरा धीरे बोलें, उन्हें थोड़ी देर सो लेने दें। निन्नी ने चुपचाप बिस्तर लपेटा और रसोई में जाकर चाय का सामान ठीक कर आई। स्टोव जलाकर पानी गर्म करने के बीच दो बार कमरे में आकर देख गई। धूप खूब निकल आई थी, लेकिन दर्शन यों ही पड़ा सो रहा था। चाय के पानी को ही बड़े बरतन में डालकर अच्छी

तरह गर्म किया और गुसलखाने में जाकर नहाने लगी। सचमुच बहुत देर तक सोते हैं ये तो। मन में कहीं जरा-सी सान्त्वना भी मिली कि चलो, उठेंगे तो मुझे नहाया-धोया देखेंगे। एक गहरी साँस भी निकली—फ़र्क क्या पड़ेगा, सूरत तो जैसी है, वैसी ही रहेगी। दादा जाने कैसे पास वाले बुड्ढे के कमरे में पहुँच गये थे और दोनों के बातें करने की आवाज आ रही थी। ध्यान से सुना तो दादा के केवल हूँ-हूँ करने की ही आवाज थी।

नहा-धोकर निकली तो दर्शन उठा बैठा था और बिना तेल के बालों में उंगली चलाता हुआ अखबार पढ़ रहा था···। निन्नी एकदम अचकचा उठी। सोचा था, अभी तक सो रहा होगा तो चुपके से क्रीम-पाउडर लगा लेगी, बाल-बाल संवार लेगी, और अब कहाँ यह वेश था कि बाल बिखरे हैं, हाथ में गीला तौलिया, कपड़े और साबुनदानी है—साक्षात् भूतनी की शक्ल बनी है। सुबह उठते ही सामने आ गई है, कहीं यह न सोचें कि सुबह-सुबह किस चुड़ैल की शक्ल दीख गई! वह एकदम मुड़कर लौट पड़ी, कम से कम हाथ के गीले कपड़े तो बाहर सुखा आती।

लेकिन दर्शन ने निहायत ही स्वाभाविक ढंग से जम्हाई दबाते हुए कहा, "अरे इतने सुबह आप नहा भी आईं? इतनी ठंड में? भई, तबीयत ख़राब हो जाएगी न···। चन्दूराम तो उठे नहीं होंगे···तब क्या ठंडे पानी से ही···? और ये क्या पाँवों में कुछ भी नहीं···ये चप्पलें आखिर किस मर्ज़ की दवा हैं?"

निन्नी ठिठक गई। शर्म से भिनभिनाती हुई नीचे निगाहें गड़ाकर बोली, "जी नहीं, पानी स्टोव पर ही गर्म कर लिया था।" इसपर दर्शन हँस पड़ा, "यानी आपने हमारे चौके-रसोई सबकी तलाशी ले डाली! कपड़े बदलेंगी क्या? मैं बाहर निकला जाता हूँ···।"

दर्शन को उठने की अलस कोशिश करते देखकर वह जल्दी से बोली, 'नहीं, नहीं, आप बैठे रहें। मैं चाय रखकर अभी आती हूँ···" और वह अपने सामान पर झुकी-झुकी व्यर्थ ही कुछ निकालने-रखने लगी। अपना

यों नहाकर आना, दर्शन का यों शरीर तोड़ते जम्हाइयाँ लेते अखबार देखना, अकेले कमरे में रंग-बिरंगे जरों वाली सर्चलाइट-जैसी मुलायम-मुलायम किरणों का ताना-बाना, सभी कुछ बड़े अतीन्द्रिय और हवा में ठहर गये सपने जैसे लगे।

"अरे वो रम्मी कहाँ गया ?" सहसा झटके से दर्शन ने पूछ लिया।

"वो तो शायद पड़ोस में किसीसे बातें कर रहे हैं।" निन्नी ने देखा कि गोले का तेल शीशी में जम गया है। झुके रहने से गीले-गीले बाल दाहिनी ओर नीचे झूल आए थे, या कहो, उसने झूल आने दिए थे। एक तो इससे उसके चेहरे और दर्शन के बीच में एक आड़ हो गई थी, दूसरे वह चाहती थी कि दर्शन उसके केशों की लम्बाई और कालापन देख ले। उसके सारे व्यक्तित्व में केश ही तो ऐसी चीज थी, जिसपर कहीं वह अपने को जरा-सा सन्तोष दे लेती थी। खूब काले, घने, मुलायम और इतने लम्बे कि देखने वाला एक बार आश्चर्य जरूर करता। चेहरे और रंग को देखकर धक्का खाने वाले को एक बार अपने केश खोलकर दिखाने को हमेशा उसका मन छटपटाता रहता। वह प्रतीक्षा कर रही थी कि अभी तक दर्शन की निगाह उनपर पड़ी या नहीं और कनखियों से उस रेशमी चिलमन के पार देख लेना चाहती थी कि तभी सुना, "आप क्या बंगाल में बहुत रही हैं ?" दर्शन पूछ रहा था।

"मैं ?" वह सीधी खड़ी हो गई। जरा-सा सिर घुमाकर पूछा और झूठे ही कनपटी पर फैले बालों को कानों और कन्धों के पीछे सरकाने का बहाना किया। भीतर किसी ने कोंचा—उस जैसी 'कुरूप' लड़की को ये सब 'नखरे' दिखाना नहीं सोहता। लेकिन मन की ऊपरी सतह ने सोचा कि इन्हें बंगाल का ध्यान मेरे 'सांवले' (जानती थी वह सांवला नहीं श्याम है) रंग को देखकर आया, या लम्बे-लम्बे बालों को ?

"यों बाल खुले रखकर घूमने का फैशन बंगाली लड़कियों में बहुत है···फिर आपके बाल सचमुच काफी अच्छे हैं।"

निन्नी का चेहरा तमतमा आया, हथेली पर जमे तेल की शीशी

ठोकता हाथ एकदम रुक गया और समझ में ही न आया कि अब क्या करे— तेल की शीशी को यों ही ठोकती रहे या वहीं से छोड़ दे··· उन शब्दों को ग्रहण करे या उसके लहजे को, क्योंकि बात दर्शन ने जो कही हो, लहजा कुछ ऐसा तटस्थ था, मानो कह रहा हो, 'आज धूप बड़ी सुहावनी है···।' फिर भी मन होता रहा कि गुसलखाने मे जाकर अपने बालों की लम्बाई को नये सिरे से देखे। किसी बंगाली लड़की से बालों को खुले रखने का फैशन उसने अभी तक सीखा क्यों नहीं ?

तभी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए दादा ने प्रवेश किया। आते ही फटी पड़ती हँसी को दबाकर बोले, "अबे स्मारा, साला बुड्ढा है या भूत ! छोड़ता ही नहीं था···!" और वे खुलकर हँस पड़े, हँसते रहे।

"वही तो मैं इनसे कह रहा था कि आज बेटा रम्मी फँस गये।" दर्शन ने माथे के बाल पीछे सरकाकर कहा, "क्यों, क्या-क्या बता डाला ?"

दादा ने पेस्ट लगा ब्रश मुँह में लगा लिया, "क्या-क्या नही बता डाला !" फिर दो बार ब्रश चलाकर मुँह ऊँचा किये-किये बताने लगे, "बैठा-बैठा चारपाई पर हुक्का पी रहा था, मैंने बाथरूम की तलाश में दूसरे दरवाजे में झाँका तो बोला, 'गुसलखाना इधर है, दूसरे दरवाजे में।' फिर बिना साँस लिए पूछ डाला, 'तुम इनके क्या हो बरखुरदार ?' मैंने बता दिया कि हम दोनों दोस्त हैं, और कुछ दिनों साथ-साथ होस्टल में रहे हैं। अब पूछा, 'वो जनानी ?' मुझे बुरा तो बहुत लगा, लेकिन बता दिया कि मेरी बहन है। मुझे यहाँ एक इंटरव्यू में आना था, वो नुमायश देखने आने की जिद में साथ आ गई। बस, नुमायश का नाम सुना तो सन् तीस या जाने कब की एक नुमायश का जिक्र शुरू कर दिया। जाने कैसे बात तुमपर आ गई तो वो धारा-प्रवाह बुराई करनी शुरू की है कि खुदा की पनाह···! न खाने का टाइम है न सोने का··· किसी दिन दो-दो बजे रात को चले आ रहे हैं तो कभी दो-दो दिन कमरे में बन्द हैं। जागे है तो जागते ही चले जा रहे हैं, जैसे बिजली इनके बाप की है, और सो रहे हैं तो सोये पड़े है, मानो मर ही गये हों। मेरे

नौकर को बहकाये हुए हैं। सो साला रात को किवाड़ें खुली रखकर सो जाता है, सिनेमा देखने चला जाता है। बस, इन्हींका काम करता है। बोलो जी, तुम मेरे नौकर हो या इस लफंगे के? चाय, खाना, नाश्ता सब इन्हींको खास है, हम तो जैसे कोई हैं ही नहीं। आप ही बताइए, ये कोई करेक्टर हुआ? हमारी उम्र में पहुंचेंगे तो क्या हाल होगा इनका? टाइम पर सारे काम करो, ठीक वक्त पर उठो, खाओ, क्या मजाल जो बीमारी पास फटक जाए। देख लो, मजे में गन्ने चूसता हूं, जहां मन होता है घूमता हूं। ब्राह्मन आदमी हूं, सुबह गीता पढ़ता हूं। पचास साल से कभी नागा नहीं हुआ। सारी गीता ज़बानी याद है। और फिर जो साले ने गीता पर लेक्चर दिया, मैंने मन में कहा, या खुदा, यह कहां आ मरे? दुनिया का सारा ज्ञान-विज्ञान उसमें भरा है, हमारे पुरखों ने पुष्पक विमान उड़ाये, वो क्या बेवकूफ थे? —सो यार, अगर चन्दू पैसे मांगने न आ जाता तो वो क्या आज मुझे यों छोड़ता? जैसे ही वह आया कि मैं तो सिर पर पांव रखकर भागा। यार, तू कैसे रहता है इस राक्षस के साथ? वैसे तुझसे है बहुत नाराज़…।" दादा ब्रश करने लगे।

दर्शन विनोदी भाव से सुनता रहा, फिर बोला, "असल में नाराज़ मुझसे नहीं, अपने बेटों से है और वही गुस्सा फैलकर सारी पीढ़ी पर आ गया है। मैं तो इस खूसट से बात ही नहीं करता। चन्दू बेचारा खुद परेशान है। घड़ी-घड़ी तो 'बे चन्दुआ, हुक्का भर ला' के नारे लगाता रहता है। बेचारा कहीं कोई काम कर रहा हो, लेकिन आपकी दहाड़ जारी है। सब्र एक सेकंड का नहीं है। चन्दू तो जीभ निकालकर उसे मुंह बिराता रहता है…।"

दादा को अचानक समय का ध्यान हो आया, "खैर, समय क्या हो गया?" फिर घड़ी देखी, साढ़े आठ। "अबे म्मारा, दस बजे कैसे पहुंचेंगे यार? मुझे तो दस बजे यू० पी० एस० सी० के दफ्तर पहुंचना है…ले एक मिनट में कुल्ला करके आता हूं। निन्नी, तू खड़ी-खड़ी क्या सुन रही है, ज़रा चाय-वाय देख दे न। चन्दू को तो वो बुड्ढा आज छोड़ेगा नहीं।"

"अरे इन्हें क्यों तंग कर रहा है? मैं देने देता हूँ।" दर्शन उठने लगा।

"बैठ-बैठ, ये सब इन लड़कियों के नाग हैं। घर पर भी तो यही करती। जाओ निन्नी। थोड़ी देर को यही समझ लो कि हम दोनों तुम्हारे मेहमान हैं।" और मुसकराती निन्नी खुले बालों को पीछे किए रसोई में आ गई। सुना, दादा पूछ रहे थे, "अच्छा बोल, तेरा क्या प्रोग्राम है? मैं तो तीन-साढ़े तीन तक यहाँ आ जाऊँगा, या जहाँ कहे वहाँ पहुँच जाऊँ। तुझे छुट्टी कब मिलती है? और हाँ, एक काम करके जाना, आसपास वाला कोई नुमायश देखने जा रहा हो तो इन निन्नी को भी साथ कर देना। यह जिम्मा तेरा है, वरना फिर मुझे लेकर जाना पड़ेगा।'

"खैर, वो सब हो जाएगा। आज तो मैं भी आ ही सकता हूँ जरा-सी जल्दी। तू भी तीन-साढ़े तीन पर यहीं आ जा, यहाँ से सीधे चलें। लेकिन मेरी राह यहाँ मत देखना। अगर नहीं आया तो पाँचेक बजे कॉफी हाउस में मिल जाऊँगा। एक काम पूरा करके साढ़े दस-ग्यारह पर निकलूँगा। अच्छा, इस समय बिस्कुट वगैरह ले आऊँ जरा···।"

"नहीं···नहीं, देर हो जाएगी।" दादा सीधे गुसलखाने में भागे।

और दादा के जाते ही कमरे में अजब सन्नाटा और सूनापन छा गया। धूप कमरे के बीचों-बीच दरवाजे का आड़ा-तिरछा आकार बनाकर लेटी थी। नीचे से सड़क झाड़ने की धूल न आए, इसलिए उसे बन्द कर लिया था। चाय तीनों ने साथ ही पी थी, दादा जाते-जाते कहते गए थे, "तीन तक आऊँगा और दर्शन, पाँच पर कॉफी हाउस···।" वह चाय के जूठे बरतन उठाकर ले जाने लगी तो अफसोस के स्वर में दर्शन बोला, "च्च्-च्च्, देखिए, आपको कितनी तकलीफ हो रही है! मेहमान की खातिर तो दूर रही···।"

"क्या हो गया तो!" निन्नी ने व्यस्त भाव से कहा, "घर पर भी तो यही करना होता।" दर्शन दूसरी ओर मुँह करके कुछ गोल गोल मुड़े कागजों को खोल रहा था। निन्नी ने इस बार जरा डरते-डरते उसकी ओर देखा—बिना बनियान मलमल का कुरता और पाजामा पहने,

सिकुड़ा-सिकुड़ा खड़ा वह अब सिगरेट जला रहा था। शायद इन्हीं कपड़ों को पहनकर सो गया था। अकारण ही निन्नी पुलक मन में समेटती रसोई में चली आई—अच्छा-खासा तो है, स्वस्थ···सुन्दर। और अचानक उसे लगा जैसे कहीं अंधेरे में फिर जरा-सी मूंछें हिलीं। उनके ऊपर जड़ी आँखों का चमकना दीखे इससे पहले ही एक गहरी सांस दिल को आर-पार चीरती गई—काश, भगवान उसपर जरा-सी कृपा कर देते···। आसमान के चांद की ओर देखने का उसे कोई हक नहीं···देर तक उसकी समझ में ही न आया कि अब क्या करेगी। गई और चुपके से जमे हुए तेल की शीशी ले आई और रसोई में अपने बालों की लम्बाई और घनेपन को खुद ही अकेले में सराहती रही। फिर जाने क्या मन में आया कि खाली प्लेट-प्याले धोती रही। दर्शन अन्दर अपना कोई स्केच ठीक कर रहा था। तभी बगलों में दोनों मुट्ठियाँ फंसाए, ऊँची-सी कमीज, गन्दा स्वैटर और धारीदार पाजामा पहने चन्दू दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ, "अब छोड़ा है बुड्ढे ने···अरे भैनजी, ये आप क्या कर रही हैं··· मैं कर लूंगा। फिर साहब को फटाफट खाना बना डालूँ।"

"तुम अन्दर जाकर कुछ सफाई वगैरा कर डालो। खाना मैं बनाए लेती हूँ दस मिनट में।" निन्नी ने रसोई में इधर-उधर निगाहें घुमाकर पूछा, "हाँ, जरा मुझे चीजें बता जाओ, कहाँ क्या रखा है।" मालूम नहीं निन्नी दर्शन की आँखों के सामने होने से बचती थी और रसोई में ही बनी रहना चाहती थी या भीतर ही भीतर कहीं और भी सचमुच कोई इच्छा थी। खैर, पता लगा कि बूढ़े शर्मा जी और दर्शन का खाना साथ ही बनता है। दर्शन जल्दी खाकर चला जाता है। और बूढ़ा बाद में खाता रहता है। चन्दू ने रसोई साफ करके तरकारी की टोकरी सामने ला रखी। बीच-बीच में पूछता रहा, "भैनजी, हमें कोई अच्छी-सी चीज बनाना सिखा दीजिए। दर्शन बाबू कहते हैं कि रोज-रोज एक-सी ही तरकारी बनाकर रख देता है। एक तो बूढ़ा वैसे ही मिर्च-मसाले नहीं खाता, दूसरे दर्शन बाबू से कुढ़ा रहता है, सो पालक-कद्दू बनवाता

है। अलग से कुछ बनाओ तो कहता है कि तू मेरा घर लुटाएगा?"

दर्शन खाना खाएगा, इस विचार से रह-रहकर अजब बेचैनी-सी निन्नी के शरीर में लहरा जाती थी। बोली, "हमको तो खुद ही अच्छा खाना बनाना नहीं आता।" फिर अपनी घबराहट छिपाने के लिए जल्दी से कहा, "तुम बिना उन्हें बताए जरा-सा देख आओ कि जाने में कितनी देर है।" चन्दू चला गया तो साँस खुलकर ली, लेकिन तभी हाथ में पेंसिल लिए हुए दर्शन रसोई के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया, "अरे-अरे, ये आप क्या कर रही हैं भाई? उसे खाना बनाने दीजिए न, चलिए उठिए-उठिए···अजब हैं आप भी···।"

उसकी परेशानी देखकर निन्नी के मन में गुदगुदी-सी उठी, अगर न जाऊँ तो हाथ पकड़कर उठाएँगे क्या? ज़िद्दी की तरह चुपचाप बैठी काम करती रही और दर्शन पेंसिल से सिर खुजाता रहा। फिर धीमे, लेकिन दृढ़ स्वर में बोली, "आप अपना काम कीजिए, देर हो जाएगी। मैं बैठी-बैठी और करूँगी भी क्या?" फिर मजबूरी के भाव से कन्धे हिलाकर दर्शन को जाते देखती रही। अपने स्वर पर उसे खुद भी आश्चर्य हो रहा था। दादा के जाते ही जो पहले मन में घबराहट छा गई थी, वह खुद ही गायब हो गई और अब जाने कैसा आत्म-विश्वास और दृढ़ता का भाव आ गया था, मानो···नहीं, नहीं, मानो-वानो कुछ नहीं···आज पाक-विद्या की परीक्षा है, आज अपना सर्वश्रेष्ठ दिखाना है···।

दर्शन कमरे मे था और निन्नी चन्दू को थाली लगाकर दे रही थी तो एक बड़ी घिसी-पिटी-सी बात फिर मन में उठी—यह थाली नहीं, मेरा सूक्ष्म व्यक्तित्व है, वह स्वयं है जो दर्शन के सामने परोसी जा रही है। दिल धड़क रहा था कि जाने कौन-सी चीज कैसी बनी हो, उसे पसन्द आए या न आए। पहले इच्छा थी कि खुद लेकर जायेगी, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। चन्दू ने देखा तो खिल उठा, "आज दर्शन बाबू की तबियत खुश हो जायेगी···आज सिनेमा जाने के पैसे मागूंगा···।" होने को एक सब्जी, एक दाल, रायता और सलाद ही था। एक तो वहाँ

सामान ही नहीं था, दूसरे नौकर से दुनिया-भर की चीजें मँगाने की निन्नी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। दर्शन कहेगा, इसने तो दुनिया-भर की चीजें मँगा लीं। निन्नी के कान वहीं लगे थे, देखें दर्शन क्या कहता है? और जब उधर से उल्लास-भरा स्वर सुना, "अरे वाह, आज तो निन्नी जी ने ऐश करा दिए···!" तो निन्नी का कलेजा ऊपर उमड़ आने लगा। मन हुआ, दौड़ी-दौड़ी जाए और पूछे, 'तुम्हें सचमुच खाना अच्छा लगा?' तभी अन्दर से फिर सुनाई दिया, "भई वाह, बरसों बाद अच्छा खाना खाने को मिल रहा है···!" निन्नी को इसमें कोरा शिष्टाचार भी लग रहा था और पुलक से मन गद्‌गद् भी हुआ आ रहा था। दर्शन ने पुकारकर कहा, "आप भी आ जाइए न, रोटियाँ चन्दू बना लेगा।" निन्नी मुँह ही मुँह में बोली, "मैं बाद में खा लूँगी" और चेहरा फिर से तमतमा आया। एक बार चन्दू रोटियाँ ले गया, फिर देखा कि दर्शन खुद ही थाली उठाये चला आ रहा है, "वहाँ अकेला बैठा-बैठा क्या करूँगा···आप छुआछूत तो नहीं मानती न?" निन्नी ने यों ही कुछ उठाने-रखने का भाव दिखाकर रसोई में उसके लिए जगह बना दी।

खाते-खाते दर्शन क्या बोलता रहा, यह सब उसे पूरा याद नहीं है—"अच्छा खाना तो उसी समय से छूट गया, जब से घर छोड़ा। हमेशा या तो होस्टलों में खाना खाया या होटलों में। आप गलत मत समझिये, चाहे माँ हो या बहन या कोई और हो, खाने में नारी का स्पर्श ही कुछ अजब सार्थकता ले आता है···। आज आपने एक बड़ी नई-सी अनुभूति मन में जगा दी है। जी हाँ, घर पर माँ नहीं है, बड़े भाई हैं, भाभी हैं। नहीं, बहन कोई नहीं है···वहाँ मन ही नहीं लगता। समझिए, घर खेती ही होती है।"

दर्शन बोलता जा रहा था और निन्नी विचित्र-से कुहासे की परतों में लिपटती चली जा रही थी। पहली बार उसे खयाल ही नहीं रहा कि कहीं अँधेरा है और उसके एक कोने में हिलती मूँछों के ऊपर चमकदार

आँखें हैं। दर्शन के बोलने में सचमुच कुछ ऐसे अपनेपन का जादू था कि चेतना के अंकुश की पकड़ छूटती चली जाती थी—"समझिए कि मैं ही आवारा निकल गया। पिताजी वहीं खेती-बारी देखते हैं और शायद गांव के पंच-वंच भी है। भाई साहब पास के ही शहर में कहीं पढ़ाते हैं। इस बुड्ढे के यहाँ रहना-खाना सभी हो जाता है। ठीक ही चल रही है जिन्दगी···और क्या ?" पता नहीं और भी क्या-क्या दर्शन ने कहा, वह तो एक के बाद एक रोटी सेंक-सेंककर थाली में डालती रही और सारा ध्यान चिमटे-तवे पर ही लगाये रही कि कहीं रोटी कच्ची या जली न बने ··परीक्षा के प्रश्न-पत्र के मनोयोग से।

"अरे मार दिया !" अचानक दर्शन के इस वाक्य से निन्नी का ध्यान टूटा। वह कह रहा था, "आखिर आप हाथ रोकेंगी भी या मुझे मारना है ? मुझे मना करने का खयाल नहीं रहा तो आप भी नहीं सोचती कि मेरा क्या बनेगा ? नो, नो, अब एक भी नहीं। अब तो शायद आप अपने घर बुलाने से पहले तीन बार सोचेंगी कि इतना खाता है : ग़जब हो गया।" और दर्शन बच्चों की तरह थाली उठाकर भाग गया।

पहले तो निन्नी घबरा उठी कि जाने क्या हो गया, फिर बरबस हँस पड़ी। भीतर एक बड़ी गहरी तृप्ति की भावना हुई। युग-युग के नारी-संस्कार थे, जो पुरुष को खिलाकर सार्थकता की व्यापक अनुभूति में पुलक उठे थे। सचमुच, दर्शन ने रुचि से ही खाया था। उसे खुद ध्यान न हो आता तो निन्नी मोह-तन्द्रा मे डूबी जाने कब तक यों ही रोटियाँ दिये चली जाती।

और जब दर्शन ने जाते-जाते कहा, "अच्छा, तो अब मैं जा रहा हूँ। साढे तीन-पौने चार तक आने की कोशिश करूँगा। न आ पाया तो कॉफी-हाउस मे मिलूंगा ही। आप तब तक कुछ किताबें पढ़िए, मन न लगे तो। आर्ट की किताबें हैं, पता नही आपकी उनमें दिलचस्पी है भी या नहीं। और न हो तो सो लीजिये, अभी तो कल की थकान भी नहीं उतरी होगी। आज नुमायश में भी तो घूमना पड़ेगा। फिर भी एक दिन में क्या देखा

जा सकेगा ? बहुत बड़ी नुमायश है···" तो भले बच्चों की तरह निन्नी ने सिर हिलाकर हामी भरी और मन ही मन हाथ उठाकर कहा, 'टा ! टा !' वह देर तक सीढ़ी के पास ही खड़ी रही और उसके मन में धुयें की तरह लहराते कुछ टूटे-फूटे वाक्य दुहराये जाते रहे। एक हाथ में शीशा और दूसरे हाथ में कंघे से बाल सँवारते-सँवारते दर्शन ने कहा था, "देखिये निन्नी जी, ये सब नहीं चलेगा। आप दो दिनों को आई हैं और इस तरह किसी भले आदमी की आदतें खराब कर जायेंगी तो बाद में इस चन्दू का खाना अच्छा भी नहीं लगेगा।" बाद की बात शायद करुणा में भीग गई थी—"सचमुच मुझे इतना अच्छा खाना खाने का अभ्यास नहीं है···।" निन्नी न जाने क्यों, पिघल आई थी। कोशिश करके सिर्फ इतना ही बोली थी, "उसमें तो ऐसा कुछ भी नही था। आप तो यों ही तारीफ़ किये जा रहे हैं···।"

और उस मोह-तन्द्रा के पारदर्शी गिलाफ में लिपटी निन्नी दर्शन की एक-एक बात को दुहराती रही और हर बात में दुहरे अर्थ खोजती रही। इस समय न तो उसे कोई अँधेरा कोना याद था, न उसमें लम्बे-लम्बे बालों-सी हिलती मूँछें, बस एक सुनहली मकड़ी थी, जो कभी जाले का एक तार इधर ले जाती, कभी उधर···लेकिन बादल के रेशों की बनी इस दुनिया को आज रात को ही टूटना भी तो था।

हाँ, वह दोपहरी स्वप्न-लोक के लम्बे लम्बे लहराते रंग-बिरंगे परदों-वाले अन्तहीन पुल से गुजरते बीत गई। न निन्नी मुँह कुछ बोलती थी, न उसके भीतर कोई बोलता था, लेकिन सुबह का एक-एक वार्तालाप अपने-आप आकार ग्रहण कर लेता और दर्शन के कहे हुए शब्द, स्वर और अर्थ बनकर नही, चित्र और प्रभाव बनकर सामने उभरते। पता नही दर्शन की किस बात के जवाब में उसने भीतर किसी को कहते पाया···मैं तुम्हें रोज-रोज अनन्त काल तक यों ही रसोई में बैठाकर खिला सकूँगी···। सन्ध्या की प्रतीक्षा थी और हाथ कुछ न कुछ किये जा रहे थे। दरवाजे बन्द कर लिए थे और बार-बार खिड़की से झाँक लेती। सूखे कपड़े

उतारने बाहर आई तो धूप बड़ी अच्छी लगी, लेकिन व्यर्थ ही बुड्ढे या और किसीसे बातें करनी पड़ेंगी, सोचकर भीतर चली आई। उसकी किसी की बातें करने की इच्छा नहीं थी। लगता था, जैसे वह जाने कब से इस कमरे में रह रही है ··वह नहीं, वे दोनों···। और यह प्रतीक्षा उसका स्वभाव है। नहीं, नहीं, उसके पास कोई डिगरी-विगरी नहीं, वह किसी दूसरी जगह नहीं रहती, वह तो यहीं रहती है, यहीं-यहीं। चारों ओर के बने-अधबने चित्र कमरे में नहीं, उसके मन में इधर-उधर बिखरे थे और आज वह उन्हें नई दिलचस्पी और उत्साह से देख रही थी··· चकित···मुग्ध···। सन्दूक पर खड़े दीवार से टिके कैनवास को जाने कितनी बार उसने देखा होगा। कुछ अधबनी लाइनें-सी खिंची थीं, लेकिन इस समय अचानक लगा, जैसे ऊपर से देखने में धुएँ जैसी बल खाती टेढ़ी लकीर किसी अधबने-चित्र का प्रारम्भ ही नहीं है, यह तो सम्पूर्ण चित्र है—आरती की तन्मयता में सुध-बुध भूली नारी के समर्पित विसर्जन का चित्र। इसे इतने देर से देखा ही नहीं था।

तीन बजे जब दरवाजे पर खट्-खट् हुई तो वह इस तरह चौंककर उछल पड़ी, मानो यह दस्तक निहायत ही अप्रत्याशित हो। घड़ी देखी, दादा इसी समय आने को तो कह गए थे। ज़रा-सी देर करके आते तो कितना अच्छा रहता! अब आते ही शोर मचाएँगे। चार बजे तक तो दर्शन की राह देखनी ही चाहिए। अब वह तैयार हो इतने धीरे-धीरे होगी कि निकलते-निकलते चार बज जाएँ।

"अरे, आप?" दरवाजा खोला तो दर्शन था।

"सो रही थीं क्या?" दर्शन भीतर आते हुए बोला, "आखिर ब्लफ मारकर भाग ही आया। मैंने भी सोचा, आप लोग कहाँ रोज-रोज आयेंगे। रम्मी नहीं आया क्या?"

"आते ही होंगे।" निन्नी भीतर आ गई। कहीं अन्दर प्रतिध्वनि हुई—'आप लोग' नहीं, 'आप' और 'आप' भी नहीं सिर्फ 'तुम'! तभी मन में खटका : अरे हाँ, इन्हें यह तो बताना होगा कि ये क्या 'आप-आप'

लगा रखा है, 'तुम' कहूं न ! मैं इतनी छोटी हूं; फिर···नहीं, फिर-विर कुछ नहीं ! लगता था, निन्नी को अपने दुर्भाग्य के प्रति इतना अधिक विश्वास था कि किसी प्रिय और मधुर स्वप्न को चेतन मन की आँखों के सामने लाते डरती थी—कहीं नजर न लग जाए···या उस मधुर को बलात् झुठलाकर अपने को यकीन दिलाए रखना चाहती थी कि नहीं, वह उस सबकी अधिकारिणी नहीं है। साथ ही यह भी अच्छी तरह जानती थी कि वही सब तो उसे मिल रहा है।

"अरे वाह !" दर्शन चेहरे पर अतिरिक्त आश्चर्य का भाव लाकर सारे कमरे को इस तरह घूम-घूमकर देखने लगा, जैसे कोई चित्र-गैलरी देख रहा हो। बोला, "ये क्या कमाल है भई !" फिर छत देखी, मानो किसी ऐतिहासिक इमारत के भीतर का गुम्बद देख रहा हो, "यह क्या सचमुच मेरा ही कमरा है ? आपने तो इसकी सारी हुलिया ही बदल दी···!"

तमतमाती कनपटियां लिए निन्नी जल्दी-जल्दी बाहर निकल गई, साथ ही अपनी पीठ, और पीठ पर से भी अधिक अपने फैले हुए बालों पर उसकी चकित प्रशंसा-भरी निगाहों का कोमल स्पर्श अनुभव करती रही··· और पांव लड़खड़ाते-से लगे। आज सारी दोपहर उसने दर्शन का कमरा ठीक किया था। सन्दूक के पीछे ठुंसे रंगपुछे मोजे-रूमाल चारपाई के नीचे पड़े हुए गंदे कपड़ों की पोटली डाले थे; जाने कहाँ-कहाँ बिखरे रंगों के ट्यूब, टिकियाँ, ब्रश एक जगह रखे थे। स्केचों और बिना स्केचों के गोल होते कागजों को अपनी समझ से करीने से रखा था। गुसलखाने की खिड़की की गंदगी साफ की थी। अलगनी के जरूरी कपड़े खूंटियों और हैंगरों में लटकाए थे। रंगों के ब्रश पोंछकर गंदे किये गए खिड़की के परदे धोकर फिर से लगा दिए थे—अधगीले ही, वहीं सूख जायेंगे। जमीन और मेज पर खड़े रंगीन छींटों को साबुन को पानी से साफ किया था, और सुराही की काई को रगड़ डाला था—अर्थात् साढ़े दस से तीन बजे तक उसे खुद पता नहीं कि लगातार क्या करती रही थी। जब

दर्शन आया था तो वह पाजामों के नाड़ों को जोड़कर बनाई गई अलगनी की गाँठें खोल रही थी।

"निन्नी जी सुनिए !" इस बार दर्शन की सख्त आवाज़ आई तो वह सचमुच अपराधी की तरह सिर झुकाए कुरसी के पीछे आ खड़ी हुई।

"मेरी समझ में सचमुच, आपकी आदत नहीं आ रही। आप ये सब क्या कर रही हैं ?" व्यथा से उसने कहा, और जाने क्यों उसके स्वर की सख्ती से निन्नी का गला भर्रा आया। हलके से गला साफ करके कहने की कोशिश की, "घर पर भी तो यही करती हूँ···।"

"तब तो आपको और भी जरूरी है कि दो दिन आराम कर लें।" फिर पता नहीं, निन्नी की ओर क्या देखकर बड़ी याचना से बोला, "आप कुछ और मत समझिए निन्नी जी, मुझे इतनी व्यवस्था और सुख का अभ्यास नहीं रह गया है। कल फिर सब कुछ उतना ही गंदा हो जायेगा ···।"

निन्नी का मन हुआ, कहे, 'गलती हो गई। माफ कीजिए।' लेकिन बोली कुछ भी नहीं। आँखों में पानी भर आया। दूसरी ओर मुँह करके जल्दी-जल्दी पलक झपकते हुए पूछा, "चाय पियेंगे ?"

दर्शन ने निराशा के अवश-भाव से दोनों हाथ फैला दिए। गहरी साँस लेकर बोला, "जैसी आपकी इच्छा, भई।" फिर खिड़की की ओर से सहसा पलटकर कहा, "रम्मी को आ जाने दीजिए, साथ ही पियेंगे। आइए, बैठिए तब तक···वह चन्दू तो होगा नहीं ?"

"वह तो सुबह से ही कहीं गया है। शायद शर्मा जी ने पुरानी दिल्ली वाले घर भेजा है।" सोचती रही कि यहाँ बैठें या रसोईघर में जाकर कुछ करे। पूछा, "हमें नुमायश दिखाने का क्या इन्तज़ाम किया ?"

"वही तो सोच रहा हूँ।" दोनों पंजे आपस में फँसाकर दर्शन उन्हें खींचते हुए बोला, "सोचता हूँ, रम्मी आ जाए तो साथ ही चलें। अब किससे कहेंगे इस वक्त ?"

निन्नी कुरसी को खुली खिड़की के पास खिसकाकर बैठ गई, ताकि

दादा को आते देख सके। दूसरे, हो सकता है, दर्शन थका-माँदा आया तो और कुछ देर को लेटना चाहे। वह तौलिया लेकर बाहर गया था और लौटा तो मुंह पोंछता हुआ, किवाड़ों को पूरा खोलकर वहाँ गुटका लगा आया। पीछे का गला तौलिये से कसकर रगड़ते-रगड़ते बोला, "समझ में ही नहीं आ रहा, कहाँ बैठूं ···। आपने तो बिस्तर की एक-एक सलवट इस तरह निकाल दी है कि लगता है, अभी यहाँ की तसवीर खिंचेगी।"

निन्नी चुप रही। उसे जाने क्यों ऐसा लगने लगा कि ये सब नहीं करना चाहिए था। सारी मेहनत बेकार हो गई! उसे ये सब करने और सोचने का अधिकार ही क्या था? अपनी हैसियत भी तो···फिर मन को समझाया, सभी कुछ केवल एक ही से अर्थ तो किया नहीं जाता। खिड़की से बाहर देख रही थी और पुतलियों पर फिर पानी की परत झूल आई थी।

"मेरी बात से आप नाराज तो नहीं हो गईं? सोचें कहीं कि एक तो इतना सब कुछ किया, फिर ये सब सुनो। भई, मेरे तो मुंह में जो आता है, बिना सोचे-समझे बक देता हूँ। असल में बात यह है कि निन्नी जी, कि मुझे तारीफ करने का तरीका नहीं आता। अब देखिए, चाहता था कि आपको खुश करूं और···अरे···अरे···अरे" और वह निहायत ही अफसोस से चुप हो गया।

असल में अब तक निन्नी की आँखों की निचली कोरें पानी से बहुत बोझल हो आई थीं और बार-बार घूंट सटककर या पलक झपककर भी उन्हें रोके रखना बहुत मुश्किल हो गया था उसने गरदन झुकाकर पल्ले से आँखें पोंछ लीं। भीतर कहीं बहुत ही धूंधली भावना—या प्रत्याशा—थी, क्या वह आगे बढ़कर पल्ले से खुद उसकी आँखें पोंछेगा?

"च्च्···च्च्···मैं माफी माँगता हूँ, कान पकड़ता हूँ, यह मत कीजिए।" उसने बच्चों की तरफ जीभ दाँतों में दबाकर दोनों कान पकड़ लिए, तो निन्नी बरबस हँस पड़ी। साथ ही याद आ गई अपने बचपन की एक घटना— ट्यूटर ने किसी गलती पर कहा, 'कान पकड़ो।'

और उसने बढ़कर ट्यूटर के दोनों कान पकड़ लिए। उस बात की याद से, जोर से उठती हँसी को दबाकर निन्नी बोली, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है···मैं बड़ी बेवकूफ हूँ कुछ ज्यादा ही हूँ···।"

"अच्छा, छोड़िए।" वह चारपाई की पट्टी पर बैठ गया और जूतों से धीरे-धीरे किसी धुन पर ताल देता रहा। "बेवकूफी आप लोगों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। वहाँ हम लाचार हैं···। अच्छा बताइए, आपकी हॉबी क्या-क्या हैं···? कुछ अपने और घर के बारे में बताइए। देखिए सुबह मैंने अपनी सारी बातें बता डाली थीं न। बात यह है निन्नी जी, कि मैं बहुत ही बेतकल्लुफ आदमी हूँ। हरेक से बराबरी और दोस्ती का व्यवहार करने लगता हूँ।"

और थोड़ी देर बाद ही वे लोग अपनी-अपनी हॉबियाँ बता रहे थे। बचपन में निन्नी को क्या खेल अच्छे लगते थे, कौन-सी जगहें या फिल्में उसे सबसे अधिक पसन्द हैं। और जाने कब वे दोनों इतने खुल गए, जैसे बरसों के मित्र हों। निन्नी को न तो उस समय कहीं कोई अँधेरा कोना दीखा, न उसमें लपलपाती मूँछें। वह तो डूबकर बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली के जीवन के फर्क के बारे में बहस करती रही; दिल्ली के बढ़ते हुए फैशन का मजाक उड़ाती रही। बात फिर बुड्ढे पर आ गई तो दर्शन कहने लगा, "बुड्ढे ने आपको तंग तो नहीं किया? मुझे इस बारे में भी बड़ी फिक्र थी। जिसे एक बार पकड़ लेगा, छोड़ेगा नहीं। पंजाब के कत्ल और लूट-पाट के ऐसे वर्णन सुनायेगा···बलात्कारों और अत्याचारों को ऐसी नंगी भाषा में बखानेगा कि मुझे तो लगता है, साला 'मॉरबिड' है। मैं अब आपसे यों बैठा बातें कर रहा हूँ, आप जाकर देख आइए, कहीं न कहीं बैठा जरूर इसी बात पर कुढ़ रहा होगा। उसका तो कहना है कि अपनी बेटी के साथ भी यों अकेले नहीं बैठना चाहिए···।" तब निन्नी को होश आया कि दादा अब तक नहीं आए।

यों ऊपर से देखने में उन बातों में कुछ भी नहीं था लेकिन जाड़ों की ढलती साँझ, कमरे का एकान्त और दर्शन के साथ यों बैठकर अपने-

पन से बातें करना···एक मधुर रहस्यमय-सा क्षण था, जिसे निन्नी चाहती थी कि यह यों ही खिचता चला जाए·· खिचता चला जाए··· दादा और देर कर दें। लेकिन अपने 'इस प्रकार' बैठने के साथ ही दर्शन को अपनी स्थिति और समय का ध्यान हो आया—देखा, चार बजे हैं। "अरे, रम्मी अभी तक नहीं आया।" शायद उन्होंने चन्दू को रसोई की तरफ जाते देख लिया था। चन्दू ने वहीं से आवाज लगाई, "चाय लाऊँ सा'ब ?" उसने हताश भाव से कहा, "ले आ भाई ··।" फिर निन्नी से बोला, "वह आएगा तो फिर बन जाएगी, हम लोग क्यों बेकार ही अपनी चाय···।'

निन्नी को भी फिक्र हो आई, दादा पर गुस्सा भी आया, "कहीं अटक गए होंगे। अभी तक पता ही नहीं है। हम यहाँ बैठे-बैठे राह देख रहे हैं। अब कल कहेंगे कि अब एक भी दिन नहीं रुकूँगा···।"

उसके रुआँसे स्वर से मुसकराकर दर्शन बोला, "तो इसमें इतना घबराने की क्या बात है ? पन्द्रह-बीस मिनट राह और देखते हैं, नहीं तो फिर कॉफी हाउस में देख लेंगे। पाँच पर तो वहाँ आएगा ही मुझे देखने··आप झटपट तैयार हो जाइए।"

चाय पीते हुए मन में आया, दादा यहाँ न ही आएँ तो अच्छा है। निन्नी ने कपड़े पहन लिये। साड़ी देखकर मन में खुद बेहद हीनता का भाव आया, बाहर आई थी तो घर से किसीकी भी एक अच्छी-सी साड़ी ही लेती आती। इन कपड़ों में दर्शन के साथ जाने को मन भी नहीं कर रहा था और साथ जाने की कल्पना से दिल में कुछ धक्-धक् भी करने लगा था।

"और जो वहाँ भी न मिला तो ?" अचानक चिन्तित स्वर में दर्शन ने पूछा।

"तो क्या ?" निन्नी हठ से बोली, "मुझे नुमायश दिखानी होगी···" हलके अपनेपन के अधिकार से कहे गए ये शब्द जरा-से थे, लेकिन उसका स्वर बुरी तरह काँप रहा था। लगा, बात कह चुकने पर माथा पसीज

आया है। यों ही दादा के लिए खिड़की से झाँकते हुए व्यस्त भाव से पसीना पोंछा।

कन्धों पर कोट चढ़ाने का प्रयत्न करते, दर्शन के दोनों कन्धे सहसा थम गये, फिर कुछ सोचकर कोट चढ़ा लिया। मजबूरी के भाव से बोला, "वह तो करना ही होगा। साढ़े चार बजे हैं, और राह देखेंगी!"

"अब वहीं देख लीजिए न, जहाँ आपसे मिलने वाले थे···।" निन्नी को डर था, कहीं सचमुच ही दादा न आ टपकें। बार-बार हाथ बालों तक जाता। यों कंघा करके बाल खुले छोड़ने की आदत नहीं थी, सो अजब-अजब लग रहा था। अब भी चोटी करते-करते हाथ रुक गया। उसने मुड़ी बाँहों वाला कार्डीगन पहन लिया। चलो साड़ी की हीनता कुछ तो इससे छिपी। कुरसी पर झुकी-झुकी सैंडिल बाँधने लगी तो फिर लगा, सचमुच उसके पास दर्शन के साथ-साथ चलने लायक कुछ भी तो नहीं है···न कपड़े न···न···।

"चेस्टर और ले लीजिए, कहीं रोब ही रोब में ठण्ड खा जाएँ।" दर्शन बोला।

और जब चन्दू से खाने को मना करके आगे-आगे निन्नी और पीछे-पीछे दर्शन दोनों सीढ़ियाँ उतरे, तो निन्नी के पाँव डगमग-डगमग कर रहे थे। बार-बार सामने अँधेरा आ जाता था। लगता था गली की हर खिड़की-झरोखा आँख बन गया है और ये सैंकड़ों आँखें केवल उन्हें ही जाते देख रही हैं। चलते-चलते दर्शन ने पूछा, "और वो कहीं बाद में यहाँ आया तो?"

"अब हम लोगों ने इतनी तो उनकी राह देख ली।" उसने चलने में अपना ध्यान लगाकर कहा, साथ ही मन में दुहराया, 'हम लोग।'

बस में चढ़ते-चढ़ते निन्नी को लगा, जैसे पीछे से दर्शन ने हलका हाथ कन्धे पर रखा, लेकिन झट हटा भी लिया। उसने कन्धे के ऊपर गरदन मोड़कर पीछे देखा और झट एक खाली सीट पर बैठ गई, बची जगह पर दूसरों को न बैठने देने के लिए हाथ रख लिया। घबराकर

बोली, "आइए, यहाँ आप बैठिए।" वह सचमुच इतनी घबराई आवाज में बोल रही थी कि दर्शन वहाँ बैठते ही मुसकराकर बोला, "आप तो बड़ी नर्वस है। मेरा क्या है। मैं तो खड़ा भी रह सकता था···।"

"कोई और जो बैठ जाता···।" निन्नी को लगा, जैसे वह सकुचा-कर बचा-बचा बैठा है। वह खिड़की की ओर और भी सिमट गई। कहा, "आप ठीक से बैठ जाइए न··· ।"

और निन्नी की ओर की खिड़की से दर्शन बताता रहा कि यह कौन-सी जगह है, बस कहाँ से किस सड़क पर मुड़ती है, किस सड़क का नाम बदलकर क्या कर दिया गया है। अभी यहाँ बसों की बड़ी ही किल्लत है। सिन्धिया हाउस से तो ताँगे, मोटर, साइकिल-रिक्शा इत्यादि बहुत मिल जायेंगे नुमाइश के लिए···। शाम का समय है न, सो दफ्तर से लौटने वालों की साइकिलों का ऐसा ताँता बँध जाएगा कि सड़क पार करना मुहाल···। लेकिन निन्नी कुछ भी नहीं सुन रही थी, सिर्फ उसके चेहरे को ताकती सुनने का भाव दिखाती 'हूँ'-'हूँ' करती मुसकराये जा रही थी। पहली बार जब दर्शन का कन्धा उसके कन्धे से टकराया, मानो सारे शरीर में एक करंट दौड़ गई। एक नया अनुभव था, जिसकी उसे उम्मीद भी थी और आशंका भी। दूसरी बार बस के मुड़ने पर उसने जान-बूझकर संभलते-संभलते अपने कन्धे और शरीर का हल्का-सा बोझ उस पर डाला···। फिर इस तरह खिड़की की तरफ सरक आई, मानो बस के झटके में असावधानी से ऐसा हो गया हो। लेकिन प्रतीक्षा करती रही उदग्र···फिर कन्धा टकराया और देर तक छूता रहा। अगले झटके पर तो मानो साथ ही सट गया। निन्नी के माथे पर भाप जम आई और सीना बुरी तरह धड़कता रहा। ध्यान हटाने को व्यस्त भाव से कभी बाहर देखने लगती और कभी भीड़ में भीतर, लेकिन देख कहीं भी नहीं रही थी। उसकी तो सारी संवेदना-शक्ति कन्धों की मांसल टकराहट में आ-समाई थी। उसे लगा जैसे वह बस में नहीं, कार्निवाल के भारी चक्रा-कार झूले में बैठी नीचे की ओर चली आ रही है और छाती में हवा भर

गई है और सारा संसार धुंधला-धुंधला दीख रहा है। एक अनबूझ, अनकही बातचीत थी, जो कन्धों की भाषा में लगातार हो रही थी। दर्शन की कही बातें उसे आधी सुनाई दे रही थी— आधी नहीं, बस मुंह से हुं-हुं या कोई निहायत ही बचकाना-सा सवाल ! रह-रहकर मुड़कर बस में देख लेती, कही कोई इस मधुर रहस्य को भांप तो नही रहा ? फिर भाव आता, हुँ, देख ही लेगा तो कौन जान-पहचान का होगा, जो बाद में सुनायेगा।' स्टॉप पर रुकने के बाद जैसे ही बस चलती कि उसे लगता कि वे लोग और भी निकट आ गये हैं। पहली बार डर था कि कहीं बुरा न मान जाए दर्शन···अगर कहीं फौरन सरक गया तो क्या मुंह रह जायेगा ? इसके मन में भी तब निन्नी के लिए कहीं कोई भाव है क्या ? उसने मन में दुहराया : हे भगवान, मुझे तो विश्वास नहीं आता। और वह जान-बूझकर न दर्शन की तरफ देखती, न कन्धों की तरफ। कहीं वे इस ओर से सजग न हो जायें···और हट जायें।

इस बार दर्शन ने कन्धे के स्पष्ट झटके से कहा, "उतरो...।" अरे ! इतनी जल्दी वह जगह आ गई ? काश बस यों ही चलती चली जाती और उसकी मुग्ध तन्द्रा कभी न टूटती। उतरी तो नशे में मातल-आदमी की तरह पाँव लड़खड़ा रहे थे। सीटों के बीच की गली में गिरने की हद तक झुक गई। दर्शन ने झट बाँह पर हाथ रखकर रोका, "संभलकर धीरे-धीरे उतरो। कोई जल्दी नही है।" निन्नी ने झेंपकर कहा, "पाँव सो गया है।" मन में किसी ने दुहराया··· उतरो, उतरिए नहीं उतरो···। उसने ठीक ही सुना है, या सुनने में कहीं भूल हो गई ?

जब भीतर कॉफी हाउस जाने को किसी भी तरह तैयार नहीं हुई तो उसे बाहर ही छोड़कर दर्शन भीतर दादा को देखने गया। जाने कब से निन्नी के भीतर एक ग्रन्थि बन गई थी और कभी ऐसी जगह जाने की उसकी हिम्मत नही पड़ती थी, जहाँ साथ के बहुत-से लोग बैठे हों। दर्शन के परिचित जरूर कॉफी हाउस में बैठे होंगे— क्या कहेंगे कि किस 'कलूटी' को ले आया है ! उसे तो अनजान-लोगों की भीड़ चाहिये थी,

जहाँ वह और दर्शन अकेले हों !

लेकिन बाहर साइकिल स्टैण्ड के पास वह अकेली खड़ी थी और भीड़ का एक अनन्त प्रवाह था, जो सड़क पर विपरीत दिशाओं में दुहरा चला जा रहा था···साइकिलें···कारें, बस, मोटरसाइकिल, रिक्शे, पैदल··· और वह भौचक खड़ी-खड़ी देखती रही। बिल्कुल ऐसा लगता था मानो किसी तेजी से बहती धार के पल-पल गलते गीले किनारे पर खड़ा हो, और इस अन्धगति को देखकर सिर चकरा रहा हो। यों ऊपर से सिर उठा-उठाकर आते-जाते लोगों में दादा को तलाश करती रही, लेकिन मन ही मन मानती रही कि वे न मिलें, न ही मिलें। अचानक लगा बहुत देर हो गई है और तब बेचैनी के साथ-साथ डर भी लगने लगा। सूरज छिप गया था। किसी विदेशी के स्वागत में लगी झण्डियाँ झूलती डोरियों पर चिथड़ों की तरह लटकी थीं। पास से तीन-चार लड़कियों का झुण्ड खिलखिलाता हुआ निकल गया···और तब अचानक अकारण ही मन में अजब ढंग का बोझ आ-समाया। खुद ही मन बड़ा उदास और निराश हो गया—लगा, नहीं, उसके लिए जिन्दगी का हर दरवाजा बन्द है। वह यहाँ खड़ी किसकी राह देख रही है ? क्यों नहीं लौटकर घर जाती और कहीं कोने में फूट-फूटकर रो लेती।

सहसा देखा, दर्शन अकेला चला आ रहा है, एक हाथ से माथे पर बिखरे बालों को कभी-कभी ठीक कर लेता है। शायद यह उसकी आदत है ! इस सारे अवसाद के बीच, उस सारी भीड़-भाड़, शोर-शराबे से भरी जगह में एक विचित्र-सी अनुभूति कौंधकर गायब हो गई—मानो वह एक ऊँची-सी जगह पर अकेली खड़ी है, और दर्शन नीचे किसी घाटी से चलता चला आ रहा है—हारा, थका।

"यहाँ तो है नहीं···अब ?" दूर से वह बोला, खड़े-खड़े बहुत देर हो गई न। असल में एक दोस्त को समझाता रहा कि रम्मी आये तो भेज देना।"

"जैसा आप समझें।" निन्नी ने बहुत ही उदास भाव से कहा, और

सहसा उसे दादा पर सचमुच गुस्सा आ गया, यों यहाँ लाकर छोड़ दिया है, जरा-सा भी ख्याल नहीं है। याद आया, बस का टिकट भी दर्शन ने ही लिया था। अगर नुमायश गए तो बेचारे के जाने कितने रुपये खर्च हो जायेंगे।

"तो नुमायश ही चलें ?" उसने पूछा।

"अब मैं क्या कहूँ···आप जो भी ठीक समझें।" वह अपने मुँह से नहीं कहना चाहती थी। फिर एकदम बोली, "लेकिन एक शर्त पर चलेंगे हम।"

"क्या ?"

"आप हमसे पैसे ले लेंगे।" उसका मुँह लाल हो आया।

"अरे हाँ, हाँ, बड़ी पैसे वाली आई," दर्शन ने हँसकर उसे कन्धे से मोड़ दिया, "चल।"

निन्नी चलने लगी, लेकिन मन का वह अवसाद अभी भी गीले कुहरे-सा चेतना को छाये था। समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक यह हो क्या गया ? अभी-अभी वह जिस जादू में डूबी थी, वह गया कहाँ ? भीतर वही अँधेरा था, अगनित मूँछें अन्धेरे का ही अंग बनी लहरा रही थीं। सामने से दो पंजाबी जोड़े चले आ रहे थे, एक ने कश्मीरी सिल्क की साड़ी पहनी थी और दूसरी हलके गेरुआ रंग के सलवार-सूट में··· गोरी चिट्टी, हँसती-खिलखिलाती दोनों लड़कियाँ। निन्नी के मन में खयाल आया, जो रात-दिन इन लोगों को देखता है, इन्हीं के बीच में रहता है, उसे लेकर यों उलटे-सीधे ताने-बाने बुनना हिमाकत नहीं है ? हो सकता है, दर्शन को उसके साथ चलते झेंप लग रही हो। कहाँ ये, एक से एक कीमती कपड़ों में नये से नये फैशन में सजी पंजाबिनें और कहाँ एक छोटे-से शहर की फूहड़-कुरूप, काली-कलूटी वह ? और इसी विचार से दर्शन का धर्म-संकट बचाने को वह जान-बूझकर पीछे छूट जाती। दर्शन जाने क्या-क्या बोलता आगे निकल जाता, फिर उसे साथ न देकर रुक जाता। निन्नी उसे महसूस करने देना चाहती थी, जैसे वह

उसके साथ नहीं है, यों ही कोई अकेली जाती लड़की है। अपने इस पीछे छूटने को वह बार-बार मुड़कर दादा के लिए चिन्ता प्रकट करने में छिपाए थी। उसे लगा सचमुच वह एक ऐसे मानसिक भंवर में आ गई है, जिससे सिर्फ दादा का आना ही उबार सकता है।

"अरे छोड़ो भी अब नहीं आ रहा तो।" इस बार निन्नी के बहुत ही पास आ दर्शन ने कहा, "और हो सकता है नुमायश में ही कहीं टकरा जाए।"

"चलिए।" हारकर वह बोली।

मोटरसाइकिल-रिक्शे की सवारी भी अजीब है (उस समय दिल्ली में स्कूटरों का चलन नहीं बढ़ा था) उसने दोनों हाथों से कसकर इधर-उधर पकड़ लिया था, फिर भी हर बार दर्शन से जा टकराती थी। पहले पहल बैठ रही थी और हर मोड़, हर घुमाव पर लगता, जैसे अभी छिटक कर बाहर जा पड़ेगी। उन दिनों नुमायश की सड़क बन रही थी, इसलिए रास्ता इतना ऊबड़-खाबड़ और धूल-भरा था कि जब उतरी तो देर तक रूमाल से आँखें और मुंह पोंछती रही। उसे एक ओर खड़ा रहने को कहकर दर्शन टिकट लेने गया तो उसका सिर चकरा रहा था। अपने ही शहर से जाने कितने लोग नुमायश देखने आये होंगे। दादा ही यहाँ खड़ा देखें तो···? लेकिन शीघ्र ही दर्शन आ गया और गोधूलि का वह अंधियारा सहसा ही बिजलियों के जल उठने से जगमगा गया, जैसे अंधेरे में किसीने रंग-बिरंगे अंगारों के विभिन्न आकार फेंक दिए। जाने दिल्ली के किस कोने में वह नुमायश थी, उसे तो सिर्फ लोगों की भीड़ दीखती थी, बड़ा-सा 'प्रवेश-द्वार' दीखता था। पीछे कहीं गरजते सागर का शोर था···।

और जैसे ही प्रवेश-द्वार से निन्नी ने प्रवेश किया, उसे सब कुछ दीखना बन्द हो गया। एक जादू का मुल्क था, जो लाउड-स्पीकरों की आवाजों और जगमगाती नियोन-लाइटों के खम्भों पर टिका था···या कहीं एक तिलस्मी घाटी थी और उसमें धुंध एक अछोर चौड़े प्रवाह के

रूप में टूट पड़ा था और बुलबुलों की तरह बत्तियाँ जल रही थीं। जाने कितनी सजावट थी, जाने कितने स्टॉल थे, जाने कितनी दुकानें और जाने कितनी डैमोबांधों और योजनाओं के छोटे रूप थे। निन्नी की आँखों पर मकड़ी के जालों की बुनी एक पट्टी बँधी थी और वह सिर्फ अन्धे की तरह चलती चली जा रही थी। न उस तक कोई स्वर आता था, न प्रकाश। सारे लोग, सारी नुमायश स्वेच्छा से, चलती-फिरती भीड़ से नहीं, स्पन्दन-हीन बेजान-कठपुतलों से भरी थी। उनमें कोई भी किसी तरफ नही देखता था। बस निन्नी थी, उसे स्टॉल-स्टॉल घुमाता दर्शन था। भीड़ में वह कभी उसका हाथ पकड़ लेती, कभी बाँह या कभी उसके हाथ को अपनी पीठ पर महसूस करती, कभी कन्धे पर। "बहुत गर्मी है," कहकर निन्नी ने कार्डीगन उतारकर हाथ में ले लिया था। दर्शन कभी लिखा बोर्ड पढ़कर सुनाता, कभी ज़बानी कुछ समझाता ...."अच्छा!" "हूँ...हूँ" या "यह तो बड़ा सुन्दर है" कहकर निन्नी देखती हुई आगे बढ़ जाती।

उसकी समझ में सचमुच नहीं आ रहा था कि यह नुमायश की ही चकाचौंध है या वही बौखला उठी थी। जब छोटी-सी रेल मे वे दोनों सटकर पास-पास बैठे, तो निस्संकोच उसने अपना हाथ दर्शन की सीट पर उसकी पीठ के पीछे फैला लिया था और इस तरह मुड़कर उसकी ओर बैठी थी कि उसका कन्धा निन्नी के गले तक आता था। बार-बार उसके मन मे उठता कि अपनी ठोढ़ी दर्शन के कन्धे पर टिका दे और जब वह अपना सिर इधर घुमाये तो उसकी कान की लौ को धीरे से काट ले और फिर खिलखिलाकर हँस पड़े...जैसे कोई पहाड़ी घाटी अचानक ही बादलों भरे गाढ़े-गाढ़े नीले धुएँ से भर जाती है तो न तो उसके खड्ड दीखते हैं, न चोटियाँ। खोह-कन्दरा, सभी कुछ एकाकार हो जाता है और सबमें व्याप्त हो जाता है एक तरल-रोमिल कुहासा, ठीक वैसी ही हालत निन्नी की थी। उसे कुछ भी याद नही था कि वह कहाँ से आई है, इस समय कहाँ है।

फिर उन लोगों ने छोले-कुलचे खाए और हर स्वाद को निन्नी जिन्दगी में पहली बार जान रही थी। दर्शन ने सुबह के खाने की तारीफ की तो निहायत भोलेपन से बोली, "कहाँऽऽ ? आपको पसन्द भी आया होगा ! कहाँ पंजाब का खाना और कहाँ हम लोगों की तरफ का उबला भोजन !"

"तुम विश्वास नही करोगी, निन्नी, इतने दिन मुझे दिल्ली का खाना खाते हो गये और मुझे पजाबी खाना पसन्द भी है, लेकिन मन में कभी लगता ही नही कि यह मेरा अपना खाना है। लगता है, बस होटल में रह रहा हूँ ···। तुमने बहुत दिनों बाद घर की याद दिला दी।"

निन्नी की समझ में नही आता था कि उस उल्लास को, उस सुख को कैसे सँभाले, कहाँ उठाये, कहाँ रखे ? फिर वे लोग कार्निवाल में बैठे। झूला जब ऊपर जाता तो बिजली की आड़ी-टेढ़ी बत्तियों की एक दूसरी को काटती लाइनों वाली नुमायश बहुत नीचे छूट जाती और छाती में हवा भर जाती; तब वह दर्शन के कन्धे से चिपक उठती, और जब नीचे आता तो साँस थक जाती और लगता, जाने किन अनजान गारों और घाटियों में उतरती चली जा रही है। लेकिन उसे नीचे जाने की याद उतनी नहीं है, जितनी ऊपर जाने की। लगता था जैसे वह झूला एक छोटी-सी रेल का खुला डिब्बा है, और नगर की चीखती चकाचौंध के ऊपर उन्हें लिए चला जा रहा है। एक अदृश्य पुल से वे लोग जाने कहाँ चले जा रहे हैं।

जब बाहर निकले तो साढ़े नौ बज रहे थे। उस समय न पहले वाली झिझक थी, न संकोच। अब वे बहुत घनिष्ठ मित्र थे। वह बार-बार कह रही थी, "आपके कारण यह नुमायश देख ली। दादा तो पता नही किसके साथ कर देते; कह देते, देख आओ···।"

"अभी देखी कहाँ है ?" दर्शन बोला, "अभी तो योंही चक्कर लगा लिया है। देखेंगे तो बहुत समय लग जाएगा।"

हाँ अभी कहाँ देखी···? अभी तो सिर्फ चक्कर लगाया है और वह

इसीमें चौंधिया गई है। शायद इसे देखने में तो सारी जिन्दगी बिताई जा सकती है।···फिर आएँगे···फिर आएँगे। गहरी साँस लेकर कहा, "जितनी देख ली है, उतनी ही काफी है। दो-एक दिन रहते तो देख लेते।" उसे वह सारा वार्तालाप बड़ा प्रतीकात्मक लग रहा था।

"तो रुक जाओ न, क्या करना है अभी से जाकर।"

"दादा के ऊपर है। इंजन तो वही है, हम तो खाली डिब्बे हैं।" निन्नी उदास हो गई। प्रतीक्षा करती रही, वह कहेगा, 'तो तुम रुक जाओ।' उसने नहीं कहा, लेकिन मन ही मन उसकी ओर से निन्नी ने जवाब दे दिया, 'ऐसी अपनी क़िस्मत कहाँ ?'

डिब्बे वाली बात पर दर्शन बोला, "और वो भी ऐसा डिब्बा जिसपर लिखा है, नाट टु बी लूज़ शण्टेड ··।" फिर खुद ही ठहाका मारकर हँस पड़ा। निन्नी अनसमझी-सी मुस्कराई।

रास्ते में उसने पूछा, "आप हमें पेन्टिंग के बारे में कुछ बताइए न। सच, मेरी बड़ी इच्छा है कुछ सीखूँ·· कम से कम कुछ तो समझ में आए। अब तो बुद्धू की तरह देखते रहते है कि इसका अर्थ क्या है···।"

"अगर सीरियस हो तो कुछ किताबें बता दूँ। मेरी आलमारी में रखी भी थीं ··दोपहर में थोड़ा-बहुत देख लेती।"

"इतनी-सी देर में क्या होता है ? फिर किताबें-विताबें पढ़ने की तवालत हमसे नहीं होती। हमें तो कोई घंटा-भर बैठकर रोज समझा दिया करे।"

"जी हाँ, कोई फालतू है न !" दर्शन ने मुँह बिचकाया, "तैरने पर महीनों लेक्चर सुन लो, लेकिन बिना पानी में खुद उतरे कहीं तैरना आता है ? उसी तरह बिना पेंटिंगें देखे, उस माहौल में जिए, यह चीज समझ मे नहीं आ सकती। तुम चाहो तो मेरी किताबें ले जाना। पढ़ लो तो लौटा देना।"

"हाय, वो किताबे···" किताबें निन्नी ने दोपहर में सँवारी थीं। झेंप जीतती हुई बोली, "वो बेहूदा किताबें देखकर कोई क्या समझेगा ?"

"उनमें बेहूदा क्या है ? आर्ट पर किताबें है।"

"अरे, उनमें मार नंगी-वंगी, जाने कैसी-कैसी तो तसवीरें हैं···! आप ही लोगों को मुबारक हों वो ! आर्ट के बहाने अपने मन की गन्दगी निकालते हैं।" फिर अपने कोर्स की भाषा का सहारा लेकर बोली, "स्प्रेस्ड डिजायर्स···।"

दर्शन ने सुना और चुप रहा। फिर कुछ देर बाद बोला, "निन्नी, एक बात मेरी समझ में नहीं आती, क्या मानव-शरीर सचमुच ऐसी शर्मनाक चीज है कि उसे बिना ढके नहीं देखा जा सकता ? अगर उसमें कहीं कुछ सुन्दर और बेमिसाल है, तो देखने-दिखाने या सुरक्षित रखने लायक नहीं है ?"

"और उसके लिए सिर्फ औरतें रह गई है ?" निन्नी ने पूछा।

"नही, ऐसा तो नहीं है। रोमन कला में पुरुष-शरीर के सौन्दर्य का जैसा अध्ययन है, वह भी हमारा विषय है। लेकिन पुरुष-शरीर का सौन्दर्य उसकी शक्ति है और नारी का सौन्दर्य उसकी कमनीयता। जब हम नारी-शरीर को माध्यम बनाकर कमनीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं, तो कला होती है; जब उसे ही लक्ष्य बना लेते हैं, तो सप्रेस्ड या रिप्रेस्ड डिजायर्स (कुंठित वासना) वाली बात आती है।"

दर्शन का यों गम्भीरता से समझाना निन्नी को अच्छा लगा और बड़ी रहस्यमय दिलचस्पी से भरा लगा यह विषय। छेड़ने को बोली, "आप न्यूड और नैकेड का भेद ही तो बता रहे हैं न ? शब्द बदल देने से वह नंगापन कहाँ चला जाएगा ?"

"जिद्दी आदमी को कुछ नही समझाया जा सकता।" दर्शन फिर चुप हो गया।

"अच्छा, गुस्सा मत होइए, हमें किताबें दे दीजिए। हम लौटा देंगे।" निन्नी ने खुशामद से कहा।

कितनी उन लोगों में निकटता आ गई है कि वे लोग नग्न सौंदर्य के बारे में भी यों बातें कर सकते है। निन्नी के भीतर जसे कोई रह रहकर

गुदगुदा रहा था। लेकिन ये सब पुलक-उन्माद या मोह-मुग्ध स्थिति ऊपर तेजी से बहती धार की तरह से; भीतर—कहीं बहुत भीतर एक निरुद्विग्न और निर्विकार निन्नी बैठी थी, जो दर्शन की हर आदत को पढ़ रही थी, प्रेरित करती थी कि वह उसकी हर रुचि के बारे में जाने, उसकी कला के बारे में समझे। और उस निन्नी ने नुमायश मे घूमते, मौज करते, खाते-पीते हुए भी कही यह महसूस किया था कि ऐसी फिजूलखर्ची से कैसे काम चलेगा? आज दर्शन ने पन्द्रह-बीस रुपये खर्च कर दिये। इतना क्यों? इस पर रोक लगानी होगी। दर्शन को खाने-पीने का शौक है, घर जाकर कुछ बहुत ही स्वादिष्ट चीजें सीखनी होंगी। इस तरफ पहले ध्यान ही नहीं दिया था। अब रसोई में नियमित एकाध घण्टा दिया जाया करेगा।

घर पर जब दादा से भेंट नहीं हुई, तो लगा, निन्नी ने सन्तोष की गहरी सांस ली। सारे रास्ते अपराध की धड़कन उसके कानों में बजती रही थी। क्या सोचेंगे? दर्शन ने पूछा भी था, "रम्मी तो कुछ और नही समझेगा?" निन्नी ने बताया, "देर ज़रूर हो गई है, लेकिन वो कुछ और क्यों समझेंगे? नाराज तो मुझे होना चाहिए कि नुमायश दिखाने को कहकर लाए थे और यहाँ आते ही सब भूल-भाल गये। वैसे दादा मुझ पर बहुत विश्वास करते हैं···।"

चन्दू से पता चला, बीच में आये थे, थोड़ी देर बैठे रहे, फिर चले गये। उसे लगा कि दर्शन भी नहीं चाहता था कि जाते ही दादा से सामना हो।

आध घण्टे बाद दादा आये निन्नी कपड़े बदलकर मेज के सहारे कुर्सी पर बैठी थी, दर्शन गुसलखाने में था। उसने बैठे-बैठे जाने क्या सोचकर एक किताब उठाई और पन्ने पलटकर ध्यान से उस सौंदर्य को समझने की कोशिश करती रही। फिर अचानक ख़याल आया और एक लेटर-पेपर को आधा फाड़कर अपना नाम लिखा, नीचे पता लिखा और किताब के बीच में रखकर उसे वहीं लगा दिया। फिर दुबारा किताब उठाई, पन्ना निकालकर उसके आगे जोड़ा, 'मेरा पता'। ख़याल आया, अगर इस किताब को बरसों न खोले तो? फटे हुए कागज का ज़रा-सा कोना

बाहर निकाल दिया।

तभी दादा आ गए। निन्नी इस समय तक पूरी तरह सुस्थ हो चुकी थी और बैठी-बैठी सोच रही थी कि देखो, कल इस समय इस कमरे की क्या हालत थी। देखते ही, उसके कुछ कहने से पहले ही दादा बोले, "अजब हो तुम भी···!'

"अजब मैं हूं या आप ?" वह बरस पड़ी, "यहां साढ़े चार तक बैठे रहे। फिर कॉफी हाउस में खोजा····।"

"भई, क्या करूँ !···इण्टरव्यू में दो-तीन और अपने जान-पहचान के मिल गये। लेकिन मैं यहाँ आया, तो मालूम हुआ कि दर्शन भी आ गया था। अब कहाँ है ?" उसने गुसलखाने की तरफ इशारा किया, तो पूछा, 'अच्छा, खैर, नुमायश तो देख ली न ?"

"आपकी बला से ! आपने तो नहीं दिखाई !" उसने गुस्से से मुँह फुला लिया।

"मैंने तो तुमसे चलते वक्त ही कह दिया था···।" दादा कमजोर पड़ गये।

"कह देने से क्या होता है, ज़रा-सा इतना काम आप हमारे लिए नहीं कर सकते थे ?" शायद बातचीत सुनकर दर्शन भी बाहर निकल आया। उसे देखकर निन्नी ने कहा, "बेचारों का इतना वक्त और पैसे बरबाद कराए···! लाकर यहाँ पटक दिया !" दर्शन से निगाहें मिलीं, तो निन्नी इस तरह मुसकराई, जैसे दादा को क्या पता कि हमने कौन-सी नुमायश देखी है।

"हाँ, तो अब हिसाब हो जाये।" दर्शन हँसकर बोला, "ये मुझसे कह रही थीं, जो खर्चा होगा, वह देंगी।" निन्नी ने लज्जा से सिर झुका लिया और हँसने लगी। अचानक गम्भीर होकर दर्शन ने इण्टरव्यू की बातें पूछनी शुरू कर दीं।

"अरे वो अपने साथ गंजावाला गाँगुली था न—अरे वही जो कुछ दिनों को डफरिन में चला गया था, औ साला भी आया था····। बस

फिर···।" फिर वे दोनों अपने कालेज के साथियों की बातों में खो गये कि कौन कहाँ है और क्या करने लगा है। निन्नी फिर फालतू हो गई, लेकिन कल के और आज के फालतू होने में कितना फ़र्क था ! कल बेकार थी और अर्थहीन थी, खाली-खाली, और आज तो मन ही यह होता था कि कोई कुछ न बोले और आज के अतीन्द्रिय सुख को वह फिर-फिर जिए···।

दादा भी बाहर खा आये थे। सोने की व्यवस्था वही कल वाली रही। कोई उसके भीतर की सार्थक पुलक को न तोड़ ले, इसलिए निन्नी एक दूसरी किताब लेकर लेट गई। इस बार सोचा, खुद ही कुछ समझने की कोशिश की जाये ·· देगां मातीस, वॉन गॉग, मोदगल्यानी, क्यूबिज्म, एब्स्ट्रैक्ट···और जाने क्या-क्या शब्द और नाम थे, लेकिन वे सब के सब आगे-पीछे, उसकी आँखों के आगे नुमायश की रेल की तरह घूम रहे थे··· और उसके एक डिब्बे में वे दोनों बैठे थे। रेल कभी किसी डैम के पास से गुजरती, कभी किसी रेस्तरां की बगल से, कभी किसी पेवेलियन और स्टॉल के नीचे से जाती और कभी छोटे से-बाजार के लेवेल-क्रॉसिंग से होकर। उस समय निन्नी उसमें बैठी थी, लेकिन अब लग रहा था, हर मोड़ और हर भीड़ में वह खुद भी थी और यों दर्शन और निन्नी को बैठे हुए देख रही थी···और हर क्षण महसूस कर रही थी कि रेल की पटरियाँ धरती की सतह से ऊँची उठती चली जा रही है। उनके नीचे खम्भे निकल आये हैं, जो क्रमशः ऊँचे होते गये है। सिर्फ एक पुल से गुजरती खट-खट भरी हवा कानों के पास भागी चली जा रही है···।

और जब लाख कोशिशो के बावजूद किताब मे कुछ भी नहीं पढ़ा जा सका, तो धीरे से किताब सिरहाने रख दी—"हमें तो अब नीद आती है, बहुत थक गये।" कहकर उसने करवट बदल ली। दर्शन और दादा नीचे लेटे बातें कर रहे थे।

"बत्ती बुझा दूं न ? कहकर दर्शन ने उठकर बत्ती बुझा दी, लेकिन निन्नी की आँखों मे नुमायश की लाख-लाख बत्तियाँ कौंध रही थी। बड़े-से प्रवेश द्वार के नीचे खड़ी ··कुलचे खाते हुए···किस तरह भीड़ मे वह···

न्यूड और नैमड पर बातें करते हुए·· किस तरह भीड़ में वह दर्शन की बाँह पकड़ लेती थी और धक्कों से बचाते हुए किस तरह वह उसकी पीठ पर हाथ रख लेता था···सब कुछ बत्तियों की झालर बनकर सामने से गुजरता घूम रहा था।

लेकिन तभी उस सबको घुमाने वाली स्प्रिंग टूट गई और सारी जलती झालरें आतिशबाजी की चर्खी की तरह भन्नाती हुई अँधेरे में बिखर गईं।

उसे पता नहीं लगा, कब दर्शन और दादा का स्वर धीमा पड़ गया और दोनों निन्नी को सोया जानकर दूसरी तरह की बातें करने लगे। उसके कान खड़े हुए दादा की बातचीत के एक टुकड़े से, "तब भी कुछ निश्चय तो किया ही होगा ?"

"निश्चय क्या रम्मी ! निन्नी साँस रोककर सुनने लगी। दर्शन ने कम्बल से बाँह निकालकर सिर के नीचे लगा ली, "मैं तो बहुत ही परेशानी में पड़ गया हूँ। देखो, तुमसे क्या छिपाना और मैं तो अब किसी से भी नहीं छिपाता। शादी तो उसी से करूँगा। सुना है, उन लोगों ने मार-पीट भी की। बस यही डर है, किसी दिन यहीं न चली आए···।" गहरी साँस।

"चली आए तो तुझे क्या ?" दादा कह रहे थे, "अगले दिन जाकर रजिस्ट्री करा लेना। बीस रुपये पकड़ाना मजिस्ट्रेट को, साला अपने-आप एक महीने पहले की तारीख डाल देगा। चट मंगनी, पट ब्याह। कहे तो कल यह कन्यादान का भी पुण्य लूट लूँ···।"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। होने का आर्य-समाजी ढंग से तो घण्टे-भर में ही सारा मामला हो जाएगा। पर यार, समस्या यह है," बहुत चिन्तित होकर दर्शन ने कहा, "खिलाऊँगा क्या ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। ये ब्रस और कैनवास तो खायेगी नहीं। और इन प्राइवेट नौकरियों का कोई भरोसा है ?" वह कहीं दूर से खोया-खोया बोल रहा था।

"अबे यार, पढ़ी-लिखी लड़की है। वह खुद नहीं जानती कि किसके पास आ रही है ?" दादा ने लापरवाही से पूछा, "हाँ, तो उस दिन उसकी

बहन से और क्या-क्या बातें हुई'?"

"बस, वे जाने लगीं तो मैंने कहा, अगली बस से चली जाइये। मैं उन्हें स्टैण्डर्ड में ले गया। वहीं बड़ी देर सारी समस्या पर···।"

किस समस्या पर क्या बातें होती रहीं, यह सब फिर निन्नी को नहीं पता। उसे तो अचानक लगा, नुमायश में चलती रेल के ब्रेक अचानक टूट गए हैं और नीचे के खम्भे अचानक किसी ने हटा लिये हैं। बस, हवा में एक डिब्बा लटका है, जो चकरघिन्नी की तरह घूमे जा रहा है—सिर्फ घूमे जा रहा है। सैकड़ों तिलचट्टे चारों ओर मूँछें नचा-नचाकर उछल-कूद मचाने लगे हैं। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह दर्शन ही कह रहा है—वह दर्शन, जो उसके साथ नुमायश गया था, जिसने उसके साथ पेवेलियन घूमे थे, कुलचे खाये थे। पेट के अन्दर से कुछ उमड़ा चला आ रहा था और वह तकिये में मुँह ठूँसे लगातार उबकाई जैसी चीज को रोकने की कोशिश कर रही थी। जैसे सारी रात ऊबड़-खाबड़ रास्ते से सफर करता हुआ कोई छोटे से रोड-साइड स्टेशन पर पहुँचे और तभी सामने गाड़ी छुक्-छुक् करती निकल जाये। मन होता रहा कि गुसलखाने में जाकर कै कर आए तो बेचैनी कम हो। वह अपने को भूल कैसे गई? कैसे भूल सकी वह? एक बार भी मन में नहीं आया कि दर्शन सुन्दर है, स्वस्थ्य है? अपनी ओर भी तो देखती एक बार···

वह सारी रात करवटें बदलते और निश्शब्द रोते ही काटी।

उसे रह-रहकर यही धिक्कार और आश्चर्य हो रहा था कि इस तथ्य को वह कैसे भूल गई कि वह चित्रकार है—ऐसा कलाकार है, जो रूप को, दृश्य-सौंदर्य को पहले देखता है। उसे माध्यम बनाने या उसके पार जाने की बात तो उसके लिए बाद में आती है। शायद वह गन्दे पुल से होकर किसी भी सौंदर्य-लोक में जाना गवारा न करे। गंदा पुल अर्थात् कुरूप निन्नी···काली और बदसूरत। खैर, सुबह एक बात तो वह जरूर पूछेगी कि आपने हमें बताया नहीं। और थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसे अपने पर ही ऐसी झुँझलाहट होती रही कि मन होता, तड़ातड़ अपने चेहरे को

थप्पड़ों से सुजा ले। आखिर इस चेहरे और रंग को कहाँ ले जाए? भगवान कुछ और कर देता—उसकी आँखे खराब कर देता, बहरा बना देता, चेचक के दाग दे देता, लेकिन बस रग जरा-सा साफ दे देता। यह तो सबसे पहले दीखता है। इसे छिपाया भी तो नहीं जा सकता! काश, मरने की कोई बहुत आसान-सी तरकीब ही उसे पता चल जाती, जिसमें कष्ट न होता और यों ही सोती रह जाती···

आखिर उन सारी तसवीरों को पालने का आधार क्या था? एक छोटा-सा घर होगा, एक कमरे में बैठा-बैठा दर्शन पेंटिंग किया करेगा और वह रसोई में बैठी-बैठी रोज एक से एक स्वादिष्ट खाने बनाया करेगी···। बनाकर कमरे में जाकर कहेगी, "अब उठिए, कलाकार महाराज···!" सुबह उसके उठने से पहले सारे कमरे की सफाई कर दिया करेगी··सब कुछ करीने से लगा देगी···घर को ऐसा सजायेगी कि दूर से ही लगेगा कि हाँ, है किसी आर्टिस्ट का घर! साँझ को हम दोनों घूमने जाया करेंगे··· कभी कॉफी हाउस, कभी नुमायश·· खूब सजकर··!

हर करवट बदलने के साथ ही उसे अपने पर गुस्सा आता—आखिर इतने आगे तक जाकर सोचने की उसे क्या जरूरत थी? अपनी इस आदत से कभी छुटकारा भी मिलेगा या नहीं। कभी मन को समझाती—लेकिन वह सब मैंने सोचा कहाँ था! वह सब तो यों ही मन में आ गया था, और सच पूछो तो ऐसी सुन्दर बात सोचते वैसे भी उसका दिल धड़कता है। वही हुआ भी, लग गई न नजर? उसकी नजर भी कम्बख्त पत्थर-फोड़ है।

कमरे में ऐसी घुटन थी कि मन होता था जल्दी सुबह हो। जल्दी सुबह क्यों नहीं हो रही···जाने कितने युगों के बाद पड़ोस में हुक्के की गुड़-गुड़ सुनाई दी तो लगा ऊपर के रोशनदान का रंग पहले से फीका पड़ गया है।

गुसलखाने गई तो लगा, शायद आखिरी बार इस गुसलखाने में नहा रही है—और नल पर हाथ रखते ही देर तक खड़ी रही, गालों पर चुप-

चुप आँसू ढुलकते रहे। मन होता था नल की टोंटी पर दो-तीन बार माथा पीट ले—और कह दे पाँव फिसल गया···अभागिन! तेरे लिए कोई सुख, कोई सपना नहीं, तू यों ही मर जायेगी।

लौटी तो दादा उठ बैठे थे और मेज से शीशा उठाकर अपने एक गाल को जीभ की मदद से फुलाये मुँहासे की कील निकाल रहे थे। उनकी यह हरकत कभी उसे अच्छी नहीं लगी, लेकिन इस बार ध्यान नहीं गया। वे कह रहे थे, "लगता है तुझे नई जगह नींद नहीं आती।"

वह बोली, "हाँऽऽ," फिर याद दिलाया, "आज चलना भी तो है न?"

"हाँ, कपड़े अपड़े सम्भाल लो। साढ़े ग्यारह की गाड़ी से चलेंगे···। यहाँ से दस बजे ही रवाना हो जायेंगे। आफिस का टाइम है, कोई सवारी मिलने में भी वक्त लगेगा।" कहकर दादा झटके से उठे और ब्रश करते हुए बाहर निकले तो बुड्ढे की आवाज़ आई, "बरखुरदार!" शायद वे उसके पास ही चले गए। निन्नी का मन झुँझलाहट से भर गया—अब ये दो घण्टे उससे माथा फोड़ेंगे। यह तो नहीं कि जल्दी से आकर कपड़े-बिस्तर बंधवायें और सवारी लायें। अब यहाँ करना क्या है?

पता नहीं, इस कमरे से कैसी एक उदासीनता, विरक्ति हो गई थी कि एक पल भी रुकने को मन नहीं कर रहा था। लगता था जल्दी से जल्दी चलो, निकलो। भले ही वहाँ प्लेटफार्म पर बैठना पड़े? और निन्नी कुरसी पर बैठी, जल्दी-जल्दी बाल सुलझाती रही और बिखरी चीजों को देखती रही। आज बंगाली ढंग से केश फैलाए रखने की बात भी ध्यान में नहीं आई। पीछे दर्शन सो रहा था, एक बार भी उधर नहीं देखा।

"अरे निन्नी, आज जाने की खुशी में चाय-वाय कुछ भी नहीं?" एक अंगड़ाई के साथ दर्शन का स्वर पीछे से आया तो वह चौंक उठी। सम्भलकर बोली, "जी, अभी लाई। मैंने सोचा, आप सो रहे हैं।" बुझे-से ढंग से कहकर चल दी।

"तुम्हें देखकर तो इस चन्दू ने एकदम छुट्टी ही मना डाली।"

दर्शन कह रहा था। निन्नी अंगीठी के पास बैठी तो फिर आँसू उमड़ आए—वही अपनापन, वही अधिकार-भरा-स्वर, वही बरसों के परिचितों वाली घनिष्ठता। कैसे बोल रहा है, मानो कुछ जानता ही न हो… झूठा! धोखेबाज! मन होता था उसके दोनों कन्धे झकझोरकर पूछे, "तुमने कल मुझे यह सब क्यों नहीं बताया मक्कार ?

चाय लेकर पहुँची, दादा तब भी नहीं पहुँचे थे। उसे चाय लाते देखकर दर्शन खिल उठा। बोला, "तुम्हें देखकर कोई कह सकता है कि तुम लोग परसों ही यहाँ आये हो! लगता है….!"

लगता है, उसके हाथों की ट्रे अभी छूटकर गिर पड़ेगी—पकड़े रहने के प्रयत्न में दोनों कलाइयों की नसें उभर आईं।

"अरे रम्मी को भी तो बुला लो।" दर्शन ने पुकारा, "ओए रम्मीऽऽ।" निन्नी ने ट्रे जमीन पर रख दी और झुकी-झुकी एक प्याला चाय बनाने लगी। वह कुछ सोचता-सा-बोला, "कुछ दिन तो मेरा मन भी नही लगेगा। ये दो-दिन तो पता भी नहीं लगे।" निन्नी का मन हुआ, जोर से डाँट दे। झूठ मत बोलो। ये सब कहे बिना भी चलेगा! देखने में कैसे सीधे, भोले-भाले लगते हैं—मानो कुछ पता ही नहीं है। प्याला दर्शन की ओर बढ़ाया तो पूछा, "और तुम ?" फिर जाने कैसी निगाहों से गौर से उसे देखते हुए कहा, "निन्नी, आज अगर तुम लोग और रुक जाओ तो तुम्हारा एक प्रोफाइल बना डालूं।" आलस्य या विचारों में डूबा वह खुद ही कहता रहा।

गरम सलाख-सी कोई चीज उसके भीतर चुभती चली गई।

"बहुत कुरूप हूँ न ?" इस बार तड़ाक से मुँह से निकला। न रोना आया, न गुस्सा। सिर्फ बेबाक निगाहों से सीधे उसे देखती रही, और भीतर के उद्वेग को होंठ कसकर रोके रही। एक झटके के साथ लमहे-भर के लिए किसी चित्र-प्रदर्शनी में दीवार से लटका एक पोर्ट्रेट कौंध गया…ऑइल-कलर के खुरदुरे रंग और एक लड़की का दयनीय चेहरा…

नीचे शीर्षक: 'कुरूप काली लड़की।' "तुम्हें अपनी कला के खिलवाड़ के लिए ही तो मेरा चेहरा चाहिए न ?"

"च्यु···च्यु, कैसी बात बोलती हो निन्नी ?" दर्शन बहुत ही आहत अफसोस से कह रहा था। व्यथित-स्वर में बोला, "इसीलिए तुम्हारा पोर्ट्रेट बनाना चाहता हूँ क्यों ?" चाय का एक घूंट जैसे-तैसे सटका "दो दिनों में यही समझी हो क्यों ?"

वह जल्दी-जल्दी अपने बैग में बिखरे कपड़े लगाने लगी। लगा, अब किसी भी तरह अपने पर नियन्त्रण न रखा जा सकेगा, और वह फूट-फूट कर रो पड़ेगी। साथ ही मन में एक अजब क्रूर-आत्मघाती सन्तोष भी था कि बिलकुल ठीक जवाब दिया! अचानक दादा को आते देखा तो जबर्दस्ती खाँसने लगी। वे बुड्ढे के पास से गुसलखाने चले गए थे और वहाँ से मुँह पोंछते हुए कल की तरह शैतानी से नहीं, बड़े धीरे-धीरे गम्भीर भाव से लौट रहे थे।

शायद-दर्शन भी सकपका उठा। सम्भलकर पूछा, "आज क्या पुराण ले बैठा यार ?" निन्नी बाहर सूखते कपड़े समेटने चली गई थी। दर्शन ही दादा के लिए चाय बनाने लगा।

निन्नी को लगा जैसे दादा ने एक गहरी और शंकालु निगाहों से उसे देखा, और सारा वातावरण एक मनहूस-संजीदगी से भर उठा। निन्नी के कान भीतर ही लगे थे···जाने कैसे उसे लग गया था कि कुछ है, जो उसके ही बारे में है।

दादा कुछ नहीं बोले तो दर्शन ने ही पूछा, "बूढ़ा कुछ कह रहा था क्या ?"

"कुछ भी नहीं···उसके पास कुछ कम है कहने को ?" दादा ने उसी अन्यमनस्क भाव से कहा।

दर्शन दादा को तौलता रहा, फिर जल्दी से बोला, "अरे, कहा और क्या होगा ? अभी तो पन्द्रह-बीस दिनों उसके पास यही टॉपिक रहेगा कि—कि मैं निन्नी को लेकर नुमाइश चला गया—कल मैं बाथरूम में

गया, तो चन्दू से पाँव दबवाते हुए उसे यही सुना रहा था, 'बोलो, एक दिन कोई तुम्हारे यहाँ आकर ठहरा और तुम उसकी बहन को लेकर नुमायश चल दिए ! पूछो, यह शराफत है ? क्यों है कि नहीं ?' "

निन्नी लौट रही थी । कन्धे पर सूखे कपड़े थे । दादा के चेहरे की ओर देखा तो लगा, शायद यही बात थी । लेकिन उन्होंने झटके से सारी चिन्ता को दूर फेंककर कहा, "कुछ नहीं यार, मै तो अपने इंटरव्यू की ही बात सोच रहा था···वो सब कुछ नहीं । बुड्ढ़ा अपने पंजाब की प्रापर्टी बखान रहा था—।" और दादा उठ खड़े हुए, "अरे भई, अब टाइम नहीं रह गया !"

शायद बाहर के संकेतों में झूलता हुआ, ऐसा ही कोई अप्रत्यक्ष प्रभाव या बोझ रहा होगा कि दर्शन ने दादा से एक बार भी रुकने का आग्रह नहीं किया । दादा कपड़े बदलने लगे तो दर्शन ने किताबों का पैकेट कुरसी पर रखकर कहा, "ये तुम्हारे लिए किताबें हैं । पढ़कर बताना ।" निन्नी ने उठाने की जल्दी नहीं की, बस स्वीकृति में सिर हिलाया—ठीक है ।

और जब सारा सामान ताँगे पर रखा जाने लगा तो निन्ना को सचमुच भीतर से अफसोस होने लगा कि एक-डेढ़दिन को आई और इन्हें यों लांछित और दु:खी करके जा रही हूँ—। रहने का कष्ट, समय-धन का खर्च अलग—और उसका मन बिलकुल ही एक अलग तरह की कृतज्ञ-कातरता से उमड़ने लगा ।

"आपको हमारी वजह से सचमुच बड़ा कष्ट हुआ ।" ताँगे में आगे दर्शन बैठा था, पीछे निन्नी और दादा । दर्शन खुद ही आगे चला गया था । चन्दू का एकदम यों अदृश्य हो जाना अब निन्नी की समझ में आ गया ।

"अरे कष्ट मुझे क्या, आपको खुद ही हुआ । मेरा भी सारा काम आपने ही किया—और आप तो खुद इतनी गुणी हैं कि—" दर्शन सामने देखता रहा ।

शायद यह वातावरण का बोझ ही था, जो उसे काल के निःसंकोच व्यवहार से खींचकर फिर 'आप' पर ले गया, या शायद निन्नी का जवाब उसे कहीं गहरे चुभ गया था। दर्शन की बात से उसके सामने सजी हुई थाली और साफ-सुथरा कमरा आ गया। फिर भी उसी उद्धत दुष्टता से कोई अन्दर बोला, सिर्फ गुणी हूँ न···सुन्दर तो नहीं हूँ न? अपनी कमजोरी को साफ क्यों नहीं बताते?

स्टेशन पर निन्नी को लगा जैसे वह अलग से कुछ कहने को अकुला रही है। खुद भी एक अपराध का बोझल-कुहासा उसे विगलित किए दे रहा था। जरा-सी बात से दो दोस्तों के बीच एक अवांछनीय तनाव आ गया। इस सबमें इस बेचारे का क्या कसूर? सभी कुछ तो उसने अपनी तरफ से सोच लिया था। दादा टिकट लेने लगे तो उसके हाथ से थैला लेते हुए दर्शन ने कहा, "लाओ···लाओ न, मुझे दो···जाकर खत लिखोगी न? देखो, मेरा मतलब—।" निन्नी ने सिर हिला दिया। सोचा, सचमुच उसे दर्शन से माफी माँगनी चाहिए। खत में ही लिखेगी। "पता है?" धीरे से पूछा। "है!" कहकर उसने देखा, दर्शन के चेहरे पर एक बार फिर काला बादल घिर आया। दादा ने आकर इस धर्म-सकट से छुड़ाया।

गाड़ी दिल्ली से ही चलती थी और खाली थी। वह भीतर खिड़की के सहारे बैठ गइ, ये दोनों बाहर खड़े रहे। दादा दर्शन से बोले, "अच्छा तो तू चल। फिर क्यों बेकार आज भी लेट हो रहा है—।"

"चला जाऊँगा, यार।" दर्शन ने लापरवाही से कहा, लेकिन भीतर की चिन्ता और उदासी बाहर छलकी पड़ रही थी। दादा ने एकाध जगह मिलकर सूचनाएँ लेने का काम उसे सौंपा। जब गार्ड ने सीटी दी तो उसने दोनों हाथ जोड़कर सचमुच व्यथा से कहा, "दर्शन जी, हम लोगों के कारण वाकई आपको बड़ा कष्ट हुआ। कोई अनुचित बात कह दी हो तो माफ कीजिएगा। मुझे बातचीत करने की तमीज नहीं है।" निन्नी उस समय बड़ी ईमानदारी से पोर्ट्रेट वाली बात के लिए ही

माफ़ी माँग रही थी। वह बदतमीजी तो थी ही—उस बेचारे का उसमें ऐसा क्या गूढ़ अर्थ छिपा था ?

"नहीं, नहीं—निन्नी जी, ये दिन वाकई याद रहेंगे। तकलीफ तो आप लोगों को हुई। बहुत शर्मिन्दा हूँ। रम्मी, यहाँ की कोई बात माइण्ड मत करना—।"

"नहीं, नहीं, यार, क्या बात करता है !" दादा बोले। गाड़ी हिली और धीरे-धीरे सरकने लगी। तब अचानक निन्नी को लगा, जैसे किसी अपने बहुत ही घनिष्ठ और आत्मीय को छोड़कर सदा के लिए बहुत दूर—बहुत दूर चली जा रही है। उसकी आँखें भर आईं। भरे गले से कहा, "उधर भी आइए।" फिर जाने क्या सोचकर मुनाकर—"शादी की मिठाई लाना मत भूलिए—।" निचला होंठ दाँतों से दबाकर रुलाई रोकती रही।

गाड़ी तेज हो चुकी थी। निन्नी की यह बात पता नहीं दर्शन ने सुनी या नहीं, लेकिन सिर पर हिलता रूमाल अचानक जहाँ का तहाँ रुक गया।

निन्नी के भीतर एक अजब गुदगुदी और रुलाई साथ-साथ उमड़ने लगी। अब माफ़ी माँग रहे है—। रूमाल पीछे छूट गया और सड़क के पुल के नीचे से गुजरकर रेल धीरे-धीरे मुड़ने लगी—। निन्नी होंठ काटती यों ही सूना आँखों गुजरती सड़कों और बिल्डिगों को ताकती रही। उसके और दादा के बीच एक ऐसी बर्फीली-चुप्पी, एक ऐसी परिचय-हीनता का भाव आ गया, मानो उनके बीच के आकाश को निकालकर किसी ने फेंक दिया हो। वे दोनों अपने में डूबे थे। बड़ा मनहूस क्षण लगा था वह।

आखिर जबर्दस्ती मुस्कराकर दादा ने पूछा, "पसन्द आई दिल्ली···?"

निन्नी चुप ही रहना चाहती थी। उसे दादा पर गुस्सा आने लगा। इन्हें इसी फालतू बूढ़े ने कुछ बता दिया, और उसीको लेकर सारा

वातावरण खराब किए जा रहे हैं। मुझसे भी तो पूछते कुछ। उनकी बात के जवाब में कह दिया, "ठीक ही है···बहुत बड़ा शहर है···।"

"नुमायश ?" दादा ने डरते-डरते पूछा।

निन्नी को लगा, भीतर के विस्फोट को अब संभालना मुश्किल है। जी मे आया, चीख-चीखकर कहे, हाँ, हाँ मैं अकेली दर्शन के साथ नुमायश देखने गइ थी—घूमी थी। फिर कहो, क्या कहना है ? आप नहीं आए तो क्या करती ? साढ़े चार तक राह नहीं देखी थी ? और यह सारा अनभिव्यक्त क्रोध आसुओं के रूप मे उमड़ा पड़ रहा था। मुश्किल से कह दिया, "एक दिन मे जितनी देखी जा सकती थी, देख ली।" मन में किसी ने कहा, 'हाँ, नुमायश ही तो थी सारी, दिखावट ही ···कैसी अच्छी नुमायश देख ली···अब और क्या चाहिए—?'

गाड़ी अब कल की नुमायश के पास से होकर गुजर रही थी। कैसी उजाड़ और सूनी-सूनी थी, जैसे लुटा हुआ लश्कर पड़ा हो। न रात की चमक-दमक थी, न रोशनी···। धूप में सब कुछ बड़ा फीका, बेरंग लग रहा था। कल इसकी भूल-भुलैया मे वह चकरा गई थी क्या ?

डिब्बे से झाँकते हुए निन्नी को ऐसा लगता रहा, जैसे वह घर नहीं, एक निहायत ही अपरिचित और अनजानी जगह चली जा रही हो··· पिछले सारे परिचय-सम्पर्क घुल-मिलकर एकाकार हो गये थे···और लगता था जैसे पीछे का सारा इतिहास टूट गया है···और आगे रह गया है एक शून्य-फैलाव··। और उसी निराकार-अधर में उसे यह रेल लिये चली जा रही है···। वह नितान्त-अकेली है, निपट-निस्संग···। मन में घबराहट है, पता नहीं किस सफर पर निकल पड़ी है वह···।

उतरती सीढ़ियों के अन्धेरे मोड़

फिर अचानक निन्नी ने अपने को एक ऐसी प्रतिद्वन्द्विता में खड़े पाया, जिसमें वह अपने विरोधी की शक्ल-सूरत, व्यक्तित्व किसी से भी परिचित नहीं थी—बस, यह जानती थी कि जैसे भी हो यह लड़ाई जीतनी है···।

लौटते ही उसने दर्शन को कृतज्ञता से भरा एक छोटा-सा खत लिखा, "सचमुच, दिल्ली के वे दिन मुझे हमेशा याद रहेंगे···।" जवाब में दर्शन का पत्र आया। उसमें उलटी कृतज्ञता प्रकट की गई थी, "आप लोग मेरे यहाँ आकर ठहरे, यहाँ सुख-सुविधाएँ तो खैर क्या थीं ··परेशानियाँ ही परेशानियाँ तो थीं···।" फिर अन्त में लिखा था, "तुम मेरी पोर्ट्रेट वाली बात को इतनी गलत समझोगी, इसकी मुझे तुमसे उम्मीद नहीं थी। सारे दिन हम लोगों के बीच जो मैत्री और आत्मीयतापूर्ण निकटता आगई थी, उसी के आधार पर मैंने ऐसी इच्छा प्रकट की थी—उसके पीछे कतई कोई और मतलब नहीं था। मुझे सपने में भी ख्याल नहीं था कि बात तुम्हें इस हद तक दुखी कर देगी। मैं माफी माँगता हूँ···माफ कर दोगी न?"

निन्नी ने जवाब दिया, "माफी मुझे माँगनी चाहिए। सचमुच उस दिन बड़ी बदतमीजी हो गई···पता नहीं, मुझे कभी-कभी क्या हो जाता है! कभी-कभी भान ही नहीं रहता, किससे क्या कह रही हूँ और अपने बहुत निकट व्यक्तियों को अकारण नाराज कर लेती हूँ! लेकिन इससे खुद मुझे दुख कम होता हो, ऐसा नहीं है। उस दिन बहुत घूमने या उलटा-सीधा खाने-पीने से ऐसा हो गया था। उस समय तो आपके साथ बातों में नुमायश में पता नहीं चला, लेकिन रात ठीक से नींद नहीं आई···। सच पूछो, तो, आपके साथ के वे दिन ही पता नहीं चले··· ।"

दर्शन ने लिखा, "यह बात तो मुझे कहनी चाहिए थी। उस अन-जान-लोगों के शहर में, जहाँ बातचीत, आचार-व्यवहार, हर चीज़ से आदमी पराया और अजनबी महसूस करता है, वहाँ यों अचानक आकर इतने अपने बनजाने वाले लोग कितने हैं ? सच निन्नी, मुझे तो ऐसा लगने लगा है, जैसे हम लोग जाने कब के, और जाने कितने घनिष्ठ परिचित हैं···।"

"परिचय की यह घनिष्ठता मेरे लिए कैसी मूल्यवान है, शायद आप इसे नहीं जानते।" निन्नी ने लिखा, "एक तो कभी घर से ही निकलना नहीं हुआ, फिर घर से अलग बाहर वालों के बीच तो समझिए, कालेज ही जाना होता है। बहुत ही डर रही थी कि पता नहीं, दादा किन लोगों के बीच ठहरा दें। अब यही अफसोस होता है कि एकाध दिन और रुक जाते, तो कम से कम दिल्ली तो ढंग से देख लेते···। आपके साथ देखी नुमायश तो ज्यों की त्यों याद है···। पोर्ट्रेट वाली बात की अब याद मत दिलाइए, मैं बहुत ही लज्जित हूँ···। आपके प्रति मन में जो आदर और श्रद्धा है, उसे कहकर ही जताना जरूरी है क्या ?" निन्नी ने यहाँ 'आदर' और 'श्रद्धा' शब्द दिये थे, और कलम घण्टे-भर 'प्यार' शब्द लिखने के लिए लाइन पर मंडराती रही थी। आखिर हिम्मत पड़ी ही नहीं।

दर्शन ने पत्र लिखा, "सच, निन्नी, वह बात तुमने साफ कर दी, मेरे मन का बोझ हट गया। वरना अपनी ही बात मुझे सारी जिन्दगी सालती रहती। तुम्हारा हृदय सरल है, और सरलता ही सबसे बड़ा सौन्दर्य है। तुम्हारा दिल दुखाकर मुझे क्या मिलता, बोलो ? तुमने तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा। उलटे वे दो-दिन, वह अपनेपन से भरा व्यवहार, और विशेषरूप-से वह स्वादिष्ट भोजन अभी भी यहाँ की जिन्दगी के अन्तर्विरोध को सामने ला खड़ा करता है···। अच्छा, एक बात बताओ, क्या रम्मी को यही बात बुरी लगी थी कि तुम मेरे साथ घूमने क्यों चली गई ? यहाँ बुड्ढा कहता था कि उसने बहुत बुरा माना

है। लेकिन उसे खुद मुझसे यह बात कहनी चाहिए थी···।"

निन्नी ने उत्तर दिया, 'दादा से इस बारे में कुछ नहीं पूछूँगी। वे शायद शीघ्र ही बंगलौर या कहीं दक्षिण में चले जाएँ। हाँ, लगा मुझे भी है कि उनकी उस बुड्ढे से कुछ ऐसी बातें हुई हैं। लेकिन आप परेशान क्यों होते हैं? जब मैंने ही बुरा न माना, तो किसी तीसरे के बुरा मानने से क्या होता है। मैं समझदार हूँ, और एम० ए० फाइनल में आ गई हूँ। अपना भला-बुरा खुद समझती हूँ···।" उसी पत्र में कहीं बीच में, बड़े झिझकते हुये लिख दिया, "आपका वह खुला मधुर-व्यवहार ही अब मन-आत्मा पर छाया रहता है···।"

और इस पत्र के बाद वह धड़कते दिल से राह देखता रही, दर्शन जाने क्या लिखेगा, जाने क्या अर्थ लगायेगा। बड़ी बेचैनी थी, और खत पोस्ट करने के बाद ही एक तनाव-भरी प्रतीक्षा शुरू हो गयी थी···।

वस्तुत: उन दिनों प्रतीक्षा और प्रत्याशा के तनाव में ही हर समय बने रहना उसका स्वभाव हो गया था। वे दिन उसने कैसे गुजारे हैं, वही जानती है इस कमरे में जाती, तो लगता, उस कमरे में कोई बुला रहा है। कालेज जाती, तो घर लौटने की जल्दी पड़ी रहती, और घर रहती तो कालेज जाने को मन बेचैन रहता। लगता, जैसे किसी भी क्षण कोई मधुर और अप्रत्याशित बात होगी···और कहीं वह उस क्षण को चूक न जाए, इसलिए भीतर एक चौकन्नी उत्कंठा छाई रहती। यह मानसिक तनाव, पता नहीं, अपने प्रतीक्षा करते रहने के कारण था या ऐसा लगता रहने के कारण था कि कहीं कोई उसकी प्रतीक्षा कर रहा है···। वह हमेशा कालेज ऐसे समय निकलती जब पोस्टमैन उसे बाजार में ही मिल जाता। वहीं उससे पत्र ले लेती। घर से बाहर कहीं भी जाती, तो लगता रहता, कहीं पीछे से दर्शन का पत्र न आया हो; कहीं कोई खोल ले और जब वह जाए तो एक तूफान खड़ा मिले···कैसे सामना करेगी वह उस तूफान का···?

प्रत्याशा और प्रतीक्षा की इस उठा-पटक के साथ-साथ मन हमेशा किसी अनजान-अघटनीय की आशंका से भी धड़कता रहता…यह गलत हो रहा है…वह खुद गलत कर रही है और दर्शन भी गलत कर रहा है। अपराध और पुलक की भावनाएँ हमेशा दो ज़िद्दी चीलों की तरह मन के आकाश में मँडराया करतीं। वह समझ नहीं पाती कि वास्तव में वह किस विशेष-भावना से अधिक आच्छन्न है।

सबके ऊपर था एक सन्तोष; मन के भीतर कुलबुलाती एक अजीब-सी आशा…। कभी-कभी आदमी जो प्रत्यक्ष कर या कह नहीं पाता, वह पत्रों से हो जाता है। आदमी के मन को जीतने के अनेक तरीके हैं; अनेक स्तर और अवस्थाएं हैं। आमना-सामना होने पर सबसे पहले साक्षात्कार रूप का होता है। फिर शील और व्यावहारिक-शिष्टाचार आते हैं, तब गुण आते हैं और अन्त में…लेकिन सबका लक्ष्य बनकर आती है भावना और वही भावना वास्तविक सम्बन्धों का रूप स्थिर करती है…।

जाने क्यों, उसे लगने लगा कि जो काम शील और रूप नहीं कर पाए, उसे वह शायद भावनात्मकता से कर सकेगी…। शायद इस 'आत्मीय-घनिष्ठता' के पौधे को सींच कर ही उस दुर्लभ आसमान की निकटता को पा लेगी। उसे याद है, जब पहली बार उसने झिझकते-झिझकते बड़ी मुश्किल से लिखा था पत्र के नीचे 'आपकी', तो सारे शरीर में पसीना आ गया था और दिल इस तरह धड़क रहा था, जैसे पहली बार चोरी कर रही है! खत डालने तक कोई उसे कोंचता रहा कि यह काट कर ऊपर के 'आदरणीय' के अनुरूप ही कुछ लिख दे… लेकिन वह बहुत भीतर बैठी निर्विकार 'निन्नी' नहीं मानी। हर बार हाथ पकड़ लिया और कन्धे पर चिबुक रखकर धीरे से कान में बोली, 'देख तो सही, आखिर हर्ज क्या है…अनजान-जगहों पर यों ही टोह-टोहकर बढ़ा जाता है…।' और अक्सर उसे उस निन्नी की बात का विश्वास हो जाता—क्या ठीक है, कौन-सी बात मन को छू जाए… कलाकार आदमी है!

निन्नी को लगता, दर्शन के पत्र बहुत देर-देर से आते हैं। इतनी प्रतीक्षा बहुत कष्टदायक है। लिखा, "मैं आपका बहुत समय नष्ट कर रही हूँ न? आपको मुझे पत्र लिखने पड़ते हैं। इतने समय मे तो आसानी से कोई चित्र, कोई स्केच बना सकते है। अगर ऐसी बात हो, तो मुझे निस्संकोच बता दें···मैं नही लिखूँगी। मैं नही चाहती, मेरे कारण आपका किसी प्रकार का नुकसान हो। मैं तो चाहती हूँ कि आप खूब सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाएँ, आपका खूब नाम हो। आपके चित्रों की प्रदर्शनियाँ हुआ करें, अखबारों मे चर्चा हो, हम इसी में गर्व किया करेंगे कि आपको जानते हैं···।" फिर अन्त में जोड़ दिया, "आपने जो चित्र-कला पर पुस्तकें दी थीं, उन्हे मैं अक्सर समझने की कोशिश करती हूँ···। कुछ और प्रारम्भिक पुस्तकें आप नही सुझा सकते? ये तो आपने अपने स्तर की किताबें दे दी। मेरे पास खूब सुरक्षित है, जब भी चाहे माँग लें। फिर भी आपके परिचय से इतना तो होना ही चाहिए कि कम से कम चित्रों को ही समझ-समझा सकें। अब तो कोई पूछता है तो चुप रह जाते हैं; कुछ भी नहीं बता पाते। आप बस नाम लिख दें किताबों के, मैं यहाँ कहीं से ले लूंगी। मैं राह देखूँगी।" और इस बार काफी कलम दबाकर, जरा बोझिल होकर 'आपकी' लिखा—उसके आगे 'ही' इस बार भी नही लगा पाई।

और तीन-चार महीने यह सारा पत्र-व्यवहार चला। इस बीच निन्नी की हालत एकदम पागलों जैसी हो गई—न पढ़ने में जी लगता था, न लिखने में। जब देखो, तब वह मन ही मन दर्शन को पत्र लिखा करती और उसके पत्रों को दस-दस बार पढ़ती। उसका सोचना अब सोचना नहीं रह गया था, केवल दर्शन को लिखे जाने वाले पत्रों की भाषा रह गयी थी। किसी से लड़ती, तो उसके क्षोभ को दर्शन के पत्र में लिखी जानें जाने वाली भाषा में सोचती; खुश होता, तो उस खुशी को दर्शन को लिखते हुए ही कल्पना करती, "तुम्हें पता है, आज मैं बहुत खुश हूँ, क्योंकि बहुत दिनों बाद मुझे टेबिल-लैम्प मन लायक मिला है···" या "मालूम

है, कल हमारे साथ क्या हुआ ? कालेज में एक लड़का है—द्विवेदी। उसने ऐसी बदतमीजी से मेरी एक सहेली के पास से साइकिल निकाली कि अभी भी मन होता है, जाकर सैंडिल से मरम्मत कर डालूं। · यहाँ के रिक्शे वाले ऐसी बेहूदी गालियां दे-देकर आपस में बातें करते हैं कि तोबा···इन्हें इतना भी खयाल नहीं है कि लेडीज बैठी हैं।" "कल हमारे यहाँ सारे दिन बिजली ही नहीं आई···।" ये सारी बातें वह दर्शन को पत्रों में लिखने की कल्पना करती। सोते-सोते अचानक उसके किसी पत्र की लाइन ध्यान आ जाती, तो झट उठकर बत्ती जलाती और दुबारा पढ़कर जब तक अपनी आँखों विश्वास न कर लेती, उसे चैन ही न आता। "मैं आज तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करता रहा। आया, तो बड़ा सुख मिला।" इन पंक्तियों को उसने न जाने कितनी बार पढ़ा होगा। उसके पत्र दर्शन को सुख देते हैं ? उसके पत्रों की वह प्रतीक्षा करता है ? एक बार उसने लिखा, "तुम्हारे पत्र पढ़ते हुए मुझे ऐसा नहीं लगता कि कुछ लिख-पढ़ रहा हूँ। लगता है, तुम्हारे सामने बैठकर तुमसे ही सब सुन रहा हूं। पत्र लिखने की तुम्हारी शैली बड़ी निर्व्याज है···तुम्हारी ही तरह आत्मीय···।" आगे निन्नी ने अपनी ही ओर से जोड़ दिया, 'और तुम्हारी ही तरह कुरूप !'

लेकिन नहीं, इस बार इस शब्द में पहले वाली पीड़ा और कचोट नहीं थी, थी एक अजब तटस्थता। वह उसे और भी आत्मीय होकर खत लिखती। सोचा, पत्रों में कोई काम बताती रहूं, तो शायद अपने को, उसको (और अगर कभी जरूरत पड़ी तो बाहर वालों को) पत्र-व्यवहार का एक ठीक बहाना रहेगा···।"

"इस बार एक नई-बुनाई सीखी है, आपके लिए बहुत अच्छा पुलोवर बनाऊँगी। पहले सोचा था कि अचानक एक दिन जब आपको पुलोवर मिलेगा, तो आप कैसे चकित रह जायेंगे, लेकिन फिर विचार स्थगित इसलिए करना पड़ा, अगर आपके नाम का नहीं बना, तो व्यर्थ ही विनोद में चीज खराब हो जाएगी। आप अपना नाप भेजेंगे ?"

ऊपरी बेचैनी, भय, आशंका के बावजूद, सच पूछो तो अपने पत्रों की इस प्रगति से निन्नी बहुत अधिक सन्तुष्ट थी। धीरे-धीरे उसके लहजे में झिझक और संकोच कम होते चले जा रहे थे। अब वह अधिकार से काम बताती और पत्र न आने पर शिकायत और उलाहने देती। अक्सर ही दिल्ली के मधुर दिनों की याद दिलाकर किसी वैसे ही अवसर की कामना करती या उसे अपने नगर में बुलाने के निमन्त्रण देती। भीतर कहीं दबी-छिपी दुष्ट-सी आशा अब इतनी स्पष्ट हो गई थी कि वह बाकायदा उसे ही लक्ष्य बनाये हुए थी—शायद वह धीरे-धीरे अपनी इस भावनात्मक पकड़ से उसके मन में अपनी जगह बनाकर उसके मन से उस लड़की को निकाल फेंकने में सफल ही हो जाए···इस तरह की बातें भी तो अक्सर हो ही जाती हैं! कौन जाने इन पुरुषों के मन में कौन-सी बात किस तरह बैठ जाए! वह कोई भी काम करती, कपड़े धोकर सुखाती, तो मन ही मन उस लड़की को चुनौती देती कि वह इस तरह कपड़े धोकर थोड़े ही सुखा सकती है! खाना? खाना तो उसकी ट्रम्प-चाल है···जरूर पंजाबी लड़की होगी! इन पंजाबी लड़कियों से तो बस, बनना-संवरना ही आता है, काम-धाम ये लोग क्या जानें! और उसे विश्वास हो गया था कि वह हर काम को जिस तरह करती है, 'वह लड़की' उस ढंग से कर ही नहीं सकती। कभी सोचती, आखिर सजना-संवरना भी तो सीखना ही होगा! वह चुप-चुप तरह-तरह के पाउडरों और लिपिस्टिकों के शेडों की जानकारी इकट्ठी करती···।

समय-समय पर वह दिल्ली जाने के सम्भव-असम्भव बहाने सोचा करती—कैसे वह अचानक वहाँ जा पहुँचेगी। समान कुछ भी नहीं होगा। कहेगी, एक सहेली से मिलने आई थी, सो आपसे भी मिलने चली आई··· या कल्पना करती · और दिन-भर बैठे-बैठे कल्पनाओं में जीना उसका स्वभाव हो गया था। वह दिवास्वप्न देखती, जैसे अचानक कालेज जाने की बजाय वह दिल्ली पहुँच गयी है और ताँगे में बैठकर दर्शन के कमरे पर आ गई है···। वह आँखें बन्द करके रास्ते का एक-एक मोड़ याद

करती और अपने को दर्शन के कमरे के सामने उतरता हुआ देखती। कमरे पर कोई नहीं है, चन्दू से ताली लेकर ताला खोलती है। कमरे में अकेली खड़ी है, देखती है कि वह फिर पहले की तरह अव्यवस्थित हो गया है···। वह जल्दी-जल्दी सारी चीज़ें संवार देती है और दर्शन की प्रतीक्षा करती है ··।

उस अनजान लड़की के विरुद्ध सोचने मे न तो उन दिनों कुछ अनुचित लगता, न अपराध। बल्कि सोचती, एक गलत लड़की के दुष्प्रभाव से वह उसे बचा ही रही है । कला के क्षेत्र में एक प्रतिभा की रक्षा के लिए उसे यह 'क्रूरता' करनी पड़ रही है। वह कामना करती, मान लो, एक दिन अचानक ही वह लड़की मर जाए या दर्शन को धोखा देकर दूसरी जगह शादी कर ले···तब तो उसके पास कोई विकल्प ही नही रह जाएगा ··। लेकिन वह यह भी जानती थी कि वह लड़की उससे रूप-गुण में बहुत आगे है, और मरने वाली भी नही है। एकाध बार तो उसका मन हुआ, किसी से कोई मन्त्र या टोटका पूछे। कभी-कभी ऐसी चीजों का भी असर होता है ! बहुत बार दर्शन को लिखते-लिखते कलम रुक गई, आप कम से कम एक बार हमें भाभी की तसवीर तो भेज दें···।" मगर 'उस लड़की' को देखने की दुर्दमनीय इच्छा को किसी तरह दबाये रही, कभी भी उस तरह का कोई संकेत नही किया। क्यों अपनी ओर से कुरेदकर याद दिलाए ? हो सकता है, इन दिनों वह दर्शन के मन से उतर ही रही हो ··।

जीवन की एक अजब कृतार्थता से उसका मन हमेशा उमंगा-पुलका रहता। हर समय किसी को बताने की इच्छा होती रहती, देखो, मुझे भी कोई 'मधुर' पत्र लिखता है···मेरा भी कुछ है, जो किसी को अच्छा लगता है ! उसके पास भी एक रहस्य छिपा है ! 'इम्तहानों' में फेल किए जाने के पिछले सारे तल्ख धुल गए थे। एक अनुभूत-उत्साह हमेशा हृदय में छलकता रहता। कभी दौरा-सा आता और सारे रविवार को लगकर वह घर साफ कर डालती, अपने और भाई-बहनों के कपड़े

धोती···रसोई में तरह-तरह की चीजें बनाने में दिलचस्पी लेती। पहले वाली तटस्थता और वैराग्य की भावनाएं खुद-बखुद जाने कहाँ चली गई थी। कौन-सा काम कैसे होता है, सब कुछ सीखने की कोशिश करती। कहीं अवचेतन में अव्यक्त-सा कुछ आता—आखिर उसे भी तो अपनी गृहस्थी चलानी है।

जीजाजी उन दिनों आये थे गीता जीजी को लेने। वे सब लोग सन्ध्या को छत पर बैठे-बैठे गप्पें लड़ा रहे थे। अनुपम मुँडेर के पास खड़ा नीचे पतंग लटकाए उड़ाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन जब डोर खींचता, पतग खट से दीवार से जा टकराती। जीजी दीवार के सहारे एक छोटे-से खटोले में अपने मुन्ने को लिटाए बोतल से दूध पिला रही थी। दूध देखकर कोई नजर न लगा दे, इसलिए वे हमेशा बोतल पर कपड़ा लपेटे रहतीं। काली-काली चमकदार आँखों में टुक-टुक ताकता हुआ मुन्ना गुटर-गुटर मुँह चलाकर दूध पी रहा था। दोनों हाथों से बोतल को जिस ढंग से पकड़े था, उसे देखकर निन्नी का शरीर अनजाने ही झुरझुरा आया···एक विचित्र रहस्यमय-रोमाँचित दिलचस्पी के साथ वह उसे देखती रही। मुन्ने के मुँह मे जाती दूध की धारा को वह सचमुच अपने हलक में महसूस कर रही थी।

"हमें तो इस कलमो की चिन्ता नही सोने देती।" सुना, तभी अम्मा उसके बारे में ही कह रही है, "जाने क्या होगा इसका, भगवान जाने···!"

निन्नी भुनभुना उठी, "क्या माँ, तुम भी हमेशा···।"

जीजाजी उसके पास ही बैठे थे। उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "अरे, कुछ नही माताजी, आप देख लीजिए, यही सबसे ज्यादा नाम करेगी···यही सबसे ज्यादा सुखी रहेगी।" फिर उसके हाथ को जबरदस्ती अपनी हथेली पर फैलाकर कहने लगे, "काली कहाँ, यह तो सांवली है। और इसके हाथ की लाइनें तो देखो, कैसी हथेली फोड़कर बाहर निकली जा रही है···। और माताजी, लड़कियों को जहाँ अच्छा घर-बार मिला

कि अपने-आप सुन्दर हो जाती है। आदमी जब भीतर से खुश होता है। तो बाहर भी चेहरे पर चमक आ जाती है। आप अपनी गीता को ही देख लीजिए, कैसी भेजी थी···?"

"अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते रहो···!" गीता जीजी वहीं से बोली।

निन्नी को उस दिन की कोई बात याद हो या न हो, यह जरूर याद है कि उसका रंग काला नहीं, साँवला है, और आदमी जब भीतर से खुश होता है, तो बाहर से अपने-आप सुन्दर दीखने लगता है। यही बात उसे दिल्ली में दर्शन के यहाँ भी मन में आई थी। अच्छे से अच्छे रंग और नक्स का चेहरा अगर मनहूस और मुर्दा हो, तो कुरूप और भद्दा लग सकता है, और भीतर की पुलक कुरूप से कुरूप चेहरे पर विश्व-मोहिनी मुसकान के इन्द्रधनुष खिला सकती है। और निन्नी हर व्यक्ति का चेहरा देखकर सोचती, सुन्दरता वास्तव में क्या है ? भीतर की प्रसन्नता ही तो है···। मुन्ने को ही लो। तन्मय होकर दूध पीने की क्रिया और उस क्रिया की सफलता का सन्तोष—चेहरे की पुलक और आँखों की चमक ही तो उसे आकर्षण के जादू से बाँधे थीं, और उस क्षण वह बस, उसे मुग्ध होकर देख रही थी। क्या उस पल एक निमिष को भी निन्नी ने सोचा कि मुन्ने का रंग कैसा है, उसकी नाक और माथे की बनावट कैसी है ? जो कुछ उस समय सम्पूर्ण-मुद्रा से अभिव्यक्त हो रहा था, वही तो सौंदर्य था। और निन्नी अपने को विश्वास दिलाए रहती कि वह जितनी खुश रहेगी, उतनी ही अपने को 'प्रभावशाली' बनायेगी। वह प्रसन्नता के 'कारण' तलाश करती और 'प्रसन्न रहने का अभ्यास' करती ··मुसकराती रहती···और कारण-अकारण हँसती। कभी-कभी मन में सन्देह उठता, इन नकली प्रसन्नता से काम थोड़े ही चलता है, प्रसन्नता तो सच्ची होनी चाहिए। तब अनेक युक्तियों से कारण का 'औचित्य' सिद्ध करके प्रसन्नता के सच्चेपन का विश्वास दिलाती कि सचमुच कुछ 'मधुर' है, जो उसे प्रसन्न रखे हुए है। हर क्षण उसे लगता, जैसे वह सुन्दर होती जा रही है

और उसका रंग निखरता आ रहा है। वर्षों पहले छोड़े हुए प्रसाधन क्रमशः फिर प्रयोग मे आने लगे थे। सोते समय चुपचाप साबुन से चेहरा धोकर मलाई से मालिश और सन्तरे के छिलकों के साथ कौड़ियों का बुरादा मिला उबटन···नहाने से पहले बादाम के तेल की मालिश···।

एक बार किसी लड़की ने उसके अकारण मुस्कराने को लक्ष्य करके कहा, "बात क्या है, बिधु, बड़ी खिली-खिली रहती हो आजकल ! नमक आ गया है चेहरे पर···।" तो उसे न तो इस बात में व्यंग्य लगा, न परिहास। बल्कि उलटा उसने अपने को समझना चाहा कि हो सकता है, इसकी ही बात सच हो। रंग से तो आदमी सुन्दर-असुन्दर नहीं होती; एक चीज होती है नमक, सलोनापन, लावण्य, और वही सारे चेहरे पर चमकता है। खुद निन्नी को ही सैंकड़ों ऐसे चेहरे याद हैं, जो देखने मे तो साँवले है, लेकिन ऐसा 'नमक' उन पर कि हजारों गोरे चेहरे पानी भरें। और तब उसने एक नया 'अभ्यास' शुरू कर दिया—वह हर साँवले चेहरे में सौंदर्य और नमक खोजने का प्रयत्न करती और जहाँ कहीं उसे पा लेती, तो ऐसा सन्तोष होता, मानो उसकी सजा का एक वर्ष कम हो गया हो। इसी का दूसरा पक्ष यह था कि हर 'सफेद चमड़ी' में कुरूपता खोज निकालकर उसे बड़ी क्रूर सान्त्वना मिलती।···क्या हुआ, नीलिमा सूद का रंग साफ है···चीक बोन्स तो ऐसे निकले हैं जैसे जबड़े टूट गए हों···! अर्चना के बाल है ? चुहिया की पूँछ-सी चोटियाँ इधर-उधर लटकाकर चली आती है···और सुधा शर्मा का सिर···जैसे लकड़ी पर घड़ा रख दिया हो···! और वह अपने मन को समझाती कि वास्तव में वह इतनी कुरुप है नहीं, जितना अपने को बढा-चढ़ाकर देखती है·· चूंकि वह जानती है, इसलिए कड़ाई से अपने को जाँचती है।

सब मिलकर निन्नी के वे दिन ऐसी तीव्र मानसिक तैयारी और आभ्यन्तरिक परिवर्तनों में बीत रहे थे, मानो उसे किसी भी क्षण एक अनजान यात्रा पर निकल पड़ना है। और जहाँ एक ओर वह घोर आत्म केन्द्रित होती जा रही थी, वहीं सारे घर से एक अजब मोह भी हो गया

था···। कौन जाने, 'उस यात्रा' से लौटना होगा भी या नही। घर की सारी चीजों से, सारे व्यक्तियो से वह ऐसा व्यवहार करती, जैसे फिर पता नही, देखेगी या नही। दिल्ली से लौटने के बाद से ही उसे लगने लगा था, जैसे जो जिन्दगी वह इन दिनों जी रही है, वह एकदम अलग है···जैसे उसे डठल से तोड़कर कही अलग रख दिया गया है···।

और सचमुच वह जिस यात्रा पर निकल पड़ी थी, उसमें फिर अपने और अपनों से मिलना हुआ ही नही···सब कुछ एक झटके-से टूट गया और उसने अपने को निराधार शून्य मे लटके पाया···।

"निन्नी, तू ऐसी प्यारी लड़की निकलेगी, इसका विश्वास नही था। लगता है, तुमसे बचपन की दोस्ती है। और उसी दोस्ती के नाते एक बात कहता हूँ। कभी किसी तरह का काम हो, कोई भी जरूरत हो, तो मुझे लिखना। अपना समझकर मुझे याद करेगी, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी···।"

दर्शन के पत्र की ये पंक्तियाँ उसके दिल पर खुद गई थीं और अंधेरे मे ज्योति के अक्षरों जैसी हर क्षण चमकती रहती थीं। त्रिभुवन का राज्य दे डालने वाली खुशी कैसी होती है, इसे उन दिनों शायद निन्नी ही बता सकती थी। जिन चीजों, कपड़ों को कभी दूसरों को छूने नहीं देती थी, वही अब अपनी ओर से अनुपम और साधना को दे देती —"ले, तू पहन ले।" अपने जोड़े हुए पैसों में से एक बार सारे घर को सिनेमा दिखाया, तो सभी चकित रह गए—घर-भर में वह सबसे कंजूस मानी जाती थी। कामन रूम में झूम-झूमकर गाती, "शम्मा हर रंग में जलती है सहर होने तक···।" इन पंक्तियों गाते-गाते उसे लगा, जैसे वह शम्मा सिर्फ मैं और मैं हूँ···जो साँवले रंग में जल रही है! जाने क्या जादू हो गया था कि वे सारे चित्र, फिल्मों के दृश्य, कविताएँ या कहानियों के वार्तालाप, जो पहले निरे-बकवास, नकली और निरर्थक लगते लगते थे, अब गम्भीर अर्थो और अछूती अनुभूतियों से भरे लगने लगे थे। जंगलों, पहाड़ों, नदियों के किनारों पर अकेले और बेसुध घूमते

रहने को मन करता रहता और नहाते समय पागलों की तरह अंधाधुन्ध लोटे पानी डालते हुए एक अनजान सुख मिलता था···।

निन्नी को इससे बड़ा और कौन-सा आश्वासन चाहिए था ? लिखा, "जाने क्यों, शुरू से ही आपसे इतनी ज्यादा खुल गई हूँ कि जो मन में आता है, सभी आपको बता देती हूँ। कहूँ, जब तक आपको नहीं बता देती, तब तक ऐसा लगता रहा है, जैसे किसी से रुपये उधार लेकर दे नहीं रही हूँ। आपकी मित्रता का विश्वास मेरे जीवन की सबसे अमूल्य निधि है। हमेशा मन घबराता रहता है कि कहीं इसे खो न दूँ, खो न दूँ···। आपके अपनेपन और स्नेह को क्या कहूँ ? समझ में नहीं आता कि बदले में क्या दूँ ? मेरे पास तो न धन है, न रूप···केवल एक भावना है···शुभकामना है कि भगवान हमेशा आपको सफलता और सुख दे···।" और ये पंक्तियां लिखते-लिखते निन्नी सचमुच रोने लगी—उस जैसी अभागी और कुरूप-लड़की क्या इस सारे प्यार के लायक है ? उसने कभी सोचा था कि वह भी एक दिन यह सब खुद लिखेगी···किसी के सामने इतनी अन्तरंग होकर मन के उच्छ्वास को उंडेलेगी···! फिर जाने क्या सोचकर लिखा, "आह वायदा कीजिए कि मेरे पत्र पढ़कर फाड़ दिया करेंगे···।"

लेकिन जब इस पत्र का उत्तर कई दिनों तक नहीं आया, तो बैचेनी बढ़ने लगी। प्रतीक्षा···उत्कट प्रतीक्षा···हर क्षण प्रतीक्षा···सुबह लगता आज तो आएगा ही। आज तो कौआ बोल रहा था। कौआ बोलता है, तो प्रिय का सन्देश आता है (सोने से चोंच मढ़वा देने की बात से मुस्कराहट भी आई)···आज वह उठी तो खुश थी···सामने वंशी बजाते कृष्णजी का चित्र दीखा था। कालेज से दो-एक पीरियड छोड़कर जल्दी-जल्दी लौटती, रास्ते में सोचती आती, आज खत जरूर मिलेगा···आज मेरा मन कहता है···मन का यह कहना हर बार की तरह नहीं है, इसमें जरूर कोई नई बात है। यों ही दो-तीन दिन और निकल गए। कई बार पोस्टमैन से पूछा, "हमारी तो कोई चिट्ठी नहीं है ?" वह इन-

कार करके आगे बढ़ जाता, तो लगता रहता, शायद उसे उस समय न मिला हो, अभी लौटकर एक लिफाफा मुझे पकड़ा जाएगा। जब लौटने के कोई आसार न दीखते, तो ख्याल आता, कहीं किसी और के यहां तो गलती से नहीं डाल गया! झुंझलाहट होती—ये डाक वाले हर बार नये-नये आदमियों को चिट्ठियां बांटने का काम दे देते हैं, जिन्हें यही नहीं पता कि कौन कहाँ रहता है···और यह सब सोचकर घनी निराशा का अवसाद तन-मन पर छा जाता और वह हवा निकले गुब्बारे-सी ढीली हो जाती··।

एक दिन क्लास में अचानक ऐसा लगा कि हो न हो, उसकी चिट्ठी घर में ही किसी के हाथ पड़ गई है और उसने छिपा ली है। क्लास में बैठे रहना मुश्किल हो गया और वह बीच से ही चली आई। चुपचाप साधना और अनुपम की तलाशी ले डाली; कहीं कुछ नहीं। यों उसने दर्शन को लिख दिया था, "जब पत्र सुबह की डाक से आता है, तो मुझे मिलता है। आप इसी प्रकार पोस्ट किया करें। क्या लिफाफे कई तरह के नहीं इस्तेमाल कर सकते हैं?" और जब दर्शन ने उसकी बात पर अमल करना शुरू कर दिया, तो सुरक्षा और सन्तोष के साथ-साथ एक और भी आश्वासन मिला—हाँ, वह भी अपने-आपको उस तक ही रखना चाहता है···दर्शन की भावनाओं का भी कोई अंश है, जिस पर सिर्फ निन्नी का अधिकार है···तभी तो उसके कहे अनुसार करता है···।

बहुत बेचैन होकर एक खत और डाला, "क्या आपने मुझे कोई खत लिखा था? मुझे ऐसा सन्देह है कि यहाँ मेरे खत कहीं गड़बड़ होते हैं···। कृपा करके मुझे तुरन्त सूचना दें, ताकि मैं यह भी उसी प्रकार कुछ कर सकूं। और देखिए, आप इस तरह देर मत लगाया कीजिए, मुझे तरह-तरह की बातें सूझने लगती हैं। कभी सोचती हूँ, आप कहीं बाहर चले गए हैं···कभी लगता है, आपके स्वास्थ्य को तो कुछ नहीं हुआ···दिल्ली बहुत बड़ा शहर है···कहीं कोई चिन्ताजनक बात तो

नहीं हो गई ? या अगर सिफ व्यस्तता है, तो सिर्फ एक पंक्ति डालकर सूचना तो दे ही सकते थे···यहाँ मेरा बुरा हाल है···।"

और ठीक डेढ़ महीने बाद अचानक एक पत्र मिला, "प्रिय निन्नी, पत्र नही लिख सका, कुछ ऐसी ही उलझनें रही। तुम्हारे सारे पत्र मिल गए। तुम्हारी चिन्ता मुझे भी बेचैनी करती रही, लेकिन सोचा, जैसे ही अवसर मिले कि पहला पत्र तुम्हें लिखूँ। इस बीच जिंदगी एकदम ही बदल गई है। यानी एक सुबह उठकर अचानक अपने को विवाहित पाया है। आश्चर्य सुनकर तुम्हें जितना है, उतना ही मुझे भी है। लेकिन हो गया सब कुछ बहुत ही सादगी और शान्ति से। बाहर के किसी भी दोस्त या परिवार के किसी व्यक्ति को नही लिखा। यहाँ वाले भी सब नही जानते। पहली सूचना भी तुम्हे ही दे रहा हूँ। तुम्हारी भाभी तुम्हें बहुत पूछती हैं···। वह जगह भी मैंने छोड़ दी है···।"

पहली बार तो निन्नी की समझ में ही न आया कि वह कोई ऐसी बात पढ़ रही है, जिससे उसके भावनात्मक जीवन से भी कोई सम्बन्ध है। केवल एक सूचना थी कि दर्शन की शादी हो गई, जल्दी-जल्दी में हुई, चुपचाप हुई और उसने मकान बदल लिया है···। आज भी वह बहुत याद करने की कोशिश करती है, लेकिन याद आता है कि वैसा कुछ भी नहीं लगा था, जिसे धक्का लगना, धरती डोलना या आसमान घूमना कहते हैं। न आँखों के आगे तारे नाचे, न अंधेरा छाया। बस, एक बहुत हल्की-सी हँसी आई, जो मुस्कराहट में जाकर छिप गई। सच पूछो तो कुछ भी तो नहीं लगा। बस चुपचाप बैठकर दर्शन की दूल्हे के रूप मे कल्पना करती रही : भीतर उत्सुकता जरूर हुई कि देखें, आखिर वह कौन है, कैसी है ? वही होगी, उस दिन जिसके बारे में लोग बातें कर रहे थे, और देर तक पत्र का कोना दांतों से दबाये यही सोचती रही। पता नहीं किस आहट-आवाज से या अपने-आप ही सहसा चौंकी, गहरी साँस ली, तो पाया कि आँखों में पानी भर आया है···अपलक दीवारों, छतों और तस्वीरो को ताकती रही···कहाँ उड़ने की कोशिश

पर क्या थी वह ? मेरी गैर तो वे···वे···भीनाएँ हैं, यह छत है और मैं पुस्तकें हैं···मुझे कॉलेज जाना है···और घर लौट आना है···यह क्यों दिल्ली और बम्बई की बातें सोचने लगी थी··· बेवकूफ !

इन डेढ़-डेढ़ महीने में न जाने कितनी बार मरी थी और कितनी बार जिन्दा हुई थी। आकुल-बेचैनी की अधीर-प्रतीक्षा के क्षणों को जाने कितनी बार उसने कल्पना में सहस्रों वर्षों में महसूस किया था और तमाम मानसिक अवसाद को गाढ़े अँधेरे के कम्बल की तरह अपनी चेतना पर लपेटे जाने; कितनी बार मौत की अतल घाटियों में उतर जाने की कामना की थी···मन ही मन श्रद्धा और आस्था की वेदी पर जाने कितनी पूजा मानता की थी और जाने कितनी बार, कितनी रातों अपने पत्रों को याद करके दर्शन के ग्रन्थों का पाठ किया था—ऐसी पंक्तियाँ, ऐसे प्रसंग और ऐसी व्याख्याएँ खोजी थीं, जो उसकी इस टूटती आशा को कहीं तो सहारा दे दें···। एक बार वे ही पत्र नितान्त साधारण लगते थे और दूसरी बार वे ही बहुत अधिक आत्मीय, अन्तरंग और विभिन्न···। लेकिन इन सबसे परे उस दिन होश की भीतरी और अनजान सतहों पर जो कुछ हो गया···उसने निन्नी की जिन्दगी की सारी धार ही बदल दी···।

शहीदाना उत्सव से उसने पत्र मेज पर पटका और उठकर गुसलखाने गई। मुँह-हाथ धोये और बालों के पीछे तौलिया रगड़ते-रगड़ते बाहर आकर गीता के मुन्ने को गुदगुदाया, दो फुनगियाँ तुलसी के पौधे की तोड़ कर चबाई और अभ्यासवश एक बार खिड़की से बाहर झाँका, फिर अपने कमरे में लौट गई···। पत्र मेज पर ही पड़ा था···पड़ा रहे ···अब उसमें ऐसा कुछ छिपाने को रखा भी क्या है ! सामने किताबें हैं और अपनी जिन्दगी है। निन्नी ने मन ही मन कहा, "मुझे माफ करना तुम, अपने को भूलकर मैंने आसमान में उड़ना चाहा था ! अब लौट आई हूँ···। अब कभी···कभी ऐसी भूल नहीं करूँगी···। ऐसी गलती अब कभी मुझसे नहीं होगी···!' निन्नी ऊपर से यह सब बोल रही थी.

लेकिन भीतर कहीं गहराई मे भय से थरथरा उठी थी। वह रो क्यों रही है ?···वह माथा मेज पर पटककर विलख क्यों नही पडती···? दर्शन तुमने बहुत अच्छा किया···समय रहते मुझे होश में ला दिया···। पता नहीं, फिर कौन-सी ठोकर खाकर मैं यहाँ लौटती ! उसका अपना ही एक अंश था, जो खुद अपने-आपसे डर रहा था, कही वह कोई उल्टा-सीधा काम तो नहीं कर डालेगी ? तब दूसरा अंश समझाता नहीं, नहीं, ऐसी भी क्या बात है ? इसमें उलटा-सीधा कुछ कर डालने जैसी बात ही कहाँ उठती है ? इसमें अप्रत्याशित कुछ कहाँ हुआ है ? यह तो होना ही था। वह खुद ही पहले से जानती थी कि यही होगा···वह तो जान बूझकर अपने को बहला रही थी···चलो, इतना समय अच्छा कट गया !

"अरे, आज बड़ी सफाई कर डाली···!" गीताजीजी रोटियां बेल रही थी।

"हाँ, बहुत दिनों तक कूड़ा जमा था। रोज सोचती थी, आज साफ करूँगी, आज साफ करूँगी···आज तीसरा पीरियड था, सो···।" निन्नी की बात बीच में ही टूट गई। चूल्हे में पड़े लिफाफों और कागजों ने आग पकड़ ली थी और वह बैठी-बैठी उनका जलना देख रही थी···लपटों की पीली झालर के पीछे पत्रों की गड्डियाँ जल रही थीं। अपनी ओर वाले एक कागज की कुछ लाइनें पकड़ीं, तो याद आ गया, वे लाइनें थीं, "दो दिनों से ऐसा पानी बरस रहा है, ऐसी झड़ी लगी है कि लगता है, सारी दिल्ली बह जाएगी ! क्या करें···? कमरे में बन्द बैठे है। कभी-कभी लगता है, तुम फिर दिल्ली घूमने आई हो···और मैं बेझिझक कहता हूँ निन्नी, आज गरम-गरम पकौड़ा खाने को मन करता है···।"

'हुँह, अब प्रेम से गरम-गरम पकौड़े बनवाइए और खाइए···!' मन में उठा। लिखा था, "कभी भी किसी तरह की जरूरत हो, तो मुझे लिखना···।"

इसके बाद निन्नी उन सारे पत्रों को एकदम···एकदम भूल गई। कभी ख्याल भी आता, तो बस, चूल्हे की लपटों के बीच काले-काले

मसले हुए कार्बन पेपर जैसे नोच जाते थे···।

तब तो और इतना ज्ञान नहीं था, लेकिन निन्नी बाद में भी अक्सर सोचती रही है कि उन दिनों रोई क्यों नहीं? इतनी बड़ी बात को कैसे चुपचाप ले लिया था उसने! कुछ याद है, बस, जाकर लेट गई थी···।

पिछली बार जब 'इंजीनियरों' ने उसे 'अस्वीकार' किया था, तो वह उसके बाहरी व्यक्तित्व, यानी रंग और रूप का अस्वीकरण था···मानो उसे ठोक-ठोककर समझाया गया था कि वह देखने में रंग और रूप के लिहाज से हेय है···और तब हर बार वह रोई थी···क्योंकि अपने को यों हेय नहीं मानना चाहती थी। दूसरी बार, दिल्ली में लौटते हुए उसे लगा, जैसे रंग-रूप के पार उसके गुण और शील को अस्वीकार कर दिया गया। और इस बार लगा, उसकी भावना, उसकी आत्मा, उसके संपूर्ण अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व को ही अस्वीकार कर दिया गया है। अब उसका हर मोर्चा ध्वस्त था, हर विश्वास चूर था···और चुपचाप यह स्वीकार कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं था कि उसके लिए इस दुनिया में कोई कुछ नहीं है···।

इस सत्य को मान लेना कितनी भीषण यातना है, शायद इसे शब्द देना निन्नी के बस का नहीं है। अपने सम्पूर्ण अस्तित्व की निरर्थकता के इस बोध के बाद उसके लिए एक ही रास्ता बचा था और वह था इस अर्थहीन, लक्ष्यहीन जिन्दगी को समाप्त कर दे—मर जाए! निश्चय ही अभी तक कोई ऐसा कोना था, जो अविजित बच रहा था, तभी तो उस समय मर नहीं पाई, लेकिन उसके भीतर कुछ मर गया है, अनुक्षण और पल-पल पर मर रहा है, इसे निरन्तर हर साँस के आते-जाते महसूस करती रही। कोई पदार्थ था, जो क्रमशः ठंडा, निर्जीव और स्पन्दन-हीन होता चला आ रहा था।

इसके बाद उसे ख्याल नहीं है कि दर्शन के उस पत्र का उत्तर दिया था या नहीं। इतना याद है कि एकाध निहायत ही औपचारिक पत्रों का

आदान-प्रदान हुआ था। बस, फिर वह भी बन्द हो गया। लेकिन बन्द होने की एक घटना है।

तभी एक पत्र में दर्शन ने लिखा कि किसी काम के सिलसिले में उसे आगे जाना है, "साथ में पत्नी भी रहेगी। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे नगर में रुकूँ, दूसरी गाड़ी से हम लोग आगे चले जाएँ। तुम्हारा इतने दिनों का निमन्त्रण भी है और तुम्हें देखे हुए भी काफी दिन गए। शशि की बड़ी इच्छा तुमसे मिलने की है। मैंने इतनी तारीफ कर दी है कि बेचैनी है...।"

"तारीफ !" निन्नी ने मुँह बिचकाया। जवाब में लिखा, "मैं खुद आप लोगों से मिलने को व्याकुल हूँ, क्योंकि अभी तो आपसे मिठाई भी लेनी है न, शादी की। लेकिन एक मजबूरी आ गई है। पन्द्रह दिनों को मुझे बाहर जाना पड़ रहा है—इन दशहरे की छुट्टियों में। मौसीजी जाने कब से हम लोगों को बुला रही है। अनुपम और साधना ने सत्याग्रह कर दिया है कि इस बार जाना ही है। सचमुच, अगर रुक सकती होती, तो रुक ही जाती। बताइए, क्या करूँ...?"

यह नहीं कि दर्शन की पत्नी के सामने एक बार फिर अपनी कुरूपता को कसौटी पर रखने से निन्नी डरती थी—नहीं। अब अपने बाहरी व्यक्तित्व के प्रति वह उतनी सजग रह भी नहीं गई थी। एक उद्धत भाव धीरे-धीरे मन में आ गया था—हाँ, मैं कुरूप हूँ, काली हूँ, करो किसको क्या करना है ! उसे किसी से शादी नहीं करनी, किसी से प्यार नहीं करना.. । ये रास्ते अब उसने हमेशा-हमेशा के लिए बन्द कर दिए हैं... उस निन्नी को उसने अपने हाथों मार डाला है...।

'अगर दर्शन और उसकी पत्नी से मिलने में यह हीनता-भाव नहीं था, तो और क्या था ?' अक्सर ही बाद के जीवन में निन्नी ने यह सवाल अपने-आपसे पूछा है।

'था, हीनता-भाव ही था ! लेकिन वह यह नहीं, बिल्कुल एक-दूसरी तरह का भाव था—उसे क्या नाम दिया जाएगा, बताना बड़ा

मुश्किल है !' निन्नी अपने-आपको जवाब देती है, 'मगर यह मैं खूब विश्लेपण करके पाती हूँ कि उसके उस न मिलने में दर्शन की पत्नी कहीं नहीं आती। उसका तो खयाल भी नहीं था। शुरू-शुरू में देखने की भले ही उत्सुकता रही हो, बाद में तो उसके प्रति कोई भाव ही नहीं रह गया। हाँ, दर्शन से मिलने में जैसी झिझक लग रही थी, उस झिझक को मैंने एक बार पहले भी महसूस किया था। वह तो शुद्ध अपनी ही कुंठा थी। उसमें न तो कहीं प्रतिकार था, न ईर्ष्या।' बस वह तो इतना ही जानती थी कि दर्शन के साथ उसका कोई एक 'अपना' आ रहा है, जिससे पहले भले ही रही हो, लेकिन अब···अब न तो उसकी कोई शत्रुता है, न द्वेष। जिज्ञासा भी नहीं है। लेकिन दर्शन से दुबारा मिलने में संकोच की जो कुन्ठा थी, उसे वह एक ठीक वैसी ही घटना से स्पष्ट करना चाहती है···जो अक्सर उसे साथ ही याद आती रही है।

एक रिश्तेदार के यहाँ लडकी की शादी थी। ऊपर छत पर दावत का इन्तजाम था। यों दावत साँझ को सात-आठ बजे थी, लेकिन वहीं सारे दिन लोगों का आना-जाना, उठना-बैठना और खाना-पीना होता था, शादी के प्रतिभोजों में परोसने का काम सब घरवालों पर ही होता है—या होते हैं कुछ निकट के मित्र। यों ये सब लड़के-लड़कियाँ ही परिवार के इतने थे कि बाहर के किसी आदमी की जरूरत नहीं थी। लेकिन कुछ पड़ोसी और पारिवारिक मित्र तो थे ही। सारी छत पर ऊँची और नीची दो तरह की बेंचें डालकर तीन-चार कतारें बना दी गई थीं। नीची बेंचों पर लोग बैठते थे, सामने की ऊँची बेंचों या पतली-पतली मेजों पर पतल सकोरों मे खाने का प्रबन्ध था। नीचे से ऊपर आने वाली सीढ़ी से लगी बरसाती में ही 'कोठर' था—अर्थात् नीचे हलवाइयों के पास से बनी चीजें बन-बनकर ऊपर आ जाती थी और वहाँ से तसलों, ट्रे, तश्तों और सब्जीदानों और थालों में ले जा-ले जाकर खानेवालों को परोसी जाती थीं। यह बरसाती और सीढ़ी छत के बीच में थी और इसके पीछे वाली

छत पर कूड़ा-कचरा या जूठन डालने का अस्थायी प्रबन्ध था। बड़ी छत खाली कर दी गई थी, इसलिए वहाँ चारपाइयाँ और काठ-कबाड़ पड़ा था। पीछे दीवार के सहारे एक और सीढ़ी थी, लेकिन उसका उपयोग नहीं होता था। एक तरह से सारी रौनक बड़ी छत पर ही थी, पीछे सन्नाटा ही था। सब लोग बीच के जीने से आते थे और इधर ही काम में लग पड़ते'''।

दावत में चीजें बरबाद न हों, साथ ही ठीक ढंग से परोसी जाएं, किस चीज को किस तरह परोसा जाए, किसे हाथ खींचकर परोसना है और किस के लिए मनुहारें करनी हैं, इस सारे मोर्चे की देखभाल 'कोठर' के इंचार्ज को करनी होती है। वही परोसने वालों को काम बाँटता है। इस प्रकार वह काफी महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। लेकिन महत्वपूर्ण तो उस समय सभी होते हैं। बारह और पन्द्रह साल के जो लड़के गंगा-सागरो और जगों से पानी परोसते हैं, उनके चेहरे के भाव को देखिए, तो लगेगा, जाने कितनी निष्ठा से और कैसा महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, जिसके लिए वे आपस में लड़ते और महीनों पहले से तैयारी करते हैं। किसी 'सीनियर' परोसने वाले की उपस्थित में उसे प्रभावित करने के लिए कैसे कौशल से अपना काम करते हैं, यह देखने लायक है !

सो उस समय दूसरी या तीसरी पंगत बैठी थी। सिरे वाली एक कतार खाली थी। उस पर लोग आ जाएंगे, तो फिर परोस दिया जाएगा, इस खयाल से जितने लोग बैठे थे उन्हें परोसना शुरू कर दिया गया था। निन्नी ने जान-बूझकर परोसने का काम लिया था, लेकिन 'घर' के व्यक्ति के नाते काम में तो हाथ लगाना ही था, वरना 'आकर खा गये' का ताना सुनना पड़ता। निन्नी नहीं चाहती थी कि दावत खाने वाले हर व्यक्ति के सामने उसे 'परीक्षा' का सामना करना पड़े—यह पूछे कि 'पूरी चाहिए ?' और खाने वाला दया और विरक्ति-भरी निगाहों से उसका चेहरा ताके ! वह तो चाहती थी कि कहीं एक कोने में बैठ जाए और वहीं बैठे-बैठे जो भी बन पड़े सो करे। इसलिए खुद उसने 'कोठर' का

काम चुना। शामियाने में दो-दो सौ पावर के बल्ब लगे थे, इसलिए कोठर का बल्ब रोता-सा लग रहा था। निन्नी के साथ थी उसके रिश्ते की एक छोटी बहन—सन्ध्या। गोरा, गुलाबी रंग और उन पर गहरी नीली बगलौरी साड़ी। सारा कोठर जैसे जगमग-जगमग कर रहा था। नाक-नक्श ऐसे सुन्दर कि मन होता, देखे जाओ। थी निन्नी के ही कॉलिज में, लेकिन पढ़ने-लिखने के नाम लड्डू थी—नये-नये फैशन करती थी और सिनेमा की दुनिया मे जागती-सोती थी। निन्नी अक्सर ही अपने और दूसरों के सामने कहा करती, "सिर्फ गोरी चमड़ी होने से ही कुछ नहीं होता···दिमाग मे तो भूसा भरा है। न पहनने का सलीका, न ओढ़ने का ढंग। बातचीत करेगी, तो ऐसी आँखें और भौंहें मटकाकर कि गुस्सा आए। बोलचाल की अक्खड़। अपने को न जाने कहाँ की हूर की परी लगती है···।" लेकिन जितनी तीखी कचोट के साथ उसने आज महसूस किया वैसा शायद ही कभी किया हो—'काश, भगवान उसे इसका आधा ही रूप दे देता···!'

उस दिन निन्नी से कहे बिना नहीं रहा गया, 'संध्या, आज तो शामियाने के सारे बल्ब बुझवा दें, तब भी यहाँ रोशनी की कमी नहीं होगी लोगों को तो यही भ्रम हो रहा होगा कि शादी शोभा की नहीं, तेरी ही है···!"

"अरे जीजी," संध्या लाल हो गई "आप तो मजाक बनाती हैं···! ऐसा कहेंगी, तो मैं चली जाऊँगी। मैं तो इसीलिए यहाँ भाग आई हूँ कि चुपचाप आपका हाथ बटाऊँ। वहाँ भी सब लोगों ने मार तंग कर डाला और आप भी···स्वीकृति और सन्तोष उसके स्वर में छलक रहे थे। उसने तुरन्त बात बदल दी—"ऐसा कीजिए, आप उधर अन्दर की तरफ बैठ जाइए। जो-जो चीज मैं माँगूँ, आप जितनी ठीक समझें, देती जाइए। मैं इधर से ही परोसने वालों को पकड़ाती जाऊँगी। बरेली वाली चाची जी ने कहा है कि कोठर के भीतर मेरे और आपके सिवा कोई नहीं जाएगा।" संध्या ने कन्धे पर साड़ी ठीक करके पल्ला कमर में खोंसा,

"ये पूरियों का डला तो इधर रखे देते हैं, अपने-आप उठा-उठाकर ले जायेंगे···।"

निन्नी का काम भूलकर उसकी नयनाभिराम छवि ही देखती रही उसकी बात पकड़कर मन ही मन बोली, "इसीलिए तो तू यहाँ आई है कि इस सारी भीड में मैं ही एक ऐसी हूँ, जिसे तुझसे कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है।"

लेकिन वस्तुत: वह निन्नी की गलती थी। उसके वहाँ आने और उस विशेष काम को अपने ऊपर लेने का कारण था। पहले तो निन्नी को भ्रम हुआ, लेकिन जब उसने देखा कि वैजल को वह मिठाई और नमकीनों की ट्रे ही उठा-उठाकर नहीं देती, साथ ही अर्थवती मुसकराहट और मधुर रोमांच भी देती है तो कोई शक ही नहीं रह गया। वैजल का उसके घर आना-जाना था और उनके कॉलेज में ही एम० एस० सी० का विद्यार्थी था। अच्छा खिलाडी और वक्ता था। इस समय अद्धी का कलफदार चुना हुआ कुरता और पाजामे के पाँयचे उसने सामने से उठा-कर ऊपर खोंस लिए थे और कुरते की आस्तीनें लापरवाही से बाँहों तक चढ़ा ली थीं···खुलते गेहुँए हाथों पर काले-काले बाल और कलाई में चौड़े डायल की सुनहरीं घड़ी···पैरों में सफ़ेद स्पेड का नागरा···सिर र हलका भूरापन लिए छोटे-छोटे आपस में गुँथे-से बाल, घनी भौहें और हलकी सुर्खी झलकाता हुआ चेहरा···हिना की भीनी-भीनी लपट मारती खुशबू···सचमुच वैजल बहुत सुन्दर था और इस समय सारी छत का काम उसने अपने ऊपर लिया हुआ था। "अरे बिल्लू, तुम इधर मुँह फाड़े क्या कर रहे हो···नीचे जाकर कचौड़ी भिजवाने को कहो न···? या साथ ही उठवाते लाओ···।" "और आप हरप्रसादजी···उधर जाकर देखिए जरा, किसी को कुछ चाहिए तो नहीं···। जॉली बाबू, देखो, इस लाइन के पानी का जिम्मा आपका है···लेकिन मेहरबानी करके पहले की तरह खाने की चीजों पर मत गिराइए···।" "देखिए वैजल भाई, ये हमें साग नहीं परोसने देता···!" वैजल कभी इधर दिखाई देता, कभी

उधर। अरे मध्या, रायता उठाओ, रायता, उठाओ न जल्दी से।" और सन्ध्या दोनों काँपते हाथों से रायते का डोंगा आगे बढ़ाती और उन हाथों के ऊपर बहुत आहिस्ते से बैजल डोंगा पकड़ लेता···तब अपने हाथ हटाते-हटाते सन्ध्या को घन्टों लग जाते···निन्नी कुछ न देखने का नाट्य करके व्यस्त भाव से काम किए जाती। बैजल के लिए हमेशा सन्ध्या थाल में पूरियाँ तैयार रखती, बाकी लोग डले से उठा-उठाकर ले जाते।

प्लेटों में जल्दी-जल्दी रंगीन पतली कागज बिछाकर मिठाइयाँ लगाई जा रही थीं और बैजल झुका-झुका पीतल की बड़ी-सी ट्रे में उन्हें रखता जा रहा था ताकि जल्दी से उठा ले जाए···हिना के बादल गहरा रहे थे।···"आज बैजल भाई को भी क्या पुराना नवाबी शौक चर्राया है···हिना लगाकर आए हैं···।" सन्ध्या की इस बात पर बैजल ने डाँट दिया, "बको मत, जल्दी-जल्दी तश्तरियाँ लगाओ। सन्ध्या, ये समय नजाकत छाँटने का नहीं है।" उसकी इस हड़बड़ी और झुके होने के कारण अपने सिर को बार-बार सन्ध्या के सिर के पास ले आने में पता नहीं कैसे एक प्लेट सन्ध्या के हाथ से छूट गई। खट्-से बैजल ने अपना सिर सन्ध्या के सिर से टकराया, "तुमसे ज़रा-सा काम ढंग से नहीं होता, और जबान दुनिया-भर की चला रही हो। एक निन्नी जीजी को देख लो कैसी खट्-खट् फुर्ती से किए जा रही हैं, जो एक भी बूंद गिरी हो···।"

बैजल के यों सिर टकराने से सन्ध्या झेंपकर गुलाबी हो आई। नकली झुंझलाहट से बोली, "हाँ, हाँ, नहीं होता! आपसे यहाँ भीतर आने को किसने कहा था? बाहर जाइए, हम वहीं दे देंगे। जानते हैं, कोठर में आने का आर्डर नहीं है···। निन्नी जीजी, इन्हें निकालिए···।"

बार-बार अपनी बातों में निन्नी को खींचकर मारो वे उसे गवाह बनाना चाहते थे कि देखो, हमारे बीच में कुछ भी नहीं है। लेकिन जो था वह हिना की तरह हवा में बसा था। निन्नी उस सबसे अनजान बनी थी। तटस्थ भी थी और उस सबको देखने को भी मन कर रहा था···। उनका खेल अच्छा भी लग रहा था, कहीं एक डाह सी हो रही

थी। मिठाई का बरतन पीछे रखा था, मुड़कर उठाया और सामने की ओर रखा, तो देखा, सन्ध्या जीभ निकालकर वैजल को चिढ़ा रही है··· निन्नी को देखा, तो दोनों सकपका उठे···तब अचानक उसे गुस्सा चढ़ आया···यह क्या छिछोरपना है···बाहर लोग खाने बैठे हैं और यहाँ यह आँखमिचौनी चल रही है !···मन में आया कह दे, 'तुम दोनों बाहर जाओ, मैं अकेली सारा काम सभाल लूँगी···।"

लेकिन यह सच है कि इस गुस्से से पहले वह खुद अजब-सी सिहरन महसूस कर रही थी···। उसे लगता, मानो वह खुद सन्ध्या की जगह बैठी हो और एक के बाद एक चीजें को उठा-उठाकर दिए जा रहा हो···। अक्सर वह किसी काम से उधर देखती, तो वैजल के करते के ऊपर वाले खुले बटनों के भीतर से झाँकते काले काले घुँघराले बाल, ठोड़ी का बीच से कटा आम की चोंच जैसा सिरा···कसकर बनाई गई नीली-नीली झाईं मारती हजामत, घनी-घनी भौंहें—उधर से निगाहें हटाना मुश्किल हो जाता। भीतर से कोई चीज नोचती रहती और निगाहें हर बार उधर ही उठ जाती ···सचमुच है सन्ध्या के लायक ! कभी जाते हुए उसकी पीठ देखती रहती, कभी आते हुए उसके घड़ी वाले हाथ का झूलना···। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि सन्ध्या उससे कुछ माँग रही थी और वह वैजल को देख रही थी। सन्ध्या की आवाज से चौंककर सहसा अपने में लौट आई। तब सन्ध्या की आँखों ने जो कुछ पढ़ा, उसने मन को एकबारगी ही ग्लानि और परिताप से भर दिया—वहाँ एक उद्धत तिरस्कार का भाव था—कम से कम अपने को देख लो एक बार, फिर उधर देखना···।

बंगाली रसगुल्लों का बड़ा बर्तन कोठार के कोने में था। निन्नी वहाँ से मिठाई निकालने गई, तो पाया कि रसगुल्ले निकालने का चिमटा ही नहीं है। सहसा सन्ध्या से माँगने मुड़ी कि देखा, वैजल निचला होंठ निकाल कर 'क्या करूँ ?'।—के भाव से कन्धे उचका रहा है। सन्ध्या की पीठ उसकी ओर थी। साराँश में जाने कैसे निन्नी की समझ में आ

गया कि सन्ध्या ने उसके ही बारे में बैजल से कुछ कहा है। बहुत सम्भव है (उसकी सहज प्रतिभा ने बताया कि), यही कहा होगा, 'देखा, जीजी तुम्हें कैसी नदीदी आँखों से देखती है !" तब जवाब में बैजल ने कन्धे उचकाकर कहा होगा, 'इसमें मैं क्या कर सकता हूँ !' उस समय तो निन्नी ने केवल अनुमान लगाया था, लेकिन बाद में उसे अपने आप ही लगने लगा, मानो सचमुच ही उन दोनों को यह कहते हुए सुना है···।

"सन्ध्या, जरा चिमटा देना।" उस मुड़ने और समझने की प्रक्रिया मे ही निन्नी ने कहा।

"अभी लो जीजी···।" सन्ध्या बुरी तरह सकपका उठी। निन्नी को लगा, जैसे उसने दाँतों से जीभ निकालकर काटी। लेकिन उसकी तत्परता ने निन्नी का सन्देह और भी पक्का कर दिया···।

मन में बेहद कटु विद्वेष और ग्लानि की भावनाएँ जागीं। कोई और समय होता, तो शायद अपने रुद्ध आवेश के कारण वह रो पड़ती, लेकिन बाहर चीख-पुकार, गाने-बजाने का ऐसा शोर था और काम ऐसी भाग-दौड़ का था कि अपने भीतर उतरने का अवसर ही नहीं था···भीतर झुँझलाहट को समझने-समझने से पहले ही बाहर खाने वाले आ गए थे···।

और अभी दो कतार वालों का आधा खाना ही हुआ था कि कुछ और खाने वाले आ गये और बैजल इत्यादि ने उन्हें खाने भी बैठा दिया। नये सिरे से उन्हें खाना देना था। एकदम बौखलाहट-सी मच गई। किसी ने आकर शोर मचाया, "निन्नी जीजी, पत्तल···पत्तल एकदम नही हैं···।" पत्तलें पिछली छत के जीने मे मोड़ की म्यानी (मेंजिनी) में रखी थीं। वहीं कुल्हड़-सकोरे चुने थे। खाने वालों के इस नए आक्रमण से सब लोगों के हाथ-पांव फूल गए थे। निन्नी ने आवाज दी, "अरे रामदयाल···ओ रामदयाल, जाकर पत्तलें ले आ···।" रामदयाल कहार उसकी बात सुनकर मुड़ा ही था कि अचानक बैजल ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर गंभीर स्वर में कहा, "पण्डित रामदयाल, ऊपर की तामड़ी

में पानी एकदम खत्म हो गया है···जल्दी-जल्दी दौड़कर चार-छः कनस्तर डाल दो, वरना बहुत मुश्किल हो जाएगी। नीचे से दो सिल्लियाँ वर्फ की भी उठवाते लाना···।" फिर चारों ओर नजर घुमाकर पत्तलों के लिए सन्ध्या से कहा, "तुम क्यों नही उठा लाती हो भागकर! यहाँ मेम साहबों की तरह सजकर बैठी हो! जाओ, जाओ, एकदम जाओ··· यह हुकुम चलाने का वक़्त नही है···।"

बैजल की बात अधूरी ही रह गई। अचानक गुप्ताजी ने आकर बैजल के कान के पास बताया, "बैजल, यार तुम्हीं संभालो उधर जाकर ···गोविंद और नीलू दोनों लड़ पडे है···अच्छे भाई है! न वक़्त देखते न जगह···अरे ये आपस के झगड़े बाद मे ही···।

बैजल उधर मुड़ गया। सन्ध्या अनिच्छा का-सा भाव दिखाकर उठने लगी, तो झट निन्नी ने कहा, "अच्छा, तू ये संभाल। मैं लाती हूँ तेरी साड़ी-वाड़ी मे धूल लगेगी—।"

"नहीं···नही, जीजी, मैं जा रही हूँ" सन्ध्या जल्दी से बोली।

"तू यही रह। मै एक मिनट मे आई···।" वह जल्दी से पीछे वाली छत की ओर लपकी। उड़ता-सा ख्याल यह भी आया, चलो, दोनों को जरा खुलकर बातें कर लेने दो।

उधर एकदम सन्नाटा था। सामने दूसरे मकान की दीवार पर बड़ी छत की परछाइयाँ इधर से उधर भागती दीखती थीं। वहाँ की रोशनी से आने पर यह जगह अन्धेरी-सी भी लगी। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर कर मोड़ पर पहुँची। म्यानी की कुण्डी खोली, तो देखा, उसमें घुप अन्धेरा है। सीढ़ी के मोड़ के कारण ऊपर और नीचे की रोशनी यहाँ तक आ ही नहीं पाती थी। स्विच खट्-खट् किया, तो पता लगा, या तो बल्ब नहीं है, या खराब हो गया है ज्यादा सोचने का काम नहीं था। उसे पता था सामने वाली दीवार के सहारे पत्तलें चुनी रखी है। इधर-उधर हैं सकोरे, कलई की हुई मिठाइयों की तश्तरियाँ, कुल्हड़ों की कतारें चुनी हुई। कमबख्त म्यानी में ऊपर वाली छत से लगी, मोटी

सी चौकोर जाली भी धुल-धक्कड, मकड़ी के जालों से ठंस गई थी।

जैसे-तैसे अन्दाज से ही कुल्हड़-सकोरों से साड़ी बचाती सामने की दीवार तक पहुँची ही थी कि सीढ़ियों पर पैरों के उतरने की हलकी खस-खस हुई और झपाक् से किसीने म्यानी मे प्रवेश किया ''जल्दी से किवाड़ भेड़े और जब तक निन्नी पीछे मुड़कर कुछ समझे-समझे, या चीखे कि किसी ने झटके से उसे अपनी दोनों बाँहों में भर लिया और उसका माथा, नाक, कनपटी टटोलते दो हड़बड़ाते होंठ उसके होंठों से आ चिपके ' और तब हाथों और छाती के बालों के स्पर्श और हिना की गन्ध—दोनों ने एक साथ ही बताया कि यह तो बैंजल है···! निन्नी स्तब्ध रह गई। उठी हुई चीख गले में ही फंस गई और उसकी समझ में ही न आया कि क्या करे? बस, इतना ही उस क्षण कौंधा कि बैंजल ने सन्ध्या से यहाँ आने को कहा था।

तब तक शायद बैंजल ने अपनी गलती महसूस कर ली थी। उसके मुँह से निकला कुछ नहीं, लेकिन उसके चौंकने को निन्नी ने उसके हाथो की पकड़ के ढीले हो जाने और दबाव के हल्के पड़ जाने से जाना। शायद एक पल को उसकी भी समझ में नही आया कि वह निन्नी को यों ही बाँहों में बाँधे रहे या छोड़ दे···। फिर झटके से उसे छोड़कर वह एकदम पलटा···और बाहर झपटता चला गया···दरवाजा खोला और गायब हो गया।

उसके अचानक यों छोड़ देने पर निन्नी गिरते-गिरते संभली, हाथ से दीवार की टेक ली और छाती की धड़कन, कानों की सनसनाहट और होश की घबराहट में समझने की कोशिश करने लगी कि यह अचानक हुआ तो हुआ क्या? यह सही है कि बैंजल उसके लिए नहीं, सन्ध्या के लिए आया था, लेकिन उसकी बाँहों में बँधकर जिस क्षणांश उसने जाना कि यह बैंजल है, तो अनचाहे ही शरीर अपने-आप ढीला हो आया··· एक समर्पित कली की तरह वह झुक आई···। उसकी आवेग-तप्त साँसों और उद्दीप्त आतुर होंठो का यह पागल स्पर्श कुछ ऐसा अप्रतिरोध्य और

वेधक था कि निन्नी के तन और मन की परत-परत को पार करता हुआ आत्मा की सतहों में उतरता चला गया···और जाने किन अँधियारी गहराइयों में कैद रोमाँच की सिहरन से उसके शरीर-प्राण को लाद गया··· उस क्षण उसने सोचा था, 'काश, मैं सन्ध्या होती, तो कैसे एकाग्र-अविभाज्य रूप से इस रोमाँच की सिहरन को पीती···।' तो इसे कहते है चुम्बन···? यही है वह अनुभूति की अनी, जो नारी (वह अपनी बात जानती है) के अन्तर्बाह्य अस्तित्व को यों चीरती चली जाती है, जैसे मुलायम साबन के टुकड़ों को तेज चाकू चीर डालता है ? यही है वह क्षणांश का आप्लावनकारी बोध, जो बिजली की कौंध की तरह सारे मनोनभ पर आर-पार छा जाता है और एक ज्योतित उद्भास की गरजन से रग-रग चमत्कृत होकर वीणा के तारो की तरह झनझनाने लगती है···।

बाद की सारी अनुभूतियों को बता सकना सम्भव नही है। समुद्र की दुर्दान्त लहर की तरह पुलक आई और उमड़ती चली गई। जब उसे होश आया, तो तीखी लज्जा का एक ऐसा चिरपिरा स्वाद होंठों पर था कि उसके साथ ऐसा कुछ 'घट' चुका है कि बाहर मुँह दिखाने की हिम्मत नही है···। साथ ही अब भीतर से एक ग्लानि उभरने लगी थी—यह सब उसके लिए नही था···यह तो सन्ध्या का 'हक' था, जिसे अनजाने ही वह ले बैठी···यह तो किसी के बदले में गलती से दे दिया गया 'सुख' था···उसे पाने का अधिकार उसे नही था···उसने तो निन्नी को ही सन्ध्या समझकर यह चुम्बन दिया था···अब बाहर जब उसे देखेगा, तो घृणा से मुँह बिचकायेगा, और उबकाई देने का भाव दिखाकर कन्धों को झटके के साथ सन्ध्या से कहेगा, 'मैं क्या कर सकता हूँ···?' हो सकता है, बाहर जाते ही उसने कुल्ला किया हो···और साबुन से होंठ धोए हों···।

इसके साथ ही निन्नी के मन में एक दुर्दम ईर्ष्या भी सुलग उठी—तो बैजल और सन्धा यहाँ तक बढ़ आए है ? देखने में कैसी सीधी लगती है, जैसे कुछ जानती ही न हो ! मन होता था, जाकर झोंटा खींचे और

सबके सामने कहे, 'क्यों लोगों की आँखों में धूल झोंक रही है ! असलियत क्या है, सो हमें भी पता है···।'

मन होता था, जहाँ की तहाँ बैठ जाए और 'जो हो गया' पर सोचे, तभी सीढ़ी पर धम-धम करता कोई उतरा···वहीं से पुकारा, "अरे इसमें तो अँधेरा है···इसमे कौन है ?" आवाज से पहचाना संध्या का छोटा भाई विराज है। सन्तोष की साँस ली। बाल-बाल बच गई। अगर जरा पहले आ जाता, तो रंगे हाथों पकड़ी जाती। शायद उसे निन्नी की झलक मिल गई थी—"कौन है ? निन्नी जीजी ?" गला साफ करके बड़ी मुश्किल से उसने सम्भलकर पत्तलें तलाश करते हुए कहा, "हाँ, मैं ही हूँ···ले ये पत्तलें पकड़···।"

तब तक उसने स्विच दो बार खट-खट् कर लिया था, "यहाँ तो बत्ती ही खराब है···आप क्या कर रही है यहाँ···वहाँ मार हल्ला मचा है, पत्तलें लाओ पत्तलें लाओ।"

निन्नी जैसे-तैसे पत्तलों की गड्डी लेकर बाहर निकली, तो सीढ़ी की हलकी रोशनी मे आने की हिम्मत नही पड़ रही थी। जल्दी-जल्दी उसके हाथ में थमाकर मुड़ी और किवाड़ बन्द करती हुई बोली, "जाने क्या-क्या कबाड़ भर रखा है···भीतर बत्ती-बत्ती भी नहीं है कुछ। कैसे निकाले कोई कुछ·· मेरा तो सिर चकरा गया घुटन के मारे···!"

आगे-आगे वह था और पीछे-पीछे निन्नी। ऊपर से मुड़कर वह बोला, "बात यह है कि वहाँ लोग खाने बैठ गये है और चाची ने कहा है कि रसगुल्ला एक-एक जाएगा। बराती लोग खा लें, इसके बाद चाहे जितने-जितने परोस दें···।"

उसके मुड़ने से निन्नी का चेहरा सामने आ गया, तो उसका हाथ खुद बखुद होंठो तक उठ आया साड़ी का पल्ला पकड़े-पकड़े···मानो अभी भी उसके होंठों पर ऐसा कुछ लगा है, जिसे वह साकार देख लेगा। वैसे भीतर भी निन्नी ने अपने होंठ कसकर पोछ लिये थे···जाने यह विराज

क्या समझे, सोचकर झट हाथ हटा लिया, लेकिन खुली छत पर अचानक ऐसा लगा, उस बड़ी छत पर जाते ही उसके होंठों पर पड़ा यह 'दाग' सबको दीख जायेगा। बैंजल ने जरूर जाकर संध्या से कहा होगा "संध्या, ग़जब हो गया···!" निन्नी को देखते ही संध्या की आँखों में डर-आशंका की बजाय जो परिहास और दुष्ट दया आएगी···और फिर बैंजल··· न···न · उसके सामने जाने की अब हिम्मत ही नहीं है···उबकाई की तरह उमडती जुगुप्सा को छिपाकर जब वह दया माँगने वाली निगाहों को संकोचपूर्वक चुरायेगा, साथ ही जो कुत्सित-विनोद उसके होंठों के कोनों पर झलकेगा···उस सबको क्या निन्नी सह पाएगी।

विराज आगे-आगे चला गया और बीच छत पर खड़ी-खड़ी वह समझ नहीं पा रही थी कि अब वह क्या करे? सिर भन्ना रहा था। आखिर अपने से हारकर लौट आई···। कोठर में जो होगा सो संध्या संभाल लेगी। शायद विराज से ही बुलाकर कहा कि 'मेरा सिर चकरा रहा है। तबीयत खराब हो रही है। मैं घर जा रही हूँ···।' वह पिछली सीढ़ी से उतरकर घर आ गई।

उस दिन बैंजल के सामने पड़ने से उसे जिस मानसिक कुंठा और धर्म-संकट ने रोककर लौटने को मजबूर कर दिया था, कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति थी···वैसी ही मन की हालत रही होगी, जिसने उसे दर्शन से नहीं मिलने दिया···। नहीं, अब दर्शन के सामने पड़ने की उसकी हिम्मत नहीं है। जैसे निरावरण नहाते हुए कोई किशोरी पाए कि गुसलखाने की खिड़की से कोई झाँक रहा है, या किसी ने उसे बिना कपड़े नग्न देख लिया है, तो बाद में उसके सामने पड़ने में जो एक आत्मघाती ग्लानि मन में जागती है, कुछ वैसी ही अनुभूति थी···। जो व्यक्ति मन के इतने निकट और अपना होकर रहा है, वही अब दूरी और अपरिचय का अभिनय करेगा, यह विडम्बना निन्नी से किसी भी प्रकार सही नहीं जा सकेगी। निस्सन्देह एक बार उसकी पत्नी को देखने की उत्कण्ठा

जरूर थी, लेकिन सामना करने की लज्जा उससे कई गुनी अधिक थी। उसकी पत्नी ने निन्नी के पत्र देखकर जाने क्या सोचा होगा, या दर्शन ने ही पत्र दिखाकर निर्लिप्त भाव से कहा होगा, "यह लडकी मेरे पीछे पड़ी है, बताओ क्या करूँ ?" काश वे पत्र तो उसे वापस ही मिल जाते··· अकेले व्यक्ति के सामने सारे वातावरण उतार फेंकना चरम आत्मीयता हो सकती है, लेकिन एक से अधिक के सामने···?

सही है कि दर्शन वाली बात की तत्काल या तीव्र प्रतिक्रिया कुछ भी नही हुई, लेकिन धीरे-धीरे निन्नी को जिन्दगी बड़ी व्यर्थ और बेतुकी लगने लगी। पहले कुछ दिनों तो लगा, जैसे अब उसके पास करने को कुछ काम ही नहीं है। न कालेज से लौटने का जल्दी होती है, न घर से तनाव भरी खीचती व्याकुलता कालेज दौड़ती, न आशंका से मन घबराता है और न अनसमझी प्रतीक्षा मे नस-नस चटखती है ! उसके किस पत्र की कौन पंक्ति क्या प्रभाव पैदा करेगी, आनेवाले पत्र की कौन-सी बात, कौन-सा शब्द, किस विशेष और मधुर रस की सृष्टि करता है, यह सब नही सोचना था। वही कालेज से घर और घर से कालेज। घर पर भी बस किताबें सामने रखे खाली-सी बैठी रहती।

लेकिन बैजल का उस दिन वाला वह चुम्बन, होठों की गीली-गरम चुनचुनी (जिसे उसने शीशे में देखने की कोशिश भी की थी) के रूप में ही नही रह गया—वह तो मन के अनेक स्तरो पर उतरता चला गया था। क्या हुआ, किसी और के लिए था ! क्या हुआ, अप्रत्याशित मुहूर्त पर मिले उस 'रस' को निन्नी ने चोरी से लिया, और क्या हुआ, उस विशिष्ट क्षण वह उसके अर्थ और प्रतिक्रिया को समझ नही पाई, लेकिन था तो वह चुम्बन ही—एक पुरुष का आविष्ट, अवर्जनीय, दुर्निवार···सम्मोहक आवाहन ! अपने आप मे क्रिया वह जितनी छोटी, क्षणकालीन हो··· लेकिन सम्पूर्ण को सौंप देने और और सम्पूर्ण को समेट लेने का यह प्रतीक कितने गम्भीर अर्थों से भरा होता···काश, वह संध्या होती, तब कितने उन्मुक्त संकोच और लजीले अभिनन्दन के साथ इस अनुभूति को

समोती ! किस तरह इस संवेदन के आसपास सपने बुनती ! अच्छा, क्या वह संध्या बनकर नहीं महसूस कर सकती कि चुम्बन मन को कहाँ गुदगुदाता है···कौन-सी पुलक है, जो इन्द्र धनुष बनकर आँखों मे समाई रहती है ? और निन्नी अपने को सचमुच संध्या के रूप में सोचने और और उस पुलक को ग्रहण करने की असफल कोशिश करती···।

कभी-कभी एक चोर विचार बहुत धीमे से मन मे सिर उठाता···यह भी तो हो सकता है कि उस क्षणांश मे बैंजल को निन्नी के होठों के स्पर्श में ऐसा 'कुछ' मिल गया हो, जो संध्या में न हो···बहुत बार ऐसा होता है कि पुरुष या नारी निगाहें किसी में ऐसा कुछ पा लेती है, जो उन्हें दूसरे मे मिलता ही नही···। अत्यन्त सुन्दर पत्नी के रहते भी पुरुष किसी दूसरी औरत में आखिर क्या चीज पाता है ? और ऐसी बातें खुद उसकी अपनी जानकारी में है···। तो क्या बैंजल के साथ ऐसी सम्भावना नहीं है ? एक बार मिल लेने मे क्या हर्ज है ?

लेकिन पृष्ठभूमि के संगीत की तरह लगातार दो भावनाओं का द्वन्द्व उसे रोके रहा। बदले के 'सुख' को या सुख की भ्रान्ति को सामने पड़कर क्यों चकनाचूर करे ? चोरी की चीज का मालिक के सामने प्रदर्शन तो अपराध स्वीकारने जैसा है···दूसरे व्यंग्य से मुसकराते संध्या के चेहरे और जुगुप्सा से विकृत बैंजल की आँखों के सामने पड़ने से यो यही अच्छा है कि···नही···नहीं···।

बहरहाल महीनों निन्नी उसी सुख की मन ही मन जुगाली करती रही—कभी हड़बड़ाहट और आवेश में उसका माथा, नाक, कनपटियाँ टटोलकर होठों तक आते बैंजल के होंठों, मुख को अपने सामने साकार करती, और कभी बड़ी देर तक उसकी रोमिल छाती से सटी, बाँहों मे बंधी अपने को प्रचुम्बित अनुभव करती···फुसफुसाकर कहती, बैंजल··· बैंजल···और जब कभी होश आता कि हर बात को कितना बढ़ा-चढ़ाकर सोच रही है, तो शंका होने लगती, कही ऐसा तो नही है कि वह सब कुछ 'घटा' ही न हो और वह यों ही अपने मन से सोचे बैठी हो।

सुख···सार्थकता···अपराध और पाप का बड़ा मिला-जुला अनुभव था वह, जिसने निन्नी को एक तीखी ग्लानि और मर्मान्तक लज्जा के किनारे ला छोड़ा था।

और अब वह दर्शन की शादी के बाद समझने का प्रयत्न करती रही कि क्यों दोनों अनुभूतियां उसे एक-जैसी लगती हैं? क्यों दोनों दो अलग तरह की संवेदनाएं नहीं थी?···पहले तो यों ही, संयोगवश (बदले का) एक क्षण आया था और बड़े ऊपरी स्तर पर हलचल मचाकर वह गया·· लेकिन यह तो कुछ ऐसा था, जो सचमुच ज़िन्दगी में रहा··· जिसे सीधे उसने दर्शन से पाया और उसे नख से शिख तक डूबकर जिया ···शायद यही, शायद यही कारण था कि वह पहले उसे सुन्न और स्तब्ध छोड़ गया, पर बाद में अणु-अणु को मथता रहा ·।

मगर उसे यह हरदम लगता था कि दोनों अनुभवों में बेहद समानता कोई जरूर है···स्थितियाँ और रूप भले ही अलग रहे हों···अपनी आत्मा मे तो दोनों एक ही हैं···कम से कम यह अनुभव उसके लिए नया नही है···पहले भी बहुत बार उसने इस मानसिक स्थिति को जाना है··· सच पूछो, तो पहले से ही आश्वस्त थी कि यही होगा···।

बहरहाल दर्शन ने उसे जो कुछ दिया, वह भले ही चोरी से पाई हुई चीज़ न हो, वह भले ही सीधे ही मिला हो···लेकिन वह उसके लिए तो नहीं ही था···वह तो उसने ही गलत समझ लिया···इसमें दर्शन का क्या दोष?

उस स्तब्ध निराशा के बाद का सारा समय अपने-आपको समझाने में गया कि नहीं, वैसा कुछ भी नहीं था। दर्शन का व्यवहार बहुत ही सहज और सरल था। उसके पत्रों में वास्तव में ऐसी कोई चीज नहीं थी, जिसको इन अर्थों में लिया जा सके। वह उसके अपने मन का ही फितूर था कि रात-दिन वे उलटी-सीधी बातें सोचा करती थी।···उसने ही तो

उस दिन उस आध घन्टे या बीसमिनट बस में साथ-साथ किये गये सफर को घन्टों की अवधि में फैला लिया था·· तीन-चार घन्टे साथ देखी प्रदर्शनी को हर रोज देखने लगी थी और अपने को सपनों मे इस तरह डुबाए रखती थी, मानो वे कही दिल्ली मे ही गोल-मार्केट के आस-पास रहते है और रोज प्रदर्शनी देखने जाते हैं···कभी जाकर बड़े-से कार्निवाल में बैठते है, तो कभी-रूसी-अमेरिकन पैविलियनों के चक्कर लगाते हैं···कभी घंटे-घंटे भर भाखड़ा-नांगलडैम की नकल को ताकते रहते हैं ··और पैदल तो मानो चलते ही नही ··भीतर घूमने वाली रेल ही उन्हें सब जगह ले जाती है···लेकिन वह रेल भी नही है, क्योंकि अक्सर भीड़ से लदी रेल उन दोनों को दूर से आती हुई दीखती है—और दर्शन का वह कमरा भी बहुत कुछ बदल गया है···उसमें निन्नी ने बहुत सुन्दर-सुन्दर परदे लगा दिए हैं, छोटी-छोटी कलापूर्ण कुरसियाँ डाल दी है, दीवारों पर दर्शन की पेंटिग्ज लगा रखी है ··ये लोग—यानी निन्नी और दादा···पहुँचते हैं, तो दर्शन ड्रेसिंग गाउन में है···एक हाथ में ईजिल है, दूसरे में ब्रश...पास की मेज पर सैकड़ों चित्र के मुड़े-तुड़े ट्यूब पड़े है···सामने स्टैंड पर एक अधूरा कैनवास है और वह उसी में व्यस्त है···निन्नी खिड़की में बैठी-बैठी उसे चित्र बनाते हुए देखती है। वर्षों से वह उसे योंही रसोई में बैठाकर फूली-फूली रोटियाँ खिला रही है···अक्सर साँझ को बिड़ला मन्दिर या कॉफी हाउस तो वे लोग अनेक बार गए है।

अब झुँझलाहट आती थी कि वह सब आखिर वह किस आधार पर सोच पाई—क्यों सोचती रही ?

लेकिन शीघ्र ही आत्म-भर्त्सना के वे दिन गुजर गये और एक बहुत पुराना सवाल अक्सर ही मन में उभर—उभरकर आने लगा—अच्छा, मान लो, उसने ही वह सब सोचा, उसने ही वे सारे सपने संजोए तो आखिर ऐसा बुरा क्या किया ? माना वह कुरूप है, उसका रंग काला है, उसके नाक-नक्श अच्छे नहीं हैं, तो क्या उसे मन मे भी कुछ सोचने

का हक नहीं है ? भ्रम ही सही, लेकिन अपने जीवन की कड़वाहट और दुर्भाग्य को अगर एक भ्रम मन मे पालकर ही भुलाए रख सकूँ, तो क्या बहुत बुरा है ? किसी को यो मेरे सुख को छीन लेने का क्या अधिकार है ? पर फिर मन कहता, सुख तो किसी बाहर वाले ने नही छीना··· वह तो मेरा अपना ही दूर्भाग्य है···।

दुर्भाग्य···दुर्भाग्य···! पता नही, पिछले जन्मों में निन्नी ने क्या पाप किए थे कि किस ऋषि का शाप पाया था कि यह दुर्भाग्य उसका पीछा ही नहीं छोड़ता···! वह अभागी···अनाथ और मनहूस है··· उसका कोई नही है···उसके लिए कोई सुख नही सिरजा गया···उसके लिए कोई भविष्य नही है···बस, योंही अपने को कोसती-कोसती किसी दिन चुपचाप मर जाएगी···उसके लिए न पति है, न प्रेमी···घर-गृहस्थी कुछ भी नहीं है। आखिर क्या होगा यह सब पढ़-लिखकर···दुनिया-भर की आँखें फोड़कर ? किसके लिए ये परीक्षाएँ पास करनी है उसे ?

धीरे-धीरे उसका मन पढ़ने-लिखने से ऊबने लगा, और किताबें देखकर चिढ़ छूटने लगी। इच्छा होती, उन्हे चूल्हे मे झोंक आए···न अब उन पर कवर चढ़ाने को मन करता और न अब यह इच्छा रहती कि किताब-कापियाँ साफ और करीने से रहे···। अब हर चीज जहाँ-तहाँ बिखरी रहती। क्या होना है इस सबसे ? ये सारी दिमागी सनकें हैं— मेज साफ़ रहे, चीजें करीने से रहें और सब कुछ व्यवस्थित लगे···। किसे दिखाना है ? और कौन आएगा यहाँ ?

जिन दिनों दर्शन के पत्र आते थे, उन दिनों हमेशा, हर क्षण लगा रहता, मानो अचानक अगर किसी दिन दर्शन आ जाए, तो ऐसा न पाये कि उसकी कोई चीज कहीं पड़ी है, कोई कहीं। उसे सब कुछ साफ-सुथरा, व्यवस्थित और सुरुचिपूर्ण मिले·····।

उन दिनों उसके कपड़े अच्छे होते थे, बोलने में मिठास थी, मुस्कराने में कला थी और व्यवहार में स्निग्धता थी, मानो वह हमेशा शीशा सामने रखे अपने को किसी के लिए 'तैयार' किया करती थी, मानो यह

काल वह नाटक के विंग में बैठकर बिता रही है और किसी भी क्षण उसे स्टेज पर बुलावा आ सकता है। अक्सर फिल्मी पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा करती कि अमुक अभिनेत्री अपनी नाक दुरुस्त कराने अमेरिका गई; फलानी अभिनेत्री पर चेचक के दाग थे, प्लास्टिक-सर्जरी से ठीक हो गए; बम्बई में एक खास ढंग की मसाजिंग (मालिश) होती है, जिससे रंग एकदम निखर आता है। वे सब साबुन इस्तेमाल करती, जो त्वचा निखारने के लिए अभिनेत्रियाँ विज्ञापनों मे बताती थीं—। अब तो विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि रंग गोरा करना या फीचर्स बदल देना बाएँ हाथ का खेल हो गया है। निन्नी चुपचाप रीडर्स-डाइजेस्ट इत्यादि पत्रिकाओं मे सर्जरी और डाक्टरी उन्नति वाले लेख बेहद दिल-चस्पी से पढ़ती। बम्बई में कोई परिचित भी तो नहीं है कि उससे इस प्रकार के इलाज की जानकारी ही पाती। किसी से पूछने में तो शर्म लगती थी। कभी कल्पना में किसी अभिनेत्री को पत्र लिखती, पत्रिका को पत्र लिखती कि उसे किसी ऐसी संस्था का पता बता दे, जो यह सब करती हो··· या कभी चुपचाप बम्बई भाग जाने की बात सोचती। वहाँ जाकर इलाज कराएगी····पहले तो सारे घर वाले बहुत ही हैरान-परेशान होंगे, लेकिन जब एक दिन बिलकुल ही बदली हुई आकर वह सामने खड़ी हो जाएगी, तो कैसे सुखद आश्चर्य से भर उठेंगे····उनके भाव देख कर उसे कैसी सार्थकता की अनुभूति होगी····!

एक दिन जीजाजी किसी अखबार में पढ़े लेख के आधार पर बता रहे थे कि 'चमड़ी का कालापन शरीर में किसी विटामिन की कमी के कारण होता है। अगर लगातार कुछ समय तक उस विटामिन की गोलियों को खाया जाए, तो शरीर का रंग एकदम साफ भले ही न हो, निखर अवश्य आएगा।' उन गोलियों का पता लगाने की निन्नी ने अज-हद कोशिश की। अक्सर किसी भी केमिस्ट या दवा वाले की दुकान के सामने से जाते हुए पाँव ठिठक जाते—एक बार तो पूछ ले। शायद इनके पास वह दवा हो ही। लेकिन जाते-जाते रुक जाती और हिम्मत

न पडती। जब दवा का नाम ही नहीं पता, तो पूछेगी क्या ? जीजाजी से पूछा, तो उन्हें खुद इतनी बात के सिवा और जानकारी नहीं थी। प्रतीक्षा करती कि विदेश से आने में कितने दिन लग सकते है। हमारा यह देश भी तो कम्बख्त इतना पिछडा हुआ है कि जो चीजें पश्चिम में सौ साल पुरानी हो जाती हैं, वे यहाँ नई होकर आती हैं। अब टेलिविजन इंगलैंड-अमेरिका में कैसा घर-घर प्रचलित है और यहाँ अभी प्रयोग भी नहीं हो रहे...।

निन्नी ने मन ही मन तय कर लिया कि न सही यहाँ, दर्शन को लिखेगी। वो दिल्ली से तलाश करके भेजेगा। दिल्ली मे तो नई से नई चीज आ जाती है। लेकिन समस्या यही थी कि लिखेगी कैसे ? वह काली है, इस बात को सभी जानते हैं, लेकिन इस कालेपन को लेकर ऐसी दुःखी, चिन्तित और व्यथित है, लाख मन समझाने के बावजूद अपनी इस कमजोरी को दूसरों के सामने कबूल करते नही बनता था। फिर भी सोचे बैठी थी, किसी न किसी तरह घुमा-फिराकर इस बात को जरूर लिखेगी ...। अक्सर उसे वैज्ञानिकों पर गुस्सा भी आता। आसमान में उड़ने के लिए स्पुतनिक और रॉकेट बनाने में ये लोग इतना धन और शक्ति खर्च कर रहे हैं; इन्हे इतना ख्याल नहीं है कि धरती की लाखों समस्याएँ अभी योंही अनछुई पड़ी हैं ? क्या फायदा हवा में उड़ने से, जब इस जरा सी बीमारी का हल ये लोग नहीं निकाल पाते ?

निन्नी को याद है, इस कुरूपता और कालेपन से मुक्ति पाने की इस तरह की यह लालसा कैसे बचपन से उसके भीतर कैद-कबूतर की तरह फड़-फड़ाया करती थी और कभी भगवान से प्रार्थना करती, तो प्रसाद बोलती। उन दिनों जब मन हर धर्म-कथा पर विश्वास कर लेता है, उसने सुना था कि शिवजी बड़े भोले है और पार्वती बेहद दयालु है... अगर पार्वतीजी को उस-जैसी अनाथ, असहाय, दुःखी लड़की पर दया

आ जाए, तो काम बन जए ! वह रात-दिन पार्वती की पूजा करती, उपवास रखती और सामने देखा करती, जैसे वह कहीं जंगल मे चली जा रही है, अचानक शिव-पार्वती जाते हुए दीखते है···वह दौड़कर उसके पाँव पकड़ लेती है, "नही, नही माँ ! तुम कुछ भी करो। मैं अब छोड़ूँगी नही। मुझे या तो मार दो या इस शाप से मुक्ति दो !" तब पिघलकर पार्वती शिव की तरफ देखती है : "नाथ !" और निम्नी आँखों में याचना, हृदय मे धड़कती प्रत्याशा, उत्कंठा भरे हुए शिवजी के चेहरे की तरफ देखती है···। फिर सपने से जागकर अपना चेहरा देखती है कि कोई अन्तर पड़ा ?

बहुत बचपन में अक्सर एक कल्पना उसके ऊपर छाई रहती थी—वह खेलते-खेलते कही भटक गई है, तब कोई परी उसे अपने साथ उड़ा ले जाती है—फूलों और बादलों के देश में—वहाँ चारो तरफ हलचल है कि आज इस देश की रानी आएगी। और सपने मे ही वह यह सोच-सोचकर मरी जा रही है कि यहाँ की परियाँ जब इस 'रानी' का रूप देखेंगी, तो कैसी निराश होंगी···। फिर पता नहीं क्या होता है कि वह एक तालाब में नहाने जाती है। जैसे ही डुबकी लगाकर निकलती है, तो पाती है कि अरे, वह तो परियों से भी सुन्दर हो गई है···सफेद दूधिया मधु-जैसी उसकी शरीराभा है और जो रूप देखता है, सो देखता ही रह जाता है · आनन्दोच्छ्वास से उसकी आँखों में आँसू भर आता है ···वह विश्वास नहीं कर पाती और बार-बार अपने को छूकर देखती है ···साथ ही उस समय भी यह चेतना और डर बने है कि आँखें खुलेंगी, तो यह सारी सुन्दरता गायब हो, जाएगी·· पता नहीं आशा के सुख या आशंका की विभीषिका से वह रो पड़ती है···।

वर्षों यह सपना उसके ऊपर ऐसा कुछ हावी रहा, वह बस सोते-जागते उसे ही दुहराती रहती···कोई चमत्कार होगा। कोई तालाब मिलेगा, जो मुझे एकदम नया रूप दे देगा···। रास्ते में पड़नेवाले किसी भी छोटे-से गढ़े को देखकर सोचने लगती कि यही शायद वह तालाब

हो···ऐसे चमत्कारी तालाबों का बाहरी रंग-रूप ऐसा ही होता है। देखने में उपेक्षित और निर्जन से होते हैं। अलादीन को कैसा पुराना-सा दिया मिला था···गंगा में डुबकी लगाकर सिर निकालती, तो लगता, निश्चय ही इस बार एकदम बदल गई है···।

उसके बाद मनोकामना पूर्ण करने वाले कितने मन्त्रों का पाठ उसने नहीं किया, कितने व्रत और अनुष्ठान-उपवास नहीं किए, कितना रगड़-रगड़कर नहीं नहाई और कौन-से उबटन-क्रीम नहीं मले···और तब आखिर में हार मानकर उसे स्वीकार करना पड़ा कि जिन्दगी-भर उसके नाक-नक्श यही रहेंगे, रंग-रूप में अब कोई भी परिवर्तन नहीं होगा और यह कालापन अब उसका विशेषण नहीं, भाग्य बनकर रहेगा···। लेकिन इस स्थिति को स्वीकार कर लेना क्या इतना सरल था? कितनी मानसिक और आत्मिक यन्त्रणाओं के बाद यह बात, बूंद-बूंद करके गले उतरी थी कि वह जैसी है, वैसी ही रहेगी और किसी चमत्कार से कुछ नहीं होगा···न कोई परी अपनी रानी को लेने आएगी, न पार्वती उस पर दयालु होंगी···।

साँझ को छत पर खेलते समय घर बाहर के बच्चे, खास तौर पर बिट्टन उसे चिढ़ाते, "काली कलूटी···बैंगन लूटी···भरे बाजार में घम्-घम् पीटी···!" उसके दाँत भिच जाते, मुट्ठियाँ कस जाती और मन होता कि बिट्टन के दोनों गाल नोंच ले। लेकिन वह रुँधे गले से उसे समझाने की कोशिश करती, "काले-काले रामजी के प्यारे···काला तो भगवानजी का रंग है···। रामजी, कृष्णजी, शिवजी—सारे अवतारों को देख लो, सबका रंग काला है।" बिट्टन फिर कहता, "पर राधा, सीता और पार्वती तो काली नहीं हैं। कालीमाता काली हैं।" उसे कोई जवाब नहीं सूझता और रोती हुई जाकर शिकायत कर देती। अम्मा समझाती, 'तू कोई काली थोड़े ही है, तू तो साँवली है···।"

श्याम और श्यामा या साँवरे और साँवरिया की बातें सुन-सुनकर जाने कैसे निन्नी के मन में बैठ गया था कि राधा का रंग भी साँवला था,

और इस ज्ञान से उसे इतना सुख मिला, इतना सन्तोष मिला, मानो छाती पर रखा बोझ किसी ने उठा लिया हो या फाँसी की सजा से मुक्त कर दिया हो···यही सांत्वना थी, जो उसे राधा के बहुत निकट ले आई थी···वह अक्सर कल्पना करती कि राधा 'उसकी अपनी' ही निकट का कोई है और वे दोनों एक ही हैं—एक ही कृष्ण को प्यार करती हैं। कभी-कभी यों भी लगता है कि हो सकता है, उसके रूप में राधा का ही जन्म हुआ हो, जैसे मीरा का हुआ था। और कृष्ण तो भगवान है, हो सकता है, 'अपनी राधा' को सुन्दर बना दें। वह रात-दिन मीरा का भजन गाती घूमती, "मैं तो साँवरे के रंग राती।" और साँवले रंग को अपना रंग समझने का शौक कुछ ऐसा बढ़ा कि बहुत दिनों बाद तक जब भी किसी प्रसिद्ध महिला का नाम सुनती, तो उसके महान कार्य जानने की बजाय पहला विचार मन में यही आता कि इसका रूप-रंग कैसा है? उसके कोर्स में सरोजिनी नायडू की एक कविता थी। किसी ने बताया कि सरोजिनी का रंग काला है। बड़ा दिलासा मिला। मानो 'नाइटिंगेल' वह नहीं, निन्नी स्वयं है। वह अन्ध भक्त की तरह उनकी प्रशंसा करती—उनको संसार की सर्वश्रेष्ठ कवियित्री बताती···मानो उन्हें सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करके वह यह जताना चाहती थी कि उनका कालापन ही महानता का कारण है···।

परन्तु इन सारी साँत्वनाओं और स्वप्नाकांक्षाओं में से किसी ने भी साथ नहीं दिया और यथार्थ अपने नुकीले पंजे गड़ा-गड़ाकर बताता रहा कि उसकी स्थिति क्या है···वह कहाँ है?···और कि इस वास्तविकता की यातना को कोई नहीं बाँटेगा, इसे अकेले निन्नी को ही सहना होगा···उसकी घुटन उसके भीतर ही कैद रहेगी और उसे कुतर-कुतरकर खाती रहेगी···अकेली, अभागी, कुरूप, असहाय! पता नहीं क्यों उसे यह विश्वास हो गया और बाद में भी जो सारी जिन्दगी छाया रहा कि मैं अकेली हूँ और मेरा कोई भी नहीं है—मेरे माँ-बाप मेरे नहीं हैं—वे प्यार नहीं, दया करते हैं···यह घर नहीं, मेरा शरणस्थल है और वस्तुतः

हर आदमी मुझसे घृणा करता है। अगर कोई उससे एक गिलास पानी भी माँगता, तो लगता, इसका कारण उसका कालापन है। अगर उसकी चमड़ी गोरी होती, तो कोई यों थोड़े ही बात-बे-बात काम को कहता रहता···और झट उसे रोना आ जाता। उन दिनों उसे रोने के दौरे आते थे···जरा-जरा सी बात पर दो-दो दिन खाना नहीं खाती थी और घंटों पड़ी-पड़ी विसूरती रहती थी। कोई कुछ भी कहता या जरा भी उसे लगता कि उसकी उपेक्षा हो रही है, बस फफक-फफककर रो उठती और ऐसे जोर-जोर से रोती, मानो किसी ने उसे मारा हो। बस यही लगता कि सब लोग उसकी इसीलिए उपेक्षा करते हैं और इसीलिए उससे कतराते हैं विरक्ति अनुभव करते हैं कि वह काली-कुरूप है···।

और शायद वे ही दिन थे, जिन दिनों उसके मन मे बैठता जा रहा था कि अब उस कुरूपता को स्वीकार कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं है, कोई बचाव नहीं है। यही उसकी नियति और प्रारब्ध है। उन्हीं दिनों वह अपने मन मे को तरह-तरह की कल्पनाएँ भी करने लगी थी। इस तरह बोझ और अभिशाप बनकर जीने से लाभ ? मरने के तरह-तरह के तरीके दिमाग में आते, आत्महत्या की विधियाँ सोचती और इस बारे मे जानकारी इकट्ठी करती कि सबसे कम कष्टप्रद-मरण कौन-सा है। कहीं से कूद पड़ना, रेल मे कट जाना, जहर खा लेना—अलग-अलग तरह से वह अपने मरने की कल्पना करती और अपने मृतशरीर को पड़ा देखती, लेकिन इस तरह मरने में जो कष्ट होना था, वही भय बन कर हाथ पकड़ लेता। बस, यही कामना करती कि एक दिन सोए और सोती ही रह जाए···।

बीच-बीच में विवाह के प्रसंग, चर्चे और प्रदर्शन के बाद अस्वीकरण, फिर रोना-पीटना, आत्महत्या के मनसूबे और तरह-तरह से पल-पल मिलती आत्मयातना, सब चलते रहे। तभी हुई बैजल वाली घटना और उसने निन्नी की सारी मानसिकता को ऐसा मोड़ दिया कि वह खुद चौंक-

कर थर्रा उठी ··लेकिन एक तेज प्रवाह था, जो उसे बहाए लिए जा रहा था ··मानो एक अनजान और निश्शब्द-सी ललकार थी, संध्या को सभी कुछ करने का अधिकार है, उसे सभी सुख सहज प्राप्य हैं, क्योंकि वह गोरी है, सुन्दर है, उसे सभी जगह मान और सफलता है और मुझसे यह सब इसीलिए दूर है—मुझे इसीलिए कुछ नही मिलेगा कि मैं कुरूप, काली हूँ····?

सही है कि बहुत दिनों वह बैंजल के सामने नही पड़ी या मिलते कतराती और आँखे चुराती रही, लेकिन बैंजल के चुम्बन ने एक ऐसी आग भड़का दी थी, एक ऐसा चुनौती-भरा प्रश्न सामने था, जिसका जवाब उसे देना ही था, "क्या इस सुख की सम्पूर्णता को वह कभी नही जान पायेगी ?" और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कोई बहुत भीतर, अव्यक्त-सा कहता, 'मैं भी देखूँगी, मुझे कौन रोकता है ?' जितना ही अधिक वह उस सचाई को महसूस करती कि हाँ, इस सम्पूर्णता में जाना उसके भाग्य में नहीं है, उतनी ही जिद भी चढ़ती जाती, नही····नहीं, उसे कोई नही रोक सकता ···!

उन दिनों स्वभाव में एक अजब उद्धत अशिष्टता आने लगी। कालेज में अब सकुचाती, देह चुराती-सी नही, तनकर बैठती और सीधे आँख से आँख मिलाकर देखने का प्रयत्न करती और पल्ला इधर-उधर सरक जाता, तो संस्कारगत लज्जा से लड़ती हुई उसे यों ही पड़ा रहने देती···· लम्बी चोटी को सामने लाकर रिबन या बालों के सिरों से खेलती रहती और अकारण ही सिर झटककर इधर से उधर गरदन मोड़ती, मानो किसी बात से चौंककर उधर अचानक आकर्षित हुई है ! पहले हिम्मत नहीं पड़ी, लेकिन बाद में बहुत हलका पाउडर और क्रीम भी शरीर पर आ गया। दूसरी लड़कियों के कन्धे पर हाथ रखकर बात-बे-बात बोलते रहना अच्छा लगता था। उसकी तरफ विरक्ति और परिहास से देखते लड़कों को मुँह चिढ़ाने की इच्छा होती और अनेक बार तो जीभ दिखा-

कर मुँह बिरा देती। अब गुनकर कहती, "प्रथम नम्बरों से पास होने के लिए, प्रोफेसरों की तारीफ लेने के लिए गोरी चमड़ी की जरूरत है! जितनी ये ऊँची से ऊँची तारीफ पाने वाली लड़कियाँ हैं, उनके गरेबान में झाँककर देखो, ये सचमुच प्रतिभा और योग्यता से वहाँ पहुँची है या कुछ और कीमत भी इसके लिए उन्हें चुकानी पड़ी है···?"

हमेशा मन कुछ दुष्ट, कुत्सित और वर्जनीय कहने और करने को मचलता रहता···छिप-छिपकर चटखारेदार-प्रेम और रोमांस की किताबें पढ़ती, उनके चुम्बनों, आलिंगनों वाले वर्णनों को अनेक बार दुहराती और आँखें बन्द करती, तो बैजल की गर्म-गर्म साँसें और अँधेरी म्यानी सामने आ जाती, फिर जो उस दिन नहीं हुआ था, उस सबको बढ़ा-चढ़ाकर देखती। रात को दो-दो, तीन-तीन बार उठती और अकेली छत पर टहलती और छज्जों से ताक-झाँककर जान लेना चाहती कि कहाँ कौन क्या कर रहा है···। चाल में बिल्ली जैसा निःशब्द चौकन्नापन आ गया था और किसी भी खिड़की या कमरे का दरवाजा एकदम ऐसे झटके से खोलती, मानो कमरे मे दो प्यार करते आलिंगनबद्ध प्राणी गुँथे लेटे हैं; वह यों बिना आहट झटके से दरवाजा खोलेगी, तो अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक करने से पहले ही उन्हें देख लेगी···स्त्री-पुरुष के शरीर-सम्बन्धों के बारे में सारी जानकारी उसने उन्हीं दिनों में प्राप्त की और इस दिशा में उसे सहायता दी पड़ोस के त्रिपाठी जी के भतीजे सागर ने···।

त्रिपाठी जी के तीन बच्चे थे—दो बड़ी लड़कियाँ और एक लड़का—डेढ़ वर्ष का। उसे गोदी में भींचने, उसके गालों को नोचने में निन्नी को बड़ा आनन्द आता और जब मौका मिलता, वहाँ भाग जाती। गर्मियों में उनका एक भतीजा—सागर—छुट्टियाँ बिताने आया था। बीस-बाईस वर्ष का होगा। सारे दिन वह उन लड़कियों और निन्नी होती, तो निन्नी को भी तंग करता रहता। कभी आपस में उनकी

चोटियाँ बाँध देता, कभी बिल्ली का बच्चा ऊपर लाकर फेंक देता और कभी बाहर से गुसलखाने की चटखनी लगा लेता। सारे दिन भाग-दौड़ कुश्तम-कुश्ता रहती, ताश होते और चाट खाई जाती। उसी के पास से चुराकर तीनों लड़कियों ने बारी-बारी से एक किताब पढ़ी थी। उसमें तस्वीरें भी थीं और निन्नी को विश्वास नहीं होता कि ऐसी नंगी और अश्लील भाषा में भी कोई किताब लिखी हो सकती है...।

त्रिपाठी जी को खुद चौपड़ का बड़ा शौक था, सो साँझ को नियमित रूप से चौपड़ जमता। वे बैंक से लौटकर खाना-पीना खाते और चौपड़ बिछ जाती। पतंगों का शोर-शराबा थमता कि चौपड की गोटियाँ बजतीं। त्रिपाठिन बहुत शोर मचाती कि ये उल्टे-सीधे हाथ करने का खेल 'दलिद्दर' लाता है, लेकिन उनकी बक-झक पार्श्व-संगीत की तरह चलती ही रहती। उनके यहाँ बिजली नहीं थी, सो बीच में लालटेन रख ली जाती और उनके इस घर के बच्चे सट-सटकर गोला बना लेते। कौड़ियों की खनखनाहट, गोटियों की खटर-पटर, ये 'कूटा', 'ये मारा' के शोर के साथ लड़कियों की चूड़ियों की झनझनाहट के बीच ये लोग छायाओं की तरह जोर-जोर से लड़ते-बोलते, गोटियाँ 'लाल' करते और जोश-खरोश से लड़ते, एक-दूसरे को चिढ़ाते...उसी जोश-खरोश में अक्सर निन्नी अपने घुटने या जाँघ के नीचे सागर का पँजा या घुटना दबाए रहती—जाने कैसे वह वहाँ आ जाता...उसकी सारी चेतना वहीं रहती और दिल धक-धक करता रहता कि कहीं कोई ताड़ न रहा हो...। खेल अपने पूरे जोश-खरोश से चलता रहता। सागर बीच-बीच में खेल भूल जाता और उसकी आवाज कंपकंपा उठती, तो निन्नी को झुंझलाहट चढ़ आती—यह कमबख्त पकड़वायेगा। गुस्से से कहती, "यह घुटना यहाँ से हटाओ...। सागर, तुझे खेलना-खालना कुछ नहीं है... उधर सरक। मुकुन्दे, तू बैठ...।" तब सागर एक तरफ सरक जाता या कोई किताब-पत्रिका लेकर पढ़ने की कोशिश करता। लालटेन का लाभ

उठाने के लिए छोटा-सा तकिया लाकर इस तरह फर्श पर ही लेट जाता कि चौपड़ के गोने मे उसका सिर होता और शेष शरीर दरी पर रहता। राम जाने पढता था या नहीं, लेकिन कभी उसकी कुहनी या कभी पंजा निन्नी के पाँव के नीचे सरक आता और वह जोर से उसे दबाकर आगे बढने से रोकने का निर्बल प्रयत्न करती रहती···फिर हारकर विरोध छोड़ देती···।

घर पर खूब डाँट पडती, गालियाँ मिलती, "इस लडकी का पढ़ने-लिखने में दीदा ही नहीं लगता····! जब देखो त्रिपाठी जी के यहाँ···जब देखो त्रिपाठी जी के यहाँ ! वहाँ क्या तेरा नाल गड़ा है ? नौ-नौ बजे तक चौपड़ खेलती है। फेल होना, फिर देखना न तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँ···! जाने कैसे-कैसे तो इन्हें आजकल के जमाने में पढ़ाओ-लिखाओ···धींगड़ों को कोई खयाल ही नहीं! ···"

एक अजीब उत्तेजना तन-मन मे सनसनाया करती उन दिनों···हर समय त्रिपाठी जी के यहाँ भागने को मन करता रहता—कभी बच्चू के बहाने, कभी बुनाई सीखने ··। त्रिपाठी जी के यहाँ का कोई काम होता कि वह दौड़कर वहाँ जा पहुँचती। जहाँ दोपहर में सागर सोता था, वहाँ अदबदाकर कोई न कोई चीज खोजती पहुँच जाती। अक्सर ही माया इत्यादि कोई पत्रिका माँगती। जासूसी किताबें पढ़ने का नया-नया चस्का लगा था। वे सब वही अलमारी में रखी होती। चारपाई के सिरहाने, आलमारी के निचले खाने में झुके-झुके किताबे खोजती, तो ऐसी खड़-खड़ करती कि वह जाग जाता और करवट बदलकर निन्नी की पीठ या पसली पर हाथ रख देता, तो झटक देती—"यह क्या होता है, सागर ?" हम शिकायत कर देंगे····!"

लेकिन सारी ग्लानि, मानसिक प्रतिरोध और लज्जा के बावजूद यह उत्तेजनात्मक सनसनाहट उसे मजबूर कर देती थी···कहीं भीतर एक

हल्की-सी सान्त्वना भी मिलती—देखो, कितने लोगों को मैं धोखा दे सकती हूँ···ऊपर का सीधापन कायम रखते हुए भी उन सब अनुभवों को अपने आप प्राप्त कर सकी हूँ। लेकिन अन्तर्तम से उभड़ती परिताप और अपराध-भावना रात-दिन कचोटती रहती···यह सब बहुत बुरा हो रहा है···यह नहीं होना चाहिए···। लेकिन पता नहीं, किस फिसलते ढाल पर थी कि दिन की यह ग्लानि और वर्जना रात अँधेरे में घुलकर गायब हो जाती और शरीर का जो भाग अधेरे की आड़ में पड़ता, सागर की उँगलियाँ जाने कैसे घूमती-फिरती वही आ जाती···कभी वह उन्हें पीठ के चिकनेपन पर महसूस करती और कभी साड़ी की सलवटों के नीचे घुटने के अन्दर वाले मोड पर···और लालटेन की रोशनी वाले चेहरों पर ये सब लोग दोनों हाथों की जुड़ी अगुलियों मे जामुनों की तरह हिला-हिलाकर कौड़ियाँ फ़ेंकते; आडी कौड़ी खुली है या बन्द, इस पर लड़ते; आवेश या हताशा से दरी पर हाथ पटकते···और कभी कोई सारी गोटियाँ लाल करके 'संडा' निकाल देता, तो उसकी हर चाल पर ऐसा शोर होता मानो बीस-पच्चीस आदमी लड़ रहे हों, क्योंकि वह उलटी दिशा में सारी चौपड़ का चक्कर लगाता था।

मगर शीघ्र ही सागर चला गया। अगर वह वही रहता, तो निन्नी किस सीमा पर आकर रुकती, वह नही जानती। एक पागल उत्तेजना से भरा नशा था, जो उसके सारे होश-हवास पर छाया रहता था। पढ़ने-लिखने में तो खैर मन लगता ही क्या, आधा समय बाल संवारने-सजने में जाता और आधा त्रिपाठी जी के यहाँ जाने के बहाने खोजने में। सारे शृंगार-पटार के बावजूद निन्नी त्रिपाठी जी के यहाँ दिन में जाते कतराती ही थी···दिन छिपने के बाद रंग का कालापन निश्चय ही इतना असुन्दर और भयानक नहीं दीखता होगा···चाहे जितना पाउडर थोप लो, चाहे जितना तेल-फुलेल करो, दिन में तो वह कुरूप ही दीखती है, इस बात को वह कैसे भूल सकती है?···यह भी जानती थी कि यहाँ से जाने के

बाद सागर शायद ही कभी उसे याद करे या लिखे। एक बार आशा ने मज़ाक मे कहा भी था, 'सागर निन्नी से शादी करेगा ? देख कैसी गुणी है ! सारा काम जानती है। कैसी सारे दिन हँसती रहती है। तेरे लिए भाग-भागकर आती है। सागर का चेहरा शर्म से—नहीं, शायद अपमान से लाल हो गया। तब मीना ने बात सँभाली, "अरे, सागर भैया निन्नी से क्यों शादी करेंगे ! वो तो इंजीनियरिंग पढ़ने विलायत जाएँगे, तो मेम लाएँगे···क्यों है न सागर भैया···?" मीना ने चिढ़ाते हुए सागर की कमर में उँगली गड़ाकर गुदगुदी मचा दी ।

लेकिन सागर था कि हमेशा उसके ऊपर छाया रहता था और वह रात-दिन उसीकी बात सोचती। अगर वह उससे शादी कर ले, फिर बाहर विदेश में ले जाकर 'इलाज' करा लाए, तो कैसा अच्छा हो। अवसर उसने सागर के साथ भाग जाने तक के सपने देखे थे। मगर वह भी अच्छी तरह जानती थी कि सागर निन्नी से निकटता दिखाने में लज्जा नहीं, अपमान अनुभव करता है। कई बार उसे पत्र लिखते-लिखते रह गयी। बाद में अपने को धन्य मानती रही, क्योंकि वह था ही ऐसा कि जरूर उसका लिखा पत्र मीना-आशा को दिखा देता। जाते-जाते तो निन्नी की उससे लड़ाई भी हो गई···वह बाजार जा रहा था और दोनों लड़कियाँ उससे अपनी-अपनी चीजें मँगा रही थीं—चुटीले, पिन, सलाई, ऊन इत्यादि। निन्नी ने कहा, "हम पीछे पैसे दे देंगे, हमारे लिए क्रीम की शीशी भी ले आना···।" तो एक दम कहता क्या है, "ओ हो, न सूरत की न शक्ल की···अब ये क्रीम लगाएगी···! छछूँदर के सिर मे चमेली का तेल···!" निन्नी के मुँह से एक शब्द नहीं निकला। वह एकदम फूट-फूटकर रो पड़ी। बाद में मीना और आशा उसे डाँटती और निन्नी को समझाती रहीं, त्रिपाठिन चाची ने भी आड़े हाथों लिया और वह "आइ'म सारी।" कहकर बाजार चला गया। लेकिन यह अपमान उसे इस तरह तिलमिला गया था, जैसे रिसते नासूर मे किसी ने सुई कोंच

दी हों…। आखिर सागर फिर वे सारे खिलवाड़ क्यों करता था ? क्योंकि चौपड की अपेक्षा निन्नी के शरीर पर हाथ फेरना अधिक रोमांटिक मनोरंजन है ? दिन में जिसे देखकर उसके दिल में विरक्ति और जुगुप्सा जागे, अँधेरे मे उसी शरीर को कैसे क्यों सहला और गुदगुदा पाता है…? और निन्नी को खुद क्या हो गया है—उसकी दिन वाली निगाहों को वह भूल ही कैसे जाती है ?

सागर के जाने के बाद मन का ज्वार कम हो गया हो, ऐसा नही… वह जाने किन-किन रास्तों और बाँधों को तोड़कर वह निकलना चाहता था। समझता रहे सागर अपने को लाटसाहब, वही कौन उसके लिए मरी जाती है। अक्सर एक हूक उठती, रूप न सही, उसके पास रुपया ही होता, तो देख लेती, कौन यों उसके मुँह पर कह जाता कि "सूरत की न शक्ल की…।" तब बाबूजी भी कहते, "लो, गाड़ी लो, जेवर लो, नकदी लो और करो मेरी लड़की से शादी …।" उस वक्त इन्कार करने वालों को वह भी देख लेती। वह खुद ही बीस हजार रुपये उठाकर सागर के मुँह पर मारती—"ले, चल मै भेजती हूँ तुझे विलायत…।" नाक रगड़ता हुआ आता। लेकिन अपने घर की जो स्थिति थी, वह तो थी ही, उसमें क्या परिवर्तन आना था ! जब किसी चीज के लिए अम्मा से कहो, वे बैठकर खर्चा बताने लगती। तब मन झुँझलाहट से भर जाता, "तुम हमेशा बस खर्चे को ही रोती रहोगी…।" रात-दिन सोचती रहती कि कहीं से बस इतना पैसा आ जाए…इतना पैसा आ जाए कि बस…एक साथ ही सारे कष्ट दूर हो जाएँ। जमादारिन ने एक बार बताया था कि उसके मुहल्ले के एक बढ़ई को तीन लाख की लाटरी आ गई…। बढ़ई ने जब सुना, तो खुशी के मारे उसका हार्ट फेल हो गया। अगर निन्नी को भी आ जाए, तो क्या उसका भी हार्ट फेल हो जाएगा ? लेकिन पता नहीं, ये डरबी के टिकट मिलते कहाँ हैं ? …दूर से वह किसी चीज को जमीन पर पड़ा देखती, तो ऐसा लगता, मानो किसी का पर्स

पड़ा है; खोलेगी, तो चार लाख रुपये निकल पड़ेंगे···। मान लो, हवाई जहाज से नोटों का बंडल ही टपककर आ गिरे···और उसी समय वह छत पर कपड़े सुखा रही हो···मजा आ जाए।···एक साथ ही सारी समस्याएँ हल हो जाएँ। पहले जमाने में चील-कौए अक्सर लोगों की छत पर कीमती हार गिरा दिया करते थे···आजकल वैसे चील-कौए भी तो नहीं होते! अच्छा मान लो, कैसे भी उसे चार लाख रुपये मिल जाएँ, तो? वह घन्टों बैठी उन चार लाख रुपयों को खर्च करने की योजना बनाती रहती···सबसे पहले तो विलायत जाकर अपना रंग साफ कराएगी·· चाहे इसमें दो लाख रुपये खर्च होजाएँ···बस, उसके बाद तो सारी समस्या ही हल हो जाएगी···।

जाने कैसे उसका यह विश्वास दृढ़तर होता चला गया कि उसे रुपये मिलेंगे अवश्य···किसी बहाने मिलें···यह तो उसके भाग्य में ही है। बस, जो भी देर लग रही है, सो भगवान उसकी परीक्षा ले रहे हैं। जिन्हें भगवान रूप नहीं देता, उन्हें जरूर उसके बदले में कुछ ऐसा देता है कि वे इस कमी को पूरी कर लें···अपने साथ खेलने वाली सरस्वती को ही लो, मुझसे भी कुरूप थी देखने में—काली, फिर चेचक के दाग! लेकिन क्या तकदीर लेकर आई थी, जिनके यहाँ शादी हुई, उनकी किस्मत रातों-रात बदल गई···! आज उनके दर्जनों मकान हैं, दो-दो कारखाने हैं, कौड़ियों नौकर हैं। जब गई थी, तो ससुराल में भुनी-भाँग नहीं थी। अब सोने से लदी घूमती है। ···पति इशारों पर नाचता है, कहता है, "मेरी लक्ष्मी तो तू है।" निन्नीके भी भाग्य में जरूर ऐसा ही चमत्कार लिखा है···।

और उस चमत्कार की तलाश में जब वह भीड़-भरे बाजारों, मेलों या मीटिंगों में जाती, तो बेहद चौकन्ना रहती, कहीं भी हीरे की अँगूठी दीख सकती है···किसी के पैरों तले कुचलता बटुआ नजर आ सकता है···ठोकरों से लुढ़कर दूकान की नाली के पास जेवर की पोटली ही

दीख सकती है···। लेकिन भीड़-भरे बाजारों में, मन्दिर या त्यौहारों-मीटिंगों में वह 'चमत्कार' तो कहीं नहीं मिला; हाँ, जान-बूझकर और अनजाने ही मिलने वाले धक्कम-धक्कों या दबावों ने एक सिहरन-भरी रोमांटिक-सनसनाहट का 'चस्का' जरूर मन में जगा दिया···पसली से सरककर छाती को हूलती अनजान कुहनी या अदृश्य उँगलियों की चिकोटी एक रहस्यमय गुदगुदाहट से तन-मन को झनझना जाती और उसी झनझनाहट की खोज में वह भीड़ में जाने के अवसर खोजती रहती···शायद यह सागर द्वारा दिया गया ही 'चस्का' था, जो अब अनेक-अनेक रास्तों में फैलकर अपनी परितृप्ति के लिए फूट पड़ा था। मन में एक पाप का घुना लगा था कि यह अनुचित, अनैतिक और निषिद्ध रास्ता है, पता नहीं, यह उसे पतन के किस रास्ते ले जाकर छोड़े। पर शीघ्र ही यह भाव गायब हो जाता और मन्दिर में सावन की झाँकी देखते हुए जैसे ही किसी के कन्धे का अर्थ-भरा स्पर्श अपनी बाँह या पीठ पर महसूस करती कि पाँव वहीं गड़ जाते और तल्लीन होकर झाँकी देखने के बहाने उन क्रमशः अग्रसर होते प्रयत्नों का स्वागत करती रहती···जानती थी कि इस सबसे कुछ नहीं होगा···तृप्ति का यह रास्ता भी नहीं है, इससे शायद आग और भड़केगी···लेकिन निषिद्ध-आनन्द का स्वाद था · या 'गोरी और सुन्दर' लड़कियों की ओर से आती निश्शब्द ललकार थी, जिसका जवाब निन्नी के आन्तरिक व्यक्तित्व को देना ही था···और उन्हें वह जता देना चाहती थी कि रूप की प्रशंसा की चरम परिणति के स्वरूप तुम्हें जो 'सुख' मिलेगा, मैं भी उससे अपरिचित नहीं हूँ···। उसने भी उस सुख को लिया और जाना है···। शायद उनसे अधिक बार जाना है···अधिक व्यक्तियों द्वारा जाना है···ऊपर से भले ही निरीह, बेचारी और कुरूप दीखती हो···लेकिन निन्नी समझती सब है और उन्हें वहाँ भी ललकार सकती है···।

तभी सुना—"दिल्ली में नुमायश लगी है। इतनी बड़ी नुमायश कि

सन् ११ के बाद शायद ही कभी लगी हो। स्पेशल ट्रेनें जा रही हैं, स्कूल-कालेजों से दल के दल लोग दिल्ली की ओर टूट पड़े हैं। दिल्ली में जो रहते हैं, उनके यहाँ मेहमानों का ताता लगा है···।"

दादा अपने इंटरव्यू के लिए जा रहे थे, निन्नी ज़िद कर बैठी, "हम भी चलेंगे···।"

"वहाँ क्या है ?···लाखों की भीड़ है। आदमी पर आदमी टूटा पड़ता है।" अम्मा ने झिड़क दिया "कहाँ-कहाँ लिए घूमेगा तुझे ये···।"

निन्नी ने बाबूजी को तैयार कर लिया—"रम्भी ले जाए, तो चली जा।" रुआंसे स्वर से उसने दादा की चिरौरी की, "नुमायश है, तो भीड़ होगी ही···ऐसी नुमायश क्या रोज-रोज लगती है! हमें कहीं नहीं ले जाते, बस यहीं सड़ाकर मारेंगे···। वही कालेज से घर और घर से कालेज···! दुनिया के लोग देखने जाते है, उनके लिए भीड़ नहीं है। सब लड़कियों के भाई ले जाते हैं···। रस्तोगी साहब के सारे बच्चे देखने गए हैं···।"

और निन्नी ने दादा की सारी शर्त मंजूर कर ली···अफीम के नशे वाले व्यक्ति को तलब के समय जैसे अफीम के सिवा कुछ भी नहीं सूझता, उसी तरह निन्नी के सामने अनजान शहर की अपरिचित भीड़ थी···लाखों लोगों की, एक-दूसरे को पीसती और भींचती भीड़ थी·· वहाँ यह भी डर नहीं था कि कोई परिचित चेहरा न दीख जाए···बसों में, सुनते हैं, वहाँ स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। कुन्ती ने अपना अनुभव सुनाया था, कैसे दिल्ली की बस में लोग 'शैतानी' करते है···और उस झनझनाहट का आनन्द उसने कल्पना में अनेक-अनेक बार लिया था··· वह रास्ते-भर उसी 'सुख' के सपने में डूबी चली आई थी...।

और तब उसकी भेंट हो गई दर्शन से···उन दो दिनों के बाद निन्नी ने पाया कि वह अपने लिए एकदम अपरिचित हो उठी है···वह 'वह'

नहीं रह गई जो जाते समय थी···एक चेतन उद्भास है, जो उसके आन्तरिक व्यक्तित्व की एक-एक भीतरी परत को आलोकित-शीतल करता हुआ निरन्तर ऊपर उठता चला जा रहा है···और इन परतों का ऊर्ध्व-मुखी अतिक्रमण वह बहुत ही स्पष्ट महसूस कर रही है, चकित होती है, कि कहीं यही तो वह जादू के पानी से भरा तालाब नहीं है, जो उसे अक्सर सपनों में दीखता रहा है, और कल्पना की है कि उसमें नहाकर वह एकदम नई और निर्मल हो उठेगी···।

बीमार पगडण्डी

और अब निन्नी को फिर लगने लगा कि वह सब एक मधुर झूठ और छलावा था···उसे कोई ऐसा तालाब नहीं मिलेगा, जो धोकर निर्मल कर दे···निष्पाप कर दे। पाप उसका प्रारब्ध है और पाप ही उसकी नियति है···। निश्चय ही ये सारे पूर्वजन्म के कर्म हैं कि उसे कोई सुख नही मिल पाता और उसके भीतर जन्म लेने वाला आलोक भीतर ही भीतर मर जाता है—मूलतः वह अभागी, अनाथ और मनहूस है और भगवान जिसे जो सजा देता है, वह भुगतनी ही पड़ती है—वह किसी चीज के बदले में कुछ नही देता—वह कहीं क्षति-पूर्ति नहीं करता! क्यों नहीं, वह उस तथ्य को स्वीकार कर लेती और क्यों बार-बार अपने को गलतफहमी में रखकर बाद में दु.ख पाती है ? देखने में कुरूप, मन से पापिनि, बुद्धि से अस्थिर—उसका आखिर उपयोग और आवश्यकता क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तर से अपने मन को शान्त रखने के लिए धीरे-धीरे उसकी प्रवृत्ति पूजा-पाठ की ओर बढने लगी। अक्सर वह आँखें बन्द करके मन्दिर और भगवान का ध्यान करती, तो आँखों में आँसू भर आते, बाद में मन में हलकापन महसूस होता ·। पहले वह परियों से, दैवी-शक्तियो से, शिव-पार्वती से 'रूप' माँगने जाती थी, दया माँगती थी; अब किसी से कुछ भी नहीं—कुछ भी नही माँगती। अब तो न वह साँवरी थी, न मीरा; न शबरी थी, न अहिल्या; बस, दुखी, हताश, थकी-माँदी, टूटी-फूटी आत्मा थी, जो 'शान्ति' माँगती थी···भक्तों की शब्दावली मे भगवान के चरणों में शरण चाहती थी। मन ही मन कहती, 'तुम्हारे संसार को बहुत देखा·· बहुत जिया—यह सब माया है, दिखावा और धोखा है···मेरा जी भर गया है। यहाँ मुझ जैसी अभागी के लिए कोई जगह भी नहीं है। मुझे उठा लो भगवान !···मैंने अपनी पात्रता मे

अधिक चाहा और तुमने उसका मुझे भरपूर दंड दिया…।'

सचमुच उन दिनों हर चीज से विरक्ति होती जा रही थी। किसी भी काम को करती, तो अनचाहे ही सवाल उठता मन मे, 'क्या होगा ? इससे क्या मिलेगा ?' अब न भीड़ मे जाने को मन करता था, न किसीसे मिलने-जुलने को। मिलती-जुलती पहले भी नहीं थी, लेकिन पहले एक हीनता-भाव था, अब एक सहज अनिच्छा। हर बात पर जाने कहाँ से 'क्या होगा ? क्या फायदा ?' के सवालिया-निशान उभरते और सारे उत्साह पर ठंडा पानी डाल जाते…!

मिलने-जुलने या आने-जाने तक ही यह उदासीनता सीमित रही हो ऐसा नहीं है। पहनने-ओढने, खाने-पीने सभी की ओर से एक तीव्र विरक्ति मन में भरी रहती…वह जान-बूझकर इन सबके प्रति लापरवाही बरतती…कभी सब्जी में खुद नमक ज्यादा डाल लेती और स्वाद ले-लेकर खाती, कभी रात के रखे ठिठुरते पानी में नहाती और कभी शरीर को चहकते गरम पानी का अभ्यस्त करती…कभी योंही दो-दो घंटे खड़ी रहती, पढ़ती रहती और कभी खूब धुएँ-भरी रसोई में बैठी रहती। खाना एक समय ही प्रायः खाती।

निन्नी जानती थी, यह सब स्वाभाविक नही है, शायद शरीर के सिस्टम के लिए भी अच्छा नहीं है, लेकिन जितना ही शरीर को कष्ट होता, मन उतने ही आध्यात्मिक सन्तोप से भरता जाता…यह 'कुरूपता के पाप' के लिए शरीर को सजा दे रही थी या खाने-पहनने के पहले वाले 'मजों का' बदला ले रही थी, लेकिन अपने अस्तित्व के प्रति एक विचित्र तटस्थता जरूर आ गई थी। अब वह अपने से अलग खड़े होकर निहायत तटस्थ रूप से उस 'कुरूप' और 'पापिनी' लड़की को देख सकती थी; उसे किये-अनकिये अपराधों की सजा भोगते देखकर तृप्ति अनुभव कर रही सकती थी…। हर 'दुःख' के समय उससे कहती, तुमने बहुत सुख भोगा है, अब जरा इस दुःख को भी देखो ! और वस्तुतः क्या 'सुख', क्या 'दुख' ! मानो तो दुख है, न मानो तो कुछ भी नहीं। मन माने की

बात है। वैसे भी अपने यहाँ कहा गया है, नारी नरक का द्वार…सुन्दर होती, तब भी संसार को पतन के मार्ग पर ही ले जाती… एक तरह से यह अच्छा ही है…जिसका अस्तित्व 'पाप-मय' हो उसके 'सुरूप' 'कुरूप' होने से क्या फर्क पड़ता है…सारे विकारों की खान तो यह नारी-शरीर ही है। इसे जितना भी कष्ट मिले, संसार का कल्याण होगा। और यह सब सोचकर उसे लगता, जैसे अभी तक पता नहीं वह किन-किन ऊबड़-खाबड़ रास्तों में भटकती रही है; सच्चा रास्ता तो अब मिला है…।

लेकिन उसी वर्ष की एक घटना ने जहाँ उसके घर का ढाँचा एकदम चरमरा दिया, वहाँ निन्नी में एक अद्‌भुत आत्म-विश्वास भी भर दिया। बाबू जी दफ्तर से हारे-थके आए। उन्होंने एक गिलास पानी माँगा, फिर बोले, "जाने क्यों आज मेरी तबीयत बहुत घबरा रही है…।" उन्हें हाई ब्लड-प्रेशर जाने कब से था…उसीमें दिल डूबता लगता रहा। सभी घबरा उठे थे। रात-भर तरह-तरह के इंजेक्शन लगते रहे। निन्नी बैठी-बैठी देखती रही… या जो भी काम बताया गया, करती रही। सुबह के समय गले में घरघिराहट हुई और साँस टूट गई…।

दादा का उन दिनों ट्रेनिंग पिरियड था। वे प्रोबेशन पर थे। उन्हें बुलाया गया…तार पर तार दिए गये · और सारे घर में कुहराम मच गया…"अभी उमर ही क्या थी ! बेटे-बेटियों की शादी तो देख जाते…!" जब उनकी अरथी उठी, तो पहली बार निन्नी को लगा कि वह वास्तव में अब अकेली, अनाथ, और असहाय हो गई है। घर-भर में वही एक ऐसे थे, जिनके हर व्यवहार में एक निरीह-सी दया, एक अपराध का संकोच या एक तरल मृदुलता रहती थी…शायद वे निन्नी की 'कुरूपता' के लिए कहीं अपने को जिम्मेदार मानते थे और अवसर सामने पड़ने से कतराते थे…।

माँ रो रही थीं, साधना रो रही थी, दादा और अनुपम रो रहे

थे, गीता जीजी रो रही थीं और निन्नी भी रो रही थी। लेकिन उसके भीतर बैठा कोई निहायत ही निश्चिन्त और निष्कम्प वाणी मे कह रहा था, 'बाबूजी मर गए, तो इसमें ऐसा तूफान मचाने की क्या बात है ? आज नही तो दस साल बाद मरते···मरना तो उन्हें था ही··दस साल में ही कौन-सी दुनिया बदल जाती ? यह तो शरीर का धर्म था। चलो, प्रकृति का एक नियम पूरा हो गया ।' अरथी उठी थी, तो माँ बिलख-बिलखकर रोने लगी थीं। उनका गला बैठ गया था और आवाज फट गई थी····"हाय हाय ! कैसे-कैसे अरमान थे···! लड़का नौकरी करेगा, शादी होगी···लड़कियों की बरातें आएँगी · तुम्हारे सामने कुछ भी पूरा नहीं हुआ···!" तब निन्नी के मन में किसी ने जवाब दिया 'तो कहा किसने था बाबूजी से इतने अरमान पालने को ? ,फिर अगर वे अधूरे ही रह गए, तो ऐसी क्या मुसीबत आ गई ? कोई अनोखे अरमान तो थे नहीं ; जो हर बाप के होते हैं, वही उनके भी थे···।

दुख और सुख से परे की यह स्थिति उसे मानसिक रूप से बहुत सन्तोष दे रही थी—यही तो वह स्थितप्रज्ञता है, जिसकी गीता में इतनी महिमा है। 'मैं निष्काम, कामना-रहित, निर्लिप्त और परमहंस हो रही हूँ—या मुझमें तत्व हैं, जो मुझे आध्यात्मिक शान्ति दे सकते है,' यह विचार या यह खोज—डिस्कवरी—उसे एक सात्विक गर्व से भरे दे रही थी। वह अपने-आप से कहती, 'जो लड़की अपने खास बाप के मरने पर विचलित नहीं हुई, वह स्थितप्रज्ञ नहीं तो क्या है ?' और इस आत्म-ज्ञान के बाद उस पर वैराग्य का नशा दुगुनी जोर से छा गया·· वह निर्लिप्ति और उदासीनता, जो केवल अपने शरीर और अपने प्रति ही थी, अब शेष सारे संसार के प्रति उन्मुख हो उठी···अब तो हर चीज के प्रति यह एक रवैया छाया रहता, 'मुझे क्या ? कहीं कुछ होता रहे, कहीं कोई बीमार-प्रसन्न हो, खेले या पढ़े, हमें क्या लेना-देना ? जब-जब कोई इस रवैये को मन में दुहराता, तो ऐसा हलकापन और चिन्ताहीनता अन्तर्तम में व्याप्त हो जाती, जैसे न तो उसके प्रति किसी की कोई

जिम्मेदारी है, न वह खुद ही कहीं किसी के प्रति उत्तरदायी है··· वह तो इन सारी छोटी-छोटी बातों से परे और ऊपर है···।

बाबूजी के मरने से निन्नी में एक आध्यात्मिक आत्म-विश्वास तो जरूर जागा, लेकिन घर का आर्थिक-ढांचा बुरी तरह चरमरा उठा। उन लोगों की हालत एक तो यों ही बहुत अच्छी नहीं थी, फिर बाबूजी की बीमारी, गीता की शादी, दादा की ऊँची पढ़ाई—सभी ने खोखला कर दिया था। कमाने वाले सिर्फ बाबूजी और घर पर पाँच-छः आदमी, महँगी पढ़ाई। अब आये दिन पैसों का रोना रहने लगा। अम्मा, साधना को बोल-बोलकर दादा को लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखाती और उनमें सारे घर का दुखड़ा रहता, "आज तुम्हारे बाबूजी होते, तो हमें यह दिन क्यों देखना पड़ता?' जैसे वाक्य बीच-बीच में आते। निन्नी चुपचाप सुनती रहती। मन विरोध करने को होता, लेकिन फिर यही सोचकर रह जाती···होगा, हमें क्या है, जो मिलेगा, खा लेंगे···नहीं मिलेगा, तो भूखे रह जाएंगे···और माँ, दादा को चिट्ठी बोलती रहती, 'तुम्हारी ट्रेनिंग अब और कितनी रह गई है···?' कभी-कभी दादा के प्रति हलकी हमदर्दी भी जागती—बेचारे किसी भी लायक अभी हुए नहीं हैं और कितनी जिम्मेदारियाँ उन्हें निगल जाने को आतुर हैं···!

याद है, पहले निन्नी को दादा, अम्मा, बाबूजी—सारे घर के प्रति एक विचित्र-सी चिड़चिड़ाहट हो आई थी और वह किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती थी—सभी के प्रति मन में एक झुंझलाहट भरी रहती, उसे लगता कि ये चाहें तो मेरी शादी कर सकते हैं, लेकिन जमकर कोई कोशिश ही नहीं करता। एक से एक कुरूप लड़कियों की शादियाँ होती हैं···लेकिन यहाँ जैसे किसी को कोई चिन्ता ही नहीं! बाबूजी को छुट्टी नहीं है, दादा की पढ़ाई है, चाचा ताऊ नाराज हैं। सब सही है, लेकिन कोशिश ही नहीं करोगे, तो क्या लड़का आसमान से टपकेगा? लोग महीनों घूमते हैं···जहाँ सुराग मिलता है, वहीं पहुँचते हैं, फिर पैसा भी खर्च करते हैं···सो यहाँ पैसों के नाम कर्जा और ऊपर से है···तब निन्नी

को यह सारी गरीबी भी अपराध लगती और बात-बात में झूँझल चढ़ आती···।

वे सारी दुर्भावनाएं अब खुद-ब-खुद समाप्त हो गई थी और सारे व्यवहार में एक तटस्थ स्निग्धता आ गई थी·· हां, यह जरूर है कि अब न कोई भविष्य का सपना था · न अतीत की स्मृति···मुक्त और जड़ जिन्दगी निकली चली जा रही थी।

कालेज से आई, तो घर में रोना-धोना मचा था। एक ओर मां बैठी सिर फोड़ रही थीं, दूसरी ओर बिस्तरों पर साधना औंधी पड़ी थी, निन्नी किताबें रखने गई, तो यों ही मन में आया और उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा, "क्या बात है, साधना ?" साधना मुंह से कुछ नही बोली और फफक पड़ी। मां के पास गई। वे भरी बैठी थीं···"तुम्हारे लिए जिन्दगी बरबाद कर ली···तुम्ही लोगों की चिन्ता मे घुल-घुलकर वो चले गए · मैं भी जहर खा लूँगी, तब चैन आयेगा···!"

निन्नी थकी-मांदी आई थी। गुस्सा नहीं आया, बस दुखी स्वर मे पूछा, "आखिर बात क्या है ?"

"कहती है, हमारे पास कपड़े नही है, किताबें नहीं है, जूते नही है। बताओ, मैं क्या करूँ ?"

निन्नी सुनकर चुपचाप चली आई। साधना अभी भी रो रही थी। कपड़े और किताबें तो निन्नी के पास भी नहीं है, लेकिन उनका न होना उसे तो कभी भी इतना नहीं अखरा कि रोना आए···अरे, ऐसी क्या मुसीबत आ गई···! कपड़े जैसे भी है, ठीक ही है। हमें कौन सी उनकी नुमायश करनी है ! किताबें किसी की भी लेकर पढ़ा जा सकता है। खड़ी-खड़ी वह देर तक साधना को रोते देखती रही ·।

फिर चुपचाप आकर ऐसी स्वाभाविकता से पढ़ने लगी, मानो कहीं कुछ भी नही हुआ है। बिना खाए-पीये रात को ग्यारह बजे तक पढ़ाई चली और जब सब सो गए, तो नीचे जाकर ठण्डे पानी से खूब नहाई। नहाते-नहाते लगा कि साधना का रोना वाजिब है—चेहरे-मुहरे से सुन्दर

है, इसलिए चाहती है, हमेशा सजी-सजाई रहे, अच्छे कपड़े पहने··· लोग देखें तो तारीफ करें···। पहला कोई समय होता, तो साधना की आवश्यकता की इस अपूर्ति पर निन्नी को हल्का-सा क्रूर सन्तोष होता—जब हैसियत ही नहीं है, तो इतना सब दिखावा करने की जरूरत ही क्या है?···नील, साबुन, कलफ लगा-लगाकर छुट्टियों में सारे-सारे दिन कपड़े धोना, फिर रात को बारह-बारह बजे तक स्त्री करना मानो साधना की प्रिय हॉबी है···और निन्नी को इससे छूटती है चिढ़···। अपने पहले और अबके मानसिक अन्तर पर विचार करती वह देर तक नहाती रही, अपने-आपसे पूछती रही, लेकिन साधना अपने नारी शरीर को कहाँ ले जाएगी? अभिशाप शरीर का असुन्दर होना नहीं, यह नारी-शरीर पाना है···इसे और सजाना-संवारना पाप को बढ़ावा देना होगा?

अगले दिन बादल घिरे थे और तेज हवा कड़ाके की ठंड ले आई थी। कहीं पहाड़ों पर बर्फ गिरी थी। सब लोग पहले तो अंगीठी के चारों तरफ इकट्ठे बैठे मुँह से भाप निकालते रहे, फिर बाहर निकले, तो दुनिया भर के भारी-भारी ऊनी कपड़े लादकर···लेकिन निन्नी ने सिर्फ आधी बाहों का बुना हुआ ब्लाउज पहना था। माँ ने दुखी भाव से कहा, "मरना है क्या, निन्नी? ऐसी ठंड में ब्लाउज-साड़ी पहने कालेज जा रही है!" प्रच्छन्न गर्व से उसने अपनी खुली बांहों के रोंगटों पर हाथ फेरकर कहा, "क्या करूँ, माँ, मुझे ठंड ही नहीं लगती। तुम खुद देख लो न···।" मन में सोचा, इसे ही तो कहते है शरीर को जीतना···।

"इतरा रही है···ऐसी तो ठंड है · हमारे रोंगटे तो चेस्टर के भीतर ही खड़े हैं," साधना बोली। वह सारे ऊनी कपड़ों में लदी चूल्हे के आगे खड़ी-खड़ी हाथ सेंक रही थी—"आज तो पढ़ने जाने को मन ही नहीं कर रहा···।"

निन्नी को साधना का यों बोलना अच्छा नहीं लगा। गुस्सा आने को हुआ लेकिन शरीर के साथ इन विकारों को जीतने की बात ध्यान में आई। सरल भाव से बोली, "मुझे नहीं लग रही ठंड, माँ। तुम खुद

देख लो न, जबरदस्ती दो गर्वों का बोझ लादकर चलने से क्या फ़ायदा ••?"

"नहीं मानते तो मरो•••! बीमार पड़ गई, तो मैं साफ कहे देती हूँ •••मेरे पास एक पैसा दवाओं को नहीं हैं। मैं पास आकर झाँकूँगी भी नहीं ••।" माँ रुआंसी हो आई।

और उसी रात को निन्नी सचमुच बीमारी में बेहोश पड़ी थी। आई, तभी से बदन टूट रहा था, ठंड लग रही थी और सिर ठस्स हो गया था। आते ही बिस्तरों में जा घुसी और साधना-अनुपम की खुशामद करती रही, "एक रजाई और ला दे•••।" घर-भर के बिस्तर शायद उसने अपने ही ऊपर डलवा लिए थे। फिर इतना याद है कि नीम-बेहोशी की निंदासी हालत में पीठ-पेट पर बार-बार स्टैथिस्कोप के फूल का स्पर्श हुआ•••कुछ छायाएं हलके अंधेरे मे मंडराती रही और न्युमोनिया या डबल न्युमोनिया जैसे शब्द कानो में पड़ते रहे•••माँ बडबड़ाती रहीं, "मर जाए तो पाप कटे! सुबह ही रो रही थी, कपड़े पहन ले, कपड़े पहन ले, तो इठला रही थी—हमे ठंड नही लगती! अब भुगत! आप तो पड़ी है, अब हमारा मरण हो रहा है•••।" माँ का बड़बड़ाना बीच-बीच में कही बहुत दूर से आता सुनाई पड़ जाता। शायद छाती और पसलियों की सिकाई होती रही•••तारपीन के तेल और कैम्फर आइल की गन्ध नथुनों में लपट मारती रही•••।

पता नहीं अगले दिन या और भी अगले दिन होश आया, तो लगा, पसलियों पर रुई जैसी चीजें रखकर, कसाकर पट्टी बाँधी गई है और पलकें उघाड़कर आँखें खोलने में बेहद तकलीफ हो रही है•••बड़ी मुश्किल और कोशिश से बातों को याद करने की कोशिश करती रही•••सबसे पहले तो उसे जगह ही पहचाने में नहीं आई•••जहाँ सोई थी, वहाँ की छत सपाट थी; यहाँ लकड़ी की काली-काली कड़ियाँ लगी थीं•••बन्द

जंगले में धूल-अँटी पुरानी बोतल, फिलट का एक डिब्बा और टूटा-सा खिलौना रखा था, कहीं भन-भन जैसी कोई आवाज़ गूँज रही थी। देर तक उसकी समझ मे ही न आया कि सचमुच यह बाहर से आती कोई आवाज़ ही है या सिर्फ उसका सिर घूम रहा है···सिर दरवाज़े की ओर देखा तो खयाल आया···शायद यह उसके घर का सबसे ऊपर वाला चौबारा है। ऊपर छत पर अकेले दो कमरे पास-पास बने है। एक में टूटी-फूटी कुर्सियाँ, काठ-कबाड़, कनस्तर, किताबें भरी हैं; दूसरा गर्मियों मे बिस्तर रखने या बरसात होने पर भीतर जा सोने के काम आता है। एक तरफ बिस्तरो का ढेर भी था। सामने छत की ओर खुलने वाला दरवाजा भी भिड़ा था। धुँधली रोशनी मे यह जानना भी बड़ा मुश्किल था कि समय दोपहर का है या साँझ का—चारों ओर बेहद सन्नाटा छाया था····पहले तो बाहर की कोई आवाज ही नहीं आई, फिर बाहर कही गिलहरी के कुट-कुट करने की आवाज़ सुनाई दी····कानों पर और भी जोर दिया, तो दूर—कहीं बहुत दूर—सड़क पर कुछ बेचने वाले की आवाज़ भी सुनाई पड़ी—शायद गन्ने की गँडेरियाँ बेचने वाले की आवाज है। लगता है, दोपहर का समय है। शहर की दोपहरी में फेरी वालों की आवाजें कुछ अजब ढंग से गूँजती है—वे एक खास ढंग से सुनाई पड़ती हैं और फौरन ही पता लग जाता है कि दोपहर का समय है। सब लोग स्कूल-कालेज गए होंगे। माँ बेचारी अकेले, नीचे खाने के बाद चौका-बरतन कर रही होंगी··। तुन-तुन-ठक्···तुन-तुन-ठक् कहीं धुनियाँ रुई धुन रहा था···अब पता लगा कि वह भन-भन स्वर क्या था। त्रिपाठी जी के घर में जो नये-नये किराएदार जायसवाल आए है, शायद, उन्हीं के यहाँ रजाई-गद्दे भरवाए जा रहे है···हाँ, दोपहर का ही समय है···।

निम्नी ने करवट बदलने की कोशिश की, तो सारा शरीर पके फोड़े की तरह दुख उठा—करवट लेते ही न बना। एक बार मन हुआ, नीचे जाकर झाँक आए। पटियों पर दोनों हाथ टेककर उठकर बैठने लगी,

तो कमज़ोरी और दर्द से सिर चकरा उठा····। टूटी बाँहों की वर्षा-विकृत कुर्सी पर, खूराक चिपटी हुई चपटी, लाल दवा-भरी शीशी, रुई, कुंडल टूटा प्याला और दवा पीने वाला छोटा-सा चकला····निन्नी फिर लेट गई कराहकर····चुपचाप छत की कड़ियों को ताकती रही—सोटों और कड़ियों के बीच में एक जगह बहुत-से तिनके दिखाई दे रहे थे····शायद किसी चिड़िया ने घोंसला बना लिया है····दीवार पर लक्ष्मी-गणेश का चित्र है और उसपर बोतल साफ़ करने का ब्रश लटका है···बाल नाम मात्र को सिर्फ़ नीचे रह गए हैं, बाकी तो बल-लगातार हैं···भिड़े हुए दरवाजे की सन्धि से रोशनी की पतली फाँक तलवार-सी कौंधती है····तीन बार तुन-तुन-ठक्····तुन-तुन-ठक् के बाद एक बार ढर्र की आवाज आती है····यह क्रम इतना बँधा हुआ है कि अगर इस ढर्र की आवाज आने में देर हो जाती है, तो नसें तनाव भरकर व्याकुल प्रतिक्षा करने लगती हैं····पैरों के पास रबर की लाल बोतल पड़ी है····शायद सिकाई भी की गई है····कभी-कभी नीचे से रिक्शों के तीखे भोंपू बजते सुनाई देते हैं। कभी कोई साइकिल टुन-टुना जाती है। पता नहीं क्या बजा है····शायद तीन बजे होंगे। इस बार कहीं घंटे बजे तो वह सुनेगी। चने ज़ोर-गरम वाले की बोली सुनाई देती है····हाँ, तीन के आस-पास ही तो वह यहाँ से जाता है····कालेज से आते समय यहाँ मिल जाता है···।

सोकर उठने के बाद जाने क्यों निन्नी को ऐसा लगता रहा, जैसे इसी तरह का एकान्त, ऐसा रहस्यमय अँधेरा-उजाला, यों ही एक अपरिचित छत को ताकना···सब मिलाकर ठीक यही सब उसने कभी और कहीं भी अनुभव किया है···कहीं और भी यही सब मन में आया है···या यों लेटना-सोचना नया नहीं है····कभी और भी ऐसा ही हो चुका है···मगर दिमाग पर बहुत जोर देने के बाद भी याद नहीं आया···हाँ, कुछ था ऐसा जरूर, जो बेहद परिचित लगता था और साथ ही स्मृति की पकड़ से भागा जा रहा था····।

फिर मन में आया, वह यहाँ अकेली, बीमार और अनदेखी पड़ी है,

सब लोग अपने-अपने काम पर गए हैं····सड़क पर लोगों का आना-जाना जारी है। माँ नीचे चौका-बरतन कर रही है····घंटे-भर बाद फिर नये सिरे से चूल्हा जलेगा। सभी काम अपने ढर्रे से चला जा रहा है···उसके यों एक ओर आ-लेटने से कहीं भी तो कोई फर्क, अन्तर नहीं पड़ा। मान लो, यहाँ न लेटी होकर वह मर ही जाती तो····? तब भी सब काम यों ही चलते, कहीं भी कोई फर्क नहीं पड़ता···बल्कि इस समय माँ और अन्य लोगों के दिल में उसे लेकर जो चिन्ता-परेशानी होगी, वह तो कम से कम नहीं होती। यों अभाव का थोड़ा-बहुत दुख होता—एकाध दिन में वह भी भर जाता है—समय हर घाव को भर देता है। सच पूछो तो टीसते दाँत को निकलवा देने जैसा ही दुख होता, उसकी अनुपस्थिति पर जीभ बार-बार वहाँ जाती, लेकिन बाद में एक निश्चिन्तता और आराम मिल जाता—अब न उसे कोई पानी देने वाला है, न पूछने वाला·· आखिर यों जीने से लाभ भी क्या? अगर इसी बीमारी में ही मर जाऊँ तो कैसा अच्छा हो·· सारा काम भी सरलता से हो जाए···।

लोगों को जीने के लिए कुछ न कुछ बहाने होते हैं—वर्तमान के कुछ लगाव, कोई लगन, कोई साथ या कोई स्वार्थ···निन्नी के लिए तो कुछ भी नहीं है—। न कोई सपना है, जो भविष्य के परदों के पार खड़ा होकर जिन्दगी को अपनी ओर खींचे; न कोई स्मृति है, जो पीछे की ओर बुलाती रहे। पता नहीं, किसी दूसरी तरह उससे मरा जा सकेगा या नहीं, लेकिन सुनते हैं, इच्छा शक्ति से बड़े-बड़े काम हो जाते हैं—क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अब वह ठीक ही न हो और योंही एक दोपहरी के बाद जब कोई आकर दरवाजा खोले, तो पाए कि निन्नी की साँस बन्द है··।

अपने मरने की दुखद या सुखद कल्पना से उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए और निःशब्द देर तक रोती रही। तभी बाहर सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की पद-चाप आई। कोई छत पर आया और बड़े झिझकते-से ढंग से चौवारे के दरवाजे पर ठिठका—निन्नी ने झट आँसू पोंछ

लिए और स्वाभाविक दीखने की कोशिश के साथ प्रतीक्षा करने लगी।

साधना के साथ उसके क्लास की नीलिमा सूद भी मिलने चली आई थी। "अरे, बड़ी कमजोर हो गई हो!" से बातें शुरू हुईं और उस दिन की ठंड, उसकी लापरवाही या घर वालों की चिन्ता पर बातें होती रहीं। साधना ने बताया कि 'तुम दो दिन बहुत बुरी हालत में रही हो···।' घर वाले कैसे बेचैन थे, यह भी तभी जाना। इस बीमारी से या दो दिनो की बेहोशी और घर वालों की बेचैनी से जहाँ मन को हलका सन्तोष मिला, वहीं डर भी लगा। अभी तक तो माँ ने कुछ भी नहीं कहा। अब मेरी जान मुसीबत में कर देगी—कैसा अच्छा होता, बेहोश ही पड़ी रहती! नीलिमा कालेज और क्लास की बातें करती रही। ड्रामे में हिस्सा लेने को उस पर बहुत जोर दिया जा रहा है, यह बताती रही। जब जाने लगी, तो निन्नी की आँखें भर आईं। इसे वह घमंडी और घुन्नी—जाने क्या-क्या समझती रही है। बेचारी दिल की कितनी अच्छी है! उससे बीमारी में यों मिलने आई। न भी आती, तो क्या जबरदस्ती थी। पता नही, अब मिलना होगा या नहीं···।

मगर माँ ने डाँटा नही नहीं। केवल झुके-झुके उसका बिस्तरा ठीक करते हुए, दुख-भरे स्वर में कहा, "तुम्हारा खेल हुआ और हमारी मुसीबत हो गई न!" माँ का यह न डाँटना ही उसे भीतर-भीतर कचोटता रहा। देखो, घर वालों का भला करना तो दूर, उसने व्यर्थ ही उनके लिए एक आफत और खड़ी कर दी—। "सचमुच, मुझे हो क्या गया था?"

सारे दिन पड़ी-पड़ी जाने क्या-क्या सोचा करती·· खाने-पीने को अभी कुछ भी नहीं दिया जाता था—पहले कुछ दिनों शायद डाक्टर की दवा थी, फिर वैद्य जी का इलाज शुरू हो गया था। डाक्टर का इलाज बहुत खर्चीला पड़ता है। उस छोटे-से चकले पर कभी कुछ घिस या पीस-कर शहद के साथ चटा दिया जाता था। सुबह-शाम माँ बिस्तर साफ करती, कपड़े बदल जातीं, हाथ-मुँह धुला जातीं और साधना तथा

माँ के कन्धों पर लदकर वह छत पर ही प्राकृतिक आवश्यकताओं के लिए जाती। सुबह-शाम तो काम करते देखते हुए कट जाते, लेकिन दो दिनों में ही दस से चार तक का समय काटना पहाड़ हो जाता। ऐसी मुश्किल से एक-एक पल कटता कि बस। एक तो जायसवाल साहब के बच्चे आ गए, लेकिन निन्नी के पास मन बहलाने को कुछ भी नहीं था, सो चले गए और फिर नही आए। निन्नी ने ध्यान दिया, छोटे-छोटे बच्चे भी सुन्दर लड़कियों के आस-पास ही मंडराते हैं। उसके सिर में हलका-हलका दर्द रहता और समय काटे न कटता···। सब लोग पढने या काम पर चले जाते। माँ नीचे झाड़-बुहारी करती रहती। बीच-बीच में ऊपर आ जातीं। निन्नी आँख खुलने पर पड़ी-पड़ी उनकी राह देखा करती। कभी कोई जरूरत होती, तो जब्र किए पड़ी रहती। एकाध बार थोड़ा-सा उठकर आवाज़ देने की कोशिश की, तो आवाज ही न निकलती—स्वर फट जाता। दूसरी आवाज़ मे ही वह रो पड़ी···। फिर थक गई, तो चम्मच से पानी के लोटे को बजाती रही—लेकिन ऊपर की आवाज नीचे नहीं पहुँच पाती थी। माँ अपने समय पर ही आई—तब तक निन्नी जाने कितनी ज़िन्दगियाँ मर और जी चुकी थी···।

दो-तीन दिन हो गए थे और सुधार होता नहीं लगता था। इधर एक ओर की पसली में भी दर्द रहने लगा था। शरीर तो ऐसा बेजान और ढीला हो गया था, जैसे किसी ने कोल्हू के बेलनो के बीच से निकल कर फोक की तरह फेंक दिया हो। मन होता तकिये के सहारे जरा-सा उठकर बैठे, थोड़ा इधर-उधर देखे, कुछ पढने की कोशिश करे, शायद कुछ जी-बहले। लेकिन जैसे-तैसे एकाध बार खाँसती-कराहती कुहनियों के बल उठकर बैठे भी, तो ऐसी थकान लगी कि फिर खिसक कर सीधी लेट गई। फिर पलकें इतनी बोझिल हो आईं कि आँखें ही नहीं खुलीं···।

आज सुबह से ही पसली का दर्द साँस लेने के साथ गड़ी सुई-सा ररक रहा था। जब काम-धाम से फुरसत मिलेगी, तो माँ आकर मालिश करेंगी···यह प्रतीक्षा भी थी और मन मे एक सन्तोप भी था कि चलो, बीमारी बढ़ ही रही है···यही शायद उसे उठा ले—और यों सारी यातनाओं से एक साथ मुक्ति मिल जाए···।

खुली खिड़की के पल्ले से वह देख रही थी—बाहर छत पर ताड़ की चटाई बिछाकर बड़ियाँ सुखाई गई है—आश्चर्य करती रही, हाथ से बड़ियों की कैसी एक-सी सुन्दर डिजाइन बनी है···फिर अचानक निन्नी का मन बड़ियों की गरम-गरम तरकारी खाने को मचलने लगा। इस बार तो शायद बरसों ही हो गए खाये। मुँह में पानी भर आया, लेकिन जीभ का जायका ऐसा बिगड गया था कि हमेशा मुँह में कसैला-कसैला लगता रहता···। खिड़की के छज्जे के कारण जरा-सी छाया थी और बाकी छत पर धुप फैली थी। छाया में एक सलेटी-सा कबूतर अकेला गुटरगूं-गुटरगूं करता गोल-गोल घूम रहा था। कभी योंही जमीन से एकाध दाना उठा लेता···। निन्नी को उसकी चोच के ऊपर की लाल गाँठ बड़ी सुन्दर लगी···जैसे मोती पहने हो···। याद आया, कभी कौए की चोंच सोने से मंढ़वाने की बात सोचती थी। मुँडेर की दीवार के पार खुला आसमान था। नीचे से किसी मकान पर एरियल वहाँ तक तना खड़ा था। उस पर जाने कब की उलझी पतंग के रंग उड़े कागज के चिथड़े हिल रहे थे···। सफेद बादल का एकाध टुकड़ा नीचे कागज पर सफेद खड़िया की लकीर की तरह आड़ा पड़ा था और वहाँ चीलों के धब्बे थिरक रहे थे···ये चीलें भी कैसे मजे से उड़ती चली जाती है ···पंख भी नही हिलातीं · काश···!

इन सारे दिनों निन्नी ने जाने-अनजाने यही कामना की है कि यह बीमारी उसे लेकर जल्दी से जल्दी समाप्त हो जाए···। वह सच्चे दिल से कहती है कि अब नहीं जिएगी···बिल्कुल नही जिएगी···। देखो न, घर वालों के लिए भी उसने कैसी भारी परेशानी पैदा कर दी है···!

बाहर के लोगों को उनके रहने न रहने से क्या, हाँ घर के लोग तंग जरूर हैं···वह खुद अपने-आपसे आजिज आ गई है··। आखिर क्या ऐसा बचा है, जिसके लिए इस बीमार और कुरूप शरीर को घसीटना जरूरी है ?

निन्नी ने यों ही सिरहाने रखा थर्मामीटर निकाल कर पारा नीचे झटकना चाहा, तो हाथ जोर से हिलाया ही नहीं गया। हार कर यों ही मुँह मे रख लिया। बुखार ज्यादा नहीं · सौ डिगरी से कुछ ही ज्यादा होगा। उलटा-सीधा करके देर तक थर्मामीटर के पारे को ही देखती रही, फिर उसे सिरहाने रख कर एक हाथ से नब्ज और छाती की धड़-कनें गिनती रही···। आस-पास घड़ी तलाश करने को कोशिश की। शायद साधना सुबह अलार्म लगाकर जागने के लिए ले गई होगी। उंगलियों के सफेद-सफेद नाखून देखते-देखते उसे अचानक ऐसा लगा जैसे वह अचानक ठंड या न्युमोनिया से बीमार नहीं हुई···वह तो जाने कब से बीमार थी·· उसकी आत्मा बीमार थी···और यों हारकर विस्तर पकड़ लेना उसी बीमारी की चरम परिणति है···यह बीमारी नई नहीं है। जब से उसने होश संभाला है, तभी से यह उसके साथ लगी है···हो सकता है, नारी-शरीर पाना अपने-आप में ही बीमारी हो···! उसकी सारी जिंदगी, बीमार आत्मा को ढोते हुए ऊबड़-खाबड़ रास्तों में भटकने की यात्रा रही है···और आज थककर वह एक ऐसे किनारे आ लगी है, जहाँ इस बीमारी से छुटकारा मिल जाएगा।

हथेलियाँ जर्द थी और कलाई की काली—साँवली नहीं—खाल झुर्रियों से लद आई थी····पता नहीं, चेहरा कैसा हो गया होगा। हमारे घर मे रेडियो भी तो नहीं है, जो यहाँ रखवा लेती। खबरों-गानों से कुछ तो मन बहलता····। तभी किसी ने जबान रोक दी। जिसे अब रहना ही नहीं है, उसे गानों और मन बहलाने से क्या मतलब ? और तब निन्नी जान-बूझकर, सब भुलाकर मरने की ही बात सोचने लगी। आँखें बन्द करके कल्पना करने लगी मानो अंधेरे आसमान से एक काले-काले

तगड़े-से भैंसे पर यमराज उतरते चले आ रहे हैं...उनका रंग भी खुद भुजंग काला है; सिर्फ सिर का मुकुट, हाथ का खांडा और अँगारे जैसी आँखें ही चमक रही हैं... 'कल्याण' के चित्रों मे यमराज का जो रूप देखा था, वही ठीक है...इस बार निन्नी को ही लेने आ रहे हैं... उसे जी कड़ा किए रखना है...चीखना-चिल्लाना नहीं, बल्कि खुद उनके चरणों में गिर जाना है...मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रही थी...।

तभी किवाड़ चरमराया और रोशनी की तलवार ने इस कल्पना-चित्र को आर-पार काट डाला। निन्नी एकदम चौंकी, तो भक् से सारा चित्र उड़ गया। माँ है क्या? आँखें खोलने की कोशिश की, तो लगा, दरवाजे की सन्धि से कोई झाँक रहा है। फाँक और चौड़ी हुई...हाँ, कोई खड़ा तो है। पलकें झपकीं, माँ जैसी तो नहीं है, बीमारी की बात सुन-कर दादा आ गए क्या?... वह मूर्ति ठिठकीहुई-सी दो-एक कदम आगे बढ़ी, तो निन्नी एकदम चौंक पड़ी...पूरी आँखें फाड़कर पहचानने लगी... अरे, कोई बहुत पहचानी-सी शक्ल लगती है...कौन है? कुहनियों के बल उठने के लिए दोनों ओर की पाटियाँ पकड़ीं...दिल जोर-जोर से धड़क उठा... सचमुच ही कोई खड़ा है या उसे ऐसा लग रहा है? बीमारी से बहुत बढ़ जाने पर भी ऐसा ही कुछ लगता है—शायद इसी को डिलीरियम कहते हैं...।

"निन्नी...!" उसने सुना। आने वाला ठिठका खड़ा था—"निन्नी, सो रही हो क्या?"

एँ ऽ ऽ ?...."दर्शन !" उसने आँखें झपककर साश्चर्य देखा—"अरे, आप?" बड़े कराहते-से स्वर में पूछा। मन हुआ, एकदम उछलकर बैठ जाए। पूछे, कब आए! कैसे आए?

दर्शन ने चारों ओर देखा और एकदम बिस्तर के पास आ गया। निन्नी की कलाई छूकर बोला, "ये सब तुमने क्या कर डाला?"

निन्नी ढीली थकी-सी फिर तकिये से टिक आई। आँखें छलछला

आई। उमड़ती रुलाई को होंठ काटकर रोकती हुई जैसे-तैसे बोली, "बैठिए···अकेले है ?"

"बैठूँगा तो सही····।" दर्शन ने बैठने के लिए इधर-उधर देखा। टीन की कुर्सी पर ढेर सारे कपडे लदे थे। सुबह के सूखे कपड़ों का माँ यही ढेर लगा गई थी। उन्हे उठाकर निन्नी के पैताने रखा और कुर्सी बिलकुल पास खीचकर सामने बैठ गया। बोला, "लेकिन तुम्हे यह शौक क्या चर्राया····?"

वह कुछ नही बोली। अपने पाँव दूसरी तरफ खिसका लिए। कितने मोटे कपड़े की और गन्दी रजाई है···तकिया कैसा मैला-चिकना हो गया है! माँ ने पता नही किस-किस के कपड़े यहाँ लाकर ढेर कर दिए हैं। कुछ तो निन्नी के उतारे गन्दे हैं। शायद चौबारा झाड़ा भी दो-तीन दिन पहले है····।

लेकिन ये सब ऊपरी विचार थे और निन्नी भीतर से अवरुद्ध हो आई थी। हाथ अभी भी पाटियो तक फैले थे। आँखों में आँसू डबडबाए थे और जल्दी-जल्दी पलकें झपकाती कभी इधर और कभी उधर सिर मोडकर वह इस उद्वेग को पी जाने की कोशिश कर रही थी····।

दर्शन ने शायद निन्नी की इस छटपटाहट को समझा और उसकी ओर से निगाहे फेरकर खुद बाहर झाँकने लगा। उसके चेहरे पर भी अकृत्रिम व्यथा का कसाव उमड़ आया था। बाहर ही देखता हुआ धीरे-धीरे बोला, "मुझे तो पता ही नही था कि तुम यों बीमार हो···मैं तो अचानक यों ही उतर गया यहाँ····एकाध बार रम्मी से मुलाकात हुई दिल्ली मे···वह तो कही बाहर मध्यप्रदेश में ट्रेनिग के लिए चला गया है न····।" दर्शन ने फिर क्रमश: उनकी ओर सिर घुमाया····।

"सोचा, देखता जाऊँ, क्या हाल है। सामान क्लाक-रूम में डालकर मैं तो यों ही चला आया···सोचा घंटे-दो-घंटे बाद अगली गाड़ी ले लूँगा। नीचे माता जी ने बताया कि तुम्हारी तबियत बहुत खराब है···और सब लोग शायद बाहर गए है····।"

एक बार फूटने की सीमा पर आकर अब उद्वेग धीरे-धीरे शांत हो रहा था···वह छत की कड़ियाँ ताक रही थी—पता नहीं, कुछ सुन भी रही थी या नहीं। धीरे से गले में कुछ सटकर पूछा, "भाभी जी कहाँ हैं ?"

तभी ध्यान आया, कैसी बीमारी और कमजोरी की हालत में मिलना हो रहा है···और फिर उच्छ्वास ज्वार बनकर उमड़ा, लेकिन इस बार जल्दी ही शान्त होने लगा···।

"वो दिल्ली है···मैं तो अपने एक काम से एक जगह गया था। तुम्हें बहुत पूछती है···। इस बार यही सोचकर उतरा था कि अगर दो-एक दिन की छुट्टियाँ मिली, तो तुम्हें पकड़ ले जाऊँगा।"

दर्शन की बातों में वही आत्मीयता और वही खुलापन था और वह अन्तर्तम के जाने किस मान की बर्फ को पिघलाए दे रहा था। कहने को तो इच्छा हो रही थी, "दर्शन, तुम जरा दो मिनट को बाहर चले जाओ। मैं एक बार अच्छी तरह रोकर हलकी हो लूँ···वरना सच, मुझसे बातें नहीं की जा सकेंगी···। तुम फिर आ जाना।"

इस बार पता नहीं, दर्शन ने शायद फिर निन्नी के चेहरे पर कुछ देखा और रजाई पर आँखे गड़ाए चुपचाप बैठा रहा···दोनों ही चुप थे। और थोड़ी देर बाद सहसा ही उसे इसका खयाल आया, तो बोला, "तुम तो हमसे बहुत नाराज़ हो न···एक बार भी खबर नहीं ली कि मरे हैं या जिन्दा है ? हमने पूछा आएँ, तो आपको बाहर मौसी के यहाँ जाने का काम निकल आया···?"

अब तक निन्नी बहुत कुछ स्वस्थ हो चुकी थी। हलके-से गाल साफ करके कहा, "बहुत ताने मारना सीख गए हैं ! मैं नाराज किस बात पर होती···?" वह फिर कुहनियों के बल उठने की कोशिश करने लगी, तो दर्शन ने फुरती से उठकर झट सिरहाने का तकिया दुहरा करके पीठ के पीछे टिका दिया। बोला, "निन्नी, नाराज तो तुम हो, वरना एक साल में तुम्हें एक कार्ड लिखने का खयाल नहीं आया···?"

अरे, साल-भर हो गया····? वह तो एकदम भूल ही गई थी। हाँ, साल तो हो ही गया होगा। पिछले साल नवम्बर-दिसम्बर में गए थे, फिर दो-तीन महीने बाद ही तो सब खत्म हो गया। बीच-बीच में खयाल ज़रूर आया, लेकिन उसने कभी समय का बोध नहीं कराया····इस बार जरा बनकर झूठ बोलने की कोशिश की, "लिखती कहाँ? आपने तो दोनों बातें लिखी थी कि जगह बदल रहे हैं····और यह कि शादी करके कुछ दिनों को बाहर जा रहे हैं····हम तो इसी इम्प्रेशन में थे कि शायद 'हनीमून' मनाकर ही नहीं लौटे।" पहले सिर में दर्द हो रहा था, लेकिन जब बोलने लगी, तो ध्यान ही नहीं रहा। जरा-सा मुस्ताकर कहा, "यह शिकायत तो हमें होनी चाहिए···चुपचाप···चुपचाप शादी कर ली। बाद में एकदम चुप हो गए कि कहीं मिठाई न माँग ले···!" निन्नी ने सूखे-पपड़ाए होठों पर जीभ फेरी।

"मैं तो कहता हूँ, आज ही चलो।" दर्शन का स्वर बहुत स्वाभाविक हो गया।

"आज ही चलो।" उसने व्यंग्य-से दुहराकर कहा, "जानते हैं न कि चल नहीं सकती···।"

"अरे यही तो मैं पूछता हूँ कि ये बीमारी-बीमारी का क्या बहाना बना रखा है? मार सारे घरवालों को परेशान कर रखा है। माता जी बड़ी चिन्ता-परेशानी दिखा रही थीं···कहती थीं कि इस लड़की का कुछ ढंग ही समझ में नहीं आता···दवा खाती है न परहेज से रहती है। उस दिन इतनी तेज हवा और ठण्ड में आपको एक साड़ी-ब्लाउज में शान दिखाने की क्या सूझी!"

"माँ ने कहा होगा?" निन्नी झेंप गई।

"कहेंगी नहीं?" दर्शन डाँटता रहा, "तुम पड़ोस के बच्चों से अचार मंगाओ, और माताजी कहें भी नहीं! ···अरे, मरना ही है, तो कोई कमाल करके मरो···यों बिस्तर में पड़े-पड़े अचार खाकर मरने में क्या बहादुरी?"

"सारी बहादुरी दिखाने का ठेका हमने ही लिया है ?" अपनी दुष्टता पर निन्नी खुद मुस्कराई। कल मन बहुत चल रहा था। शक्की और टिल्लू दोनों खेलने आए, तो निन्नी ने धीरे से कहा, "शक्की, तुझे टाफी के लिए एक आना देंगे, तू हमें अपने घर से अचार की एक फाँक ले आ। किसी को पता न चले···।" बहुत देर तक राह देखती रही। जब कोई नहीं आया, तो भूल-भाल गई। मगाने के पीछे जबान का स्वाद तो था ही, यह भी भावना थी कि इससे तबीयत और भी बिगड़ जाएगी।

"बहादुरी का ठेका न लिया हो, लेकिन इससे और लोग कितने परेशान हो जाते हैं, यह भी तो सोचो।" दर्शन ने झुककर निन्नी का हाथ अपने हाथ में ले लिया और दूसरा हाथ यों ही उसकी मुरझाई हथेली पर फेरता रहा। और कोई समय होता, तो शायद तार-तार एक रोमांचक झनझनाहट से गूंज-गमक उठता···अब दर्शन के खुले हुए गेहुंआ हाथों में निन्नी की हथेली का मटमैला पीलापन और पँजे की झुर्रियोंदार कालिमा एक दयनीय-विरोधाभास ही दिखा रहे थे···शायद निन्नी से देखा नहीं गया और खिड़की से बाहर निगाहें किए वह गहरी सांस लेकर बोली, 'मैं तो खुद ही सबकी परेशानी बचाना चाहती हूँ··· चाहती हूँ कि···।"

"कि···मर जाऊँ।" दर्शन ने झिड़ककर बात पूरी कर दी—"बड़ी सुन्दर बात चाहती है आप !"

निन्नी डरती थी कि शायद इस प्रकार की बातें आने पर फिर रुलाई आ जाएगी और वह कुछ भी नहीं बोल पायेगी। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ···उसकी आँखें यों ही सूखी रहीं···मन यों ही भावना-शून्य रहा · और कहीं भी कोई उद्विग्नता और दर्द महसूस नहीं हुआ। दर्शन के व्याज-क्रोध को देखकर तटस्थ भाव से कहा, "हम जैसे लोगों के रहने न रहने से दुनिया को लाभ क्या ?"

दर्शन एक क्षण निन्नी को यों देखता रहा, जैसे तौल रहा हो कि वह बात उसने जितनी गहराई से कही है। फिर सोचते हुए बोला, "निन्नी

यह लाभ-हानि वाली भाषा मेरे गले कभी नहीं उतरी ''लोग मुझसे सवाल करते हैं : अच्छा आपने यह बड़ा सुन्दर दृश्य-चित्र बनाया है''' या आपने जो पोर्ट्रेट बनाया है, उसमें चरित्र और मूड की सारी खूबियाँ उतर आई हैं'''लेकिन उससे लाभ क्या ? दृश्य तो जहाँ है, वहीं है। जिस व्यक्ति का आपने चित्र बनाया है, उससे उस व्यक्ति को क्या फायदा ? चित्र देखकर न तो हमारे लिए दृश्य में अन्तर पड़ता है, न चित्र मे। और ईमानदारी से कहूँ, तो क्या फायदा ? क्या नुकसान ? की इस प्रश्न-भाषा का उत्तर मैं सचमुच नही दे पाता। एक तरह से देखो, तो लाभ की बात दूर रही, यह तो सरासर बेवकूफी है कि बैठे-बैठे रंग और ब्रश खराब कर रहे हैं और रो रहे है कि चीज बड़ी महंगी होती जा रही है। ट्यूब ढाई रुपए के हो गए हैं। हिन्दुस्तानी रगों में वह 'बात' नही है! और तब अपने इस निकम्मेपन मे चिढ़ होती है'''' मन होता है, इस सबको फाड-तोड़कर फेंको और कोई भला-सा काम करो'''।" दर्शन शायद यह भूल गया कि यह बात उसने निन्नी के सवाल के जवाब में शुरू की थी''''लगा, वह बैठा-बैठा खुद सोच रहा है। उसके चेहरे पर एक सघन-तल्लीनता उभर आई।

निन्नी कुछ नही बोली और उसे अपने विचारों को समेटने का समय देती रही। दर्शन की खुली हथेली अभी भी निन्नी की हथेली पर रखी थी और दूसरे हाथ से वह उसकी उँगलियों को खोल-बन्द कर रहा था। अब शायद किन्हीं गहराइयों में ऐसा डूब गया था कि याद ही नही रहा''' अचानक निन्नी को ऐसा भ्रम हुआ कि वह बीमार होकर अपने घर के चौबारे में नही, दर्शन के दिल्ली वाले उसी कमरे में कुर्सी पर बैठी है ''जरा-सा पीछे मुड़ेगी तो उसके ढेर सारे बने-अधबने चित्रों के कैनवास ' फ्रेम दीखने लगेंगे'''न वह बीमार है ''न साल-सवा साल का समय गुजरा है ' अब याद आया, सुबह से ही. यह सारा वातावरण इतना परिचित क्यों लग रहा था ''।

तभी झटके से दर्शन फिर ऊपर—स्वर के स्तर तक—आ गया।

उसकी उँगलियों को यों ही खोलते-बन्द करते हुए बोला, "लेकिन मैं समझता हूँ, निन्नी, सुन्दर का निर्माण जितना बड़ा काम है, सुन्दरता का संरक्षण उससे कम छोटा काम नहीं है।···कोई सुन्दर हृदय, मूड या भाव, जिसे कलाकार चित्र में बाँधकर अमर कर देता है···क्या वह दुनिया की इस बाहरी और भीतरी कुरूपता-गलाजत के बीच एक हलकी-सी किरण·· एक नन्हा-सा प्रकाश-स्तम्भ बनकर मनुष्य की आत्मा को आस्था और बल नहीं देता रहता···? आदमी के मन में कोई सुन्दर स्मृति न हो···उसकी आत्मा पर किसी सुन्दर परछाईं के पंख न छाए हों · उसकी आँखों में कोई सुन्दर सपना न तैरता हो, तो क्यों वह जिएगा ? किसके लिए जिएगा ? जब भी कहीं किसी सुन्दर को वह चकनाचूर करेगा, तो उसके मन का कौन -सा सुन्दर उसका हाथ पकड़ेगा ?···अँधेरी रात में जब कोई नक्षत्र उसे नहीं बुलाएगा, तो भटकने के सिवा वह करेगा क्या···?"

निन्नी चाहती थी सिर्फ मुग्ध भाव से दर्शन के चेहरे की इस विभोरता को देखती रहे · उसके तन्मय चिन्तन की शब्दहीन साक्षी बनी रहे··· लेकिन सुन्दरता पर इतना कुछ सुना प्रश्न अनायास ही मुँह से निकल आया, "और जहाँ सुन्दरता जैसी कोई चीज न हो, वहाँ ये सारी बातें—"

दर्शन ने बात काट दी, "दूसरी चीज जो मेरी समझ में अभी तक नहीं आई, वह यह कि सुन्दरता क्या है ? बहुत लोगों ने इस पर बहुत गम्भीर बातें कहीं है, शास्त्र बनाए है। न मैंने वे पढ़े है, न यहाँ उनकी बात करूँगा। लेकिन जो प्रश्न मुझे मथता है, वह यह कि सुन्दरता अनुपात का नाम है या प्राणों के उल्लास का ···? एक सुडौल, सानुपातिक, नाक-नक्श, रंग-रूप वाले चेहरे को सुन्दर कहेंगे···या सब मिलाकर जो प्रभाव मन पर छोड़ जाता है, उस प्रसन्न प्रभाव का नाम सुन्दरता है ?····और अगर सुन्दरता प्रभाव का नाम है, तो वह जरूर कोई चीज है, जो अनुपात—ढले ढलाए नाक-नक्श—को माध्यम बनाकर अभिव्यक्त होती है····अपना उन्मेष करती है।" दर्शन फिर हिचककर चुप हो गया।

पता नहीं, अपनी बात खुद ही अस्पष्ट लगी, या उसे ऐसा लगा कि निन्नी बात को पूरी तरह नही समझ रही ।

जैसे कुछ सोचते-सोचते रुककर अचानक दर्शन ने कहा, "दक्षिण भारत के आकाश-चुम्बी गोपुरम् और खास तौर पर ऐलोरा के कैलाश-मन्दिर को देखकर मेरे मन मे एक सवाल उठा था । रोम के भव्य महल और मिस्र के पिरामिड, लाखों लाख गुलामों ने अपनी हड्डियों की खाद और खून के पानी से बनाए हैं···कोई नहीं जनता, एक-एक पत्थर को चढ़ाने मे कितने पिसे, कितने कुचले और कितनो की खालें कोड़ों ने उधेड़ डालीं···किसी को चिन्ता भी क्यों हो ? ? क्या वैसे ही जल्लादी अनुशासन में ऐलोरा के मन्दिर भी नहीं बनाए गए ? एक ही भारी चट्टान में तीन-तीन मंजिल के मंदिर, मूर्तियां, गहने, नक्काशी निकाल लेना और बिना कहीं भी एक जोड़ लगाए खम्भे और गवाक्ष तराश निकालना कितने सूक्ष्म योजनाबद्ध-कौशल का काम है, यह हमें आज चाहे चकित आह्लाद से भले ही भर दे···लेकिन जिन्होंने यह सब किया होगा, उन सबको बनाया होगा, क्या उनके मन में भी यह आह्लाद आता था ? क्या उनकी पीठ पर भी कोड़े वाले सैनिक खड़े रहते होंगे ? सारे दिन की हाड़-तोड़ मेहनत के बाद दो-दो मुट्ठी चना और एक-एक लोटा पानी के सिवा उन्हें और क्या मिला होगा ?··यही सब सोचता और साहिर की वे लाइनें गुनगुनाता मैं सारे ऐलोरा मे घूमता रहा··· 'दुनिया मे अनगिनत लोगों ने मुहब्बत की है···कौन कहता है कि सादिक न थे जज़्बे उनके····एक शाहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर···हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक···' लेकिन एक जगह मैं ठिठक गया और गुनगुनाना बीच से टूट गया····मुख्य मंदिर की दाहिनी ओर दीवार पर शिव और पार्वती की मूर्ति है । तपस्या करते हुए रावण ने उन्हें पर्वत सहित उठा लिया है····वहाँ आलिंगन-बद्ध शिव और पार्वती के चेहरे के सजीव भावों में मुझे हठात् जादू से बाँध लिया···और मैं उस अधूरी लाइन को भूलकर खड़ा-खड़ा देर तक देखता रहा····विस्मृत और मन्त्र-

मुग्ध, तब अचानक मन मे एक बात कौंधी—मान लिया, इन मूर्तियों को बनाने वाले हाथो मे कौशल था और पीठ पर कोड़ा था, इसलिए वे मूर्तियाँ बनाते थे। अंग-प्रत्यग को अनुपात, सुडौलता देते थे। पतले होंठ और नुकीली नाक तराश लेते थे। लम्बी-लम्बी पलकें, बरौनियाँ और धनुपाकार भौहें निकाल लेते थे। लेकिन सारे मुखमण्डल पर छाई यह शांति-खीझ, प्यार-क्रोध और होठो से फूटती लजीली मुस्कान को कौन-सा कोड़ा, कौन-सा कौशल पत्थर मे उतारने को मजबूर कर सकता है? बिना मन की उमंग और आस्था के पत्थर के होंठों पर वह मुसकराहट कहाँ से आएगी, जो बोलती है, खीचती है और तन-तन को एक गंध की बाँहों मे बांधे रखती है? उस क्षण मुझे लगा, अनुपात सुन्दरता नही है, अनुपात के पीछे उद्भासित होने वाला प्राण, प्रसन्न-उत्साह और आस्था ही सौन्दर्य है। · मगर निन्नी, यह तुम्हारी नहीं, हम सभी की ट्रैजेडी है कि हम सुन्दरता के उपादानों को ही सुन्दर समझते हैं···मानते है कि ढले-ढलाए अवयव—नाक-नक्श ही सुन्दर हैं···।"

दर्शन की आधी बात निन्नी की समझ में आई, आधी नही। वह तो सिर्फ अपने-आपको, अपनी कमजोरी और बीमारी को भूलकर उसे बोलता, उसके होंठों को हिलाता देखती रही···शायद उसे यह भी पता नहीं लगा कि वह कब चुप हो गया, कितनी देर चुप रहा। सहसा चौंककर उसने घड़ी देखी और धीरे से हाथ खीचकर बोला, "अच्छा निन्नी, अब मैं चलूँगा। मेरी दूसरी गाड़ी का समय हो गया है। मैं तो सिर्फ तुमसे मिलने को यों ही उतर गया था और यहाँ बैठकर तुम्हारा हाल-चाल पूछने की बजाय यह बकवास करने लगा····।"

निन्नी सचेत हो आई। उसने एकदम गम्भीर होकर पूछा, "चाय-वाय?"

"वह सब हो गया। जल्दी से ठीक हो जाओ। फिर मुझे लिखना और दिल्ली आना।" वह सहसा उठ खड़ा हुआ, "और देखो, यों नाराज नहीं हुआ कर···।"

"और नहीं कहोगे ? इस बार आऊँ तो भाभी को लेकर आऊँ ।" दर्शन के दुलार-भरे स्वर में गद्गद होकर उसने रुँधे गले से कहा ।

"नहीं, अब नहीं कहूँगा । अच्छा तुम अब तो नाराज नहीं हो न ?"

निन्नी ने आज्ञाकारी बच्चे की तरह सिर हिला दिया ।

"क्यों ? वैसे माताजी ने कुछ भिजवाना तो नहीं है ?" उसने चलने को होकर पूछा ।

"नहीं, सब है । माँ खुद ही आती होंगी ।"

"तो ठीक रहना....।" और दर्शन ने हलके से निन्नी की कनपटी पर हाथ रखा और झुककर धीरे से उसके पपड़ाए सूखे होंठों को चूम लिया और फिर पलट कर बे आवाज किवाड़ भिड़ाकर चला गया...धुँधली और मूँदी आँखें जब खुलीं तो दरवाजे में वही दरार थी...।

होंठों की पपड़ी के हलके गीलेपन के सिवा निन्नी को उस समय कुछ भी महसूस नहीं हुआ । उसने एक गहरी थकी साँस ली और खिसककर फिर सीधी लेट गई, तकिया ठीक किया, और लगा अभी तक सिर में उतना ही भारीपन, शरीर उतना ही बेजान है और मन पर उतना ही अवसाद छाया है । लगा, वह बहुत थक गई है—कोई बहुत ही परिश्रम का काम करके चुकी है और नींद आ रही है...।

जब नींद टूटी, तो वह कुछ ऐसी चौंककर उठी, मानो किसी ने सहसा उसे झकझोर दिया हो या पुकारकर जगाया हो, लेकिन कोई नहीं था । दरवाजा यों ही भिड़ा दिया था । हाँ, यह जरूर लगा कि कोई आया होगा, क्योंकि इस बार दाईं ओर का किवाड़ पहले बन्द था, फिर बाईं ओर का.....।

हाथ अपने-आप होंठों पर चला गया और उसने यों ही छूकर देखा कि क्या वहाँ गुनगुना गीलापन अभी भी लगा है ? और क्या देखने वालों को अनायास ही दीख सकता है ? भीतर कहीं हलकी-सी स्मृति

जगी – शायद कभी किसी और भी चुम्बन पर एक ऐसा ही सन्देह जागा था···।

लगा, एक बड़ी गहरी नींद से उठी है · और उसने निन्नी की थकान और हरारत बहुत कुछ दूर कर दी है। मन में एक ऐसा हलका-पन था, मानो कोई बहुत मधुर सपना देखती रही हो···लेकिन अब जागने पर ध्यान ही नहीं रहा कि सपना क्या था···ऐसा उसके साथ अनेक बार होता है···सुबह जागकर सपना तो याद नहीं आता, लेकिन उसका पुलक-प्रभाव बना रहता है और वही 'मूड' को अच्छा बनाए रखता है।

लेटी-लेटी वह साश्चर्य सोचती रही कि दर्शन सचमुच ही आया था, या जो सपना वह याद नहीं कर पा रही है, वह दर्शन के आने का ही था···नहीं···नहीं ऐसा हो ही नहीं सकता···दर्शन यहाँ कहाँ से आ गया?···साल-डेढ़ साल से ऊपर हो गया···न उसने कुछ लिखा, न निन्नी ने ही पत्र डाला। उसके आने की तो कोई बात ही नहीं है। उसकी अवचेतना की मधुराकांक्षा ने ही इस प्रकार के सपने का रूप धारण कर लिया होगा। यों ही तो सपने दीखते हैं। निन्नी अपने को समझाने लगी कि वह कल्पनाजीवी तो है ही, अक्सर ही सपने इतने साफ देखती है कि बाद में घण्टों यों लगता रहता है, मानो सब कुछ सचमुच घटित हुआ था·· जरूर यह सपना ही होगा।

दर्शन का आना, यों हाथ में हाथ लेकर बैठना, ऐसी अन्तरंग-तन्मयता से बातें करना और चलते-चलते यों मृदुलता से चूम लेना—निन्नी को एक ऐसी अकल्पनीय सुखानुभूति लगती थी कि विश्वास नहीं होता था और वह मन को समझा लेना चाहती थी कि नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। वह तो मात्र सपना ही था। मानो इस तरह झूठा विश्वास दिला-दिलाकर मन को उकसा रही थी कि वह झूठ-सच की जाँच कर ले और जब पक्का विश्वास हो जाए कि हाँ, सचमुच ऐसा हुआ था, तो

वह पतियाए और निश्चिन्त भाव से उस सुख को पी सके···कहीं वह सपना ही न हो। मानो इसी आशंका से वह इसे साग्रह सपना मानकर अपने को धोखे में रखने में बचा रही थी·· साथ ही भीतर यह भी जानती थी कि वह सब जान-बूझकर झूठा विश्वास कर रही है·· असलियत तो वह जानती है। लेकिन लगता था सच्चाई को इतनी जल्दी और निष्प्रयत्न पा लेना उसे हलका बना देगा और उसके महत्व और सुख को कम कर देगा···उसे वह आयासपूर्वक पाना चाहती थी।

पहला तर्क उसने यह रखा—अच्छा मान लो, ऐसी कोई बात होती तो भला वह यों दर्शन के जाते ही और इतनी बड़ी बात के बाद ही यों सो सकती थी? असम्भव! लेकिन इस तर्क के साथ आश्चर्य करने का मन ही मन प्रयत्न भी करती, सचमुच हुआ तो ऐसा ही था! कैसे सो गई ऐसी गहरी नींद में?

तभी लगा, छत पर से चलकर कोई चौबारे तक आ रहा है। निन्नी चोरी करने वाले व्यक्ति की तरह सकपका उठी···और जब कुछ नहीं सूझा, तो झट आँखें बन्द कर ली···मानो सो रही हो· खयाल आया, हो सकता है, दर्शन ही हों और अभी तक गए न हों। अब उसे सोता देखकर लौट न जाएँ। जरा-जरा सी पलकें मिचकाकर देखने की कोशिश ही कर रही थी कि धोती के पल्ले से दूध का गरम लौटा उठाए माँ ने दरवाजा खोल दिया।

"जाग गई? कैसा जी है? माँ ने लोटा उसी टीन की कुर्सी पर रखा और निन्नी के माथे को हाथ से छूकर देखा। उसे ध्यान आ गया, इसी कुर्सी पर दर्शन बैठा था और पहले यह कुर्सी उसके सिरहाने की ओर थी। इसपर कपड़े लदे थे। वे कपड़े अभी भी उसके पैताने की ओर पड़े हैं—अर्थात दर्शन के सचमुच आने के ये भी प्रमाण हैं···।

'अब तो ठीक है··।" निन्नी ने लोटे पर लगी राख को देखकर बलात् मुस्कराने का प्रयत्न किया।

माँ ने माथे से हाथ हटाकर हाथ पकड़ा और बोली, "हाँ, अब तो हरारत नहीं लगती···मैं एक बार आई थी, तो तू भराभर सो रही थी। वैद्य जी ने कहा है, खूब सोने दो और ढंका रखो।"

"क्या समय होगा भाभी ?" अचानक पूछ लिया।

"चार बज गए। अभी साधना और अन्नू आते होंगे।" माँ ने पाटी पर बैठकर पल्ले से उसके मुँह पोंछा। लगा, अभी तक चौका-बर्तन या रसोई का ही काम करती रही थीं। बोली, "दो बजे तो वो ही गया था।"

"कौन ?" निन्नी ने चौंकना दबाकर प्रश्न किया।

"दर्शन आया था न ? तू सो रही थी क्या ? बड़ी देर नीचे बैठा रहा। मैंने तो पहचाना नहीं···कभी देखती तो पहचानती···बोला, रम्मी का दोस्त हूँ···रम्मी और निन्नी जब दिल्ली आए थे, तो मेरे ही साथ ठहरे थे। किसी काम से आया था, सोचा, मिलता चलूँ। रम्मी तो होगा नहीं, निन्नी क्या कालेज गई है ? मैंने बता दिया, ऊपर बुखार में पड़ी है। और कोई था नही, मैं चौके में थी, सो सीढ़ियों तक छोड़ गई···।"

"तुम बड़ी खराब हो···।" निन्नी ठुनककर माँ की पीठ से लिपट गई, "बाहर वालों को सब बता देती हो···।"

"बताऊँगी नही···? तू तो ऐसे-ऐसे काम कर···।"

निन्नी फिर चुप हो गई और दर्शन के झुकते होंठों को सामने साकार करके कहा, "बेचारे बड़े भले आदमी है। अपनी शादी पर हम लोगों को इतना बुलाया, कोई भी नही जा पाया···।" अनजाने ही शादी की बात करके मानो वह माँ के मन का सम्भावित सन्देह दूर कर देना चाहती थी।

"अरे हाँ, साधना तो आज कह गई है कि देर से आएगी···उसके कालेज में कोई ड्रामा है या क्या है ।" माँ अब विषय बदल कर और बातें बता रही थीं। इन दिनों जब निन्नी जागी होती और माँ को फुरसत होती, तो वे बैठी-बैठी उससे सारी चिन्ताएँ बताया करतीं··· और निन्नी उनकी बात सुनना भूलकर सोचा करतीं कि देखो, धीरे-धीरे आदमी की क्या हालत रह जाती है·· वह कभी अपने बारे में नहीं सोचता, बस दूसरों के लिए चिन्ताएँ करने का एक माध्यम-भर रह जाता है। माँ बीच-बीच में 'मेरा शरीर भी कल से बड़ा टूटा-टूटा लग रहा है।' जरूर कहती थीं, लेकिन निन्नी जानती है, इसका कोई अर्थ नहीं है। उनका सारा 'आत्म' अब दूसरों की चिन्ताओं से ही बना है।

नीचे किसी ने कुण्डी खटखटाई तो माँ बोलीं, "शायद लकड़ी वाला आ गया···चलूँ।" वे घुटनों पर हाथ रखकर थकी-सी उठीं और "दूध पी लेना" कह कर चली गयी।

इस बात को तो वह खुद जानती थी कि यह सपना नहीं है, दर्शन सचमुच आया था···और···और····।

दूध पीने के बाद खुमारी मे पड़ी-पड़ी अचेतन रूप से अपने-आपसे वह कह रही थी कि पास के मकान में, नीचे से आती एक आवाज ने उसे अजीब तरह चौंका दिया·· आवाज ऐसी थी मानो कोई किसी घुटी-सी जगह गले में उंगली डाल-डालकर गला साफ कर रहा हो। इसमें नया कुछ भी नहीं था—हो सकता है, कोई सोकर उठा हो और मुँह-हाथ धो रहा हो···हाँ, सुबह के समय तो अक्सर ऐसी आवाजें आती हैं, इस समय प्रायः सुनी नहीं हैं—।

इस बार और भी जोर से उसे महसूस हुआ, मानो दिल्ली का वही दर्शन वाला कमरा है, झुटपुटे का समय है और अभी-अभी उसके पास से उठकर वह बाहर गया है और गुसलखाने में उंगलियाँ डाल-डालकर गला

साफ कर रहा है···निन्नी के बैंगनी, पपड़ाए, सूखे होठों को चूमकर उसका जी मितला उठा होगा न···। निन्नी दांतों पर उंगली फिराकर नाक तक ले गई···बीमारी में मुंह ठीक से साफ नहीं होता, सो एक किस्म की बदबू आने लगती है··जरूर दर्शन ने उसे महसूस किया होगा।

और इस चुम्बन के क्षण से वह जिस बात से अपनी अवचेतना में डर रही थी, वही हुई···एक चेहरा बलपूर्वक उसकी जाग्रत चेतना में उभर-उभरकर आने का हठ कर रहा था और वह थी उसे जबर्दस्ती भुलाए रखना चाहती थी···पहले चुम्बन के समय बैजल ने महसूस किया होगा कि उसने सन्ध्या को नहीं, निन्नी को चूमा है, तो उठती उबकाई से उसका चेहरा किस तरह विकृत हो उठा होगा···इसे उसने बहुत ही साफ साफ अपने सामने देखा है···हो सकता है, उस क्षण दर्शन का चेहरा भी ठीक उसी तरह विकृत हो उठा हो···दर्शन ने भी तो 'ओऽऽ' करके बड़ी मुश्किल से गले तक उमड़े आते वमन को दबाया होगा···और बाहर जाकर गले में उँगली डाल-डालकर हलक साफ किया होगा···साबुन से होंठ धोये होंगे···फिर भी जब-जब याद आ जाती होगी, तो जुगुप्सा की एक फुरहरी सारे शरीर को सिहरा जाती होगी···।

इस बार न बुरा लगा, न रोना आया। विरक्ति भी नहीं हुयी—बस, एक उत्तेजनाहीन निरुद्विग्न-सा सवाल उठा, "अगर ऐसा ही था, तो उन्होंने जानते-बूझते यह काम क्यों किया?" और परम आश्चर्य की बात यह कि निन्नी को अपने से नहीं, खुद दर्शन से सहानुभूति हुई···जैसे किसी बच्चे का हाथ जल जाए···मैं तो पाप-पंक हूँ ही, जैसी हूँ, वैसी ही हूँ···ऐसा करके उन्होने अपना मन क्यों खराब कर लिया···बेचारे···!

और एक निराशजनक आश्चर्य निन्नी को इस बात से भी हो रहा था कि कभी जिस बात की कल्पना-झलक भी उसकी रग-रग, अन्तर्तम तक रोमांचित कर जाती थी, उस बात के साक्षात् घटित हो चुकने पर

भी वह यों निर्विकार बनी रही···यही नहीं, तुरन्त सो भी गई···? फिर जागने के बाद अपने से हटकर (उठकर ?) दर्शन प्रति ही सहानुभूति प्रकट कर रही है·· ?

यहाँ निन्नी को यह स्वीकार लेने मे कोई संकोच या दुविधा नही है कि दर्शन की इस क्रिया को उसने कतई गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। जिसे बहुत गम्भीरतापूर्वक लिया था, उसकी निस्सारता ने निन्नी के सामने यह स्पष्ट कर दिया था, दर्शन का उसके पीछे कोई भी इरादा नहीं था। शायद यह उसका स्वभाव ही रहा हो, या मात्र एक शिष्टाचार रहा हो और उसे निन्नी ने ही मनमाने इन्द्रधनुषी रंगों से रंग लिया था—इसी तरह इस चुम्बन का भी कोई विशेष अर्थ नही है, यह वह जानती थी। जहाँ वह दिल्ली या कहीं जाकर अपने कामों में उलझा कि उसके ख्याल से भी उतर जाएगा कि कही, ऐसा कुछ हुआ भी था... वहाँ उसके ब्रश है···कैनवास हैं···नौकरी है···पत्नी है···और···और शायद बच्चे भी हों···।

फिर सब कुछ भूलकर निन्नी सोचने लगी कि वह भी अजीब है ! न दर्शन से उसकी पत्नी के बारे मे पूछा, न घर के बारे में—उसके स्वास्थ्य इत्यादि के बारे मे कुछ तो पूछना ही चाहिए था—यही जानना चाहिए था कि जिन्दगी अब कैसी बदली-बदली लगती है या नौकरी कर रहे हैं न, या वह महान पेंटर बनने के सपने अभी है ? अपने इस नये परिवर्तन से वह सन्तुष्ट है या असन्तुष्ट—?

लेकिन इन सारे तर्क-वितर्क, शंका-सन्देहो के बावजूद, एक प्रसन्न-भाव हमेशा मन पर छाया रहने लगा कि उसके साथ कुछ प्रीतिकर हुआ है·· कोई तनाव था, जो एक शीतल सतोष की माधुरी में बदल गया

था...और साबुन या रीठे का पानी जब बालों मे भारा हो, तो गुनगुना पानी सिर पर डालने से जैसे जकड़न का कसाव ढीलता जाता है, वैसी ही मुक्ति की सहानुभूति होती थी...।

इसी अनुभूति का परिणाम था, या बीमारी ने अपना कोर्स पूरा कर लिया था, बहरहाल निन्नी की हालत मे क्रमशः सुधार होता चला गया और अपनी इस संवरती तबीयत में उसने पाया कि जैसे इस बीमारी ने जिन्दगी के प्रति उसका सारा दृष्टिकोण ही बदल दिया है.. सुबह नौ बजे तक खिड़की की तानों को काटकर मीठी-मीठी धूप के चौड़े-चौड़े सुनहले फीते कमरे में इस कोने से उस कोने तक तन जाते...और वह मुग्धभाव से उन भीतों की रश्मिल बुनावट को देखती रहती...सुनहली मकड़ी से कुहरिल जालों से कितनी भिन्न प्रकार की यह बुनावट थी... वह देखती रहती, धूल के छोटे-छोटे जर्रे उस बुनावट में पड़कर किस तरह सतरंगे हो उठते है। सामने के दोनों हाथों में खाने की कोई चीज कपड़े कंगारू की तरह बैठी गिलहरी को वह बेहद दिलचस्पी से खाते देखती रहती...डूबी.. डूबी और दर्शन की बातें मन में तैरती रहती—बेचैन होकर साधना की राह देखा करती और उसके आने पर घंटों कालेज की बातें करती...पड़े-पड़े मन बहुत ऊबने लगा था और हमेशा तड़प होती कि जल्दी से जल्दी ठीक होकर बाहर निकले...लोगों से मिले...लड़कियों से बातें करे और तरह-तरह की किताबें पढ़े ।

और इन सारी बातों के बीच ही, अकारण और अप्रासंगिक रूप से एक सवाल मन में उभर उठता...दर्शन ने जान-बूझकर ऐसा क्यों किया ? वह विवाहित है.. वह सन्तुष्ट है...और निन्नी जानती है कि वह... वह उसे प्यार भी नही करता...वह कलाकार...सुरुचि और सौन्दर्य-प्रेमी मन का व्यक्ति है...निन्नी को अपनी जिन्दगी मे कहाँ और क्यों रखता ?

वह लाख सौन्दर्य और अनुपात की व्याख्या करे, लेकिन वह अपने-आपको भी तो अच्छी तरह जानती है···उसे अपने बारे में अब तो कोई मुगालता नहीं · बाहरी और भीतरी सुन्दरता निन्नी में कितनी है, इसे उससे अच्छी तरह और कौन जान सकता है··? फिर उसने ऐसा क्यों किया···?

इसके बाद निन्नी आगे पढ़ी भी, उसने नौकरी भी की···और शायद सभी कुछ भूलकर अपने को सामने के उद्देश्य में समाहित··· एकाकार···कर दिया···देश-विदेश में नाम न कमाया हो, लेकिन जीवन अकारथ गया, ऐसा नहीं लगता। यों वह नारी है और कभी-कभी यह बात भी बहुत जोर से मन में आती है कि उसका भी 'अपना घर' होता, बच्चे होते और वह भी उस घर की स्वामिनी होती·· बहुत प्राकृतिक कमजोरी है, लेकिन अब अक्सर यह सन्तोष ज़रूर मन में रहता है कि जिन्दगी की जो कुछ भी पूंजी उसे मिली, उसे उसने सही दिशा में ही लगाया है और जितना कुछ बन पड़ा है, अपने को अवरुद्ध रखने वाली सीमाओं को लांघने की ही कोशिश की है··।

बाद में बहुत बार उसने अपने से पूछा और उस ऊर्ध्वमुखी परिवर्तन के प्रति सचेत हो जाने के दिनों में भी उसने अपने-आप से सवाल किया कि यह सब क्यों उसके मन में हो रहा है? वह रत्ती-भर विश्वास नहीं करती···करना भी नहीं चाहती कि इस सबका कारण दर्शन का वह ज़रा-सा और 'कैजुअल' व्यवहार है···दर्शन को अपनी जिन्दगी में इतना महत्त्व और मान (क्रेडिट) भी वह नहीं देना चाहती —और चुम्बन कोई अलौकिक चमत्कारी दवा है, इस बात को न तब माना था, न अब मानती है। वह एक बहुत-बहुत सामान्य शिष्टाचार से भी कम महत्वपूर्ण क्रिया है, यह आज से वर्षों पहले विदेशी चित्र-पुस्तकें और जीवन जानकर वह समझ गई थी। लेकिन अचानक एक

दिन उसे लगा, जैसे इस सारे व्यवहार का एक और बहुत गम्भीर अर्थ हो सकता है...।

बीमारी के बाद के दिनों की बात है···सब लोग सो चुके थे। शायद ग्यारह बजे थे रात के। · अभी-अभी नीचे से पानी की सड़ाकेदार आवाज के साथ बुहारी से चौका धुलने की आवाज आ रही थी। तबीयत अब एकदम ठीक थी एकाध रोटी खा लेती थी और एकाध घटे को नीचे हो आती थी। सारे दिन पढ़ती या सोती थी, सो रात को देर तक नींद नहीं आती थी ··अब भी नींद नहीं आ रही थी·· और निन्नी लेटी-लेटी खिड़की से बाहर झाँक रही थी·· बाहर घना कोहरा पड़ रहा था, जो चाँदनी में सुनहले अबीर जैसा लगता था · जिसमें बीच-बीच में अभ्रक के कन झिलमिला उठते हों·· सभी कुछ उस धुन्ध में खो गया था···आसमान और चाँद दोनों उसमें धुँधला गए थे और पड़ोस के रेडियों में कहीं से सितार आ रहा था···तारों पर पड़ने वाली टंकार कभी अनेक झंकृतियों के साथ फैलकर द्रुत हो जाती और कभी सिमट कर टुं···टुं के साथ बहुत ही महीन और धीमी हो आती···लगता, इसके बाद ही बस, दो पल को शान्ति होगी और तब अनाउन्सर की आवाज आएगी···"अभी-अभी आप···केन्द्र से···अमुक से सितार पर राग जैजैवन्ती···या कुछ और—सुन रहे थे···।" मगर तभी एक मचलन के साथ झनझनाहट फिर गूंजने लगती और बाहर का कोहरा और भी अतीन्द्रिय हो उठता···।

बाद में सितार सीखने की साध हमेशा से निन्नी के मन में अधूरी ही रही है···उस समय भी न वह राग समझती थी, न सितार के प्रति कोई विशेष मोह था···लेकिन आधी रात में, चाँदनी और कुहरे मे लिपटी, रुक-रुककर झूमती वह झंकार निन्नी के तन-मन के रेशे-रेशे में

उतरती चली जा रही थी···और मिजराव की एक-एक टंकार के साथ दिल की एक-एक धड़कन जा मिली थी···उसे ऐसा लग रहा था, मानो यह चाँदी की लहरों वाला एक अकूल···असीम सागर है और वार-वार तट पर आकर टूटता और बिछ जाता है···और उस तट पर विल्कुल अकेली ··निस्संग···भूत और भविष्य से कटी, कामनाओ और स्मृतियों से मुक्त वह खडी है · खडी है और लहरों का संगीत सुन रही है···दिशा और काल से दूर···उस झंकार को सुन नहीं रही··सम्पूर्ण चेतना से पी रही है···।

खट-से स्विच वन्द हुआ, तो वह झटके के साथ उस मधुमति मोहिनी के लोक से अपने-आप में लौट आई··तव ध्यान आया··पता नही, अनाउन्सर ने कव वादक का नाम लिया, कव प्रोग्राम समाप्त हुआ और यह अजव उदास अनुभूति क्या थी ··।

तभी अपने-आप हठात् लगा कि दर्शन और वैजल के चुम्वन मे एक अन्तर था···एक आधारभूत अन्तर था। एक किसी और के प्रति निवेदित चुम्वन था और गलती से निन्नी ने उसे पा लिया था···चोरी से···जैसे किसी का व्यक्तिगत खत अनजाने ही गलत आदमी को दे दिया जाए···और यह ··यह···सीधे···वेहिचक, वेलाग आमने-सामने निन्नी को ही दिया गया खत था···न उसे किसी ने गलती से अंधेरे मे दिया था और न उसपर लिखे पते को काटकर निन्नी का नाम लिख दिया गया था···यह समान और समस्तरीय भावना से निन्नी को वन्धु और मनुष्य मानकर किया गया · शायद पहला · आत्मीय और अन्तरंग सम्बोधन था···इसमे वह कही भी वेचारी और दयनीय नहीं थी···।

निन्नी को लगा, क्षण की उसी सुई की नोक जैसी विन्दु-भूमि पर खड़ी होकर वह रूपहले सागर के सगीत-तरगित तट पर पहुँच गई

थी…और उसकी बीमारी सिर्फ एक पगडंडी थी, जो उसे इस तट तक ले आई थी…।

दर्शन से फिर भेंट नही हुई…जानने का प्रयत्न भी नही किया कि वह कहाँ है…लेकिन कृतज्ञ निन्नी आज भी उसके प्रति नहीं हो पाती…केवल आत्मीयता का एक मधुर…निरुद्विग्न…आश्वास जरूर है और निश्शब्द रूप में उसकी प्रतीति हमेशा अपने भीतर महसूस करती है…।